सूर्यबाला का कथा साहित्य : सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य

(हिंदी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय की पीएच.डी. उपाधि के प्रति प्रस्तुत शोध प्रबंध)

891.433
SAV/Sur

२०१६-२०१७

शोध कर्ता

श्रीमती सपना सावईकर

Corrected thesis
06/07/17
6.7.17
6/7/17

GOA UNIVERSITY LIBRARY GOA

शोध निर्देशिका

डॉ. वृषाली मांद्रेकर

अध्यक्ष, हिंदी विभाग

T-817

गोवा विश्वविद्यालय, तालिगाँव, गोवा - ४०३२०६

817

DECLARATION

I the undersigned herself declare that the thesis entitled "सूर्यबाला का कथा साहित्य : सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य" "Suryabala ka katha sahitya : samajik evam sanskrutik paridrushya" has been written exclusively by me and that no part of this thesis has been submitted earlier for the award of this University or any other University.

Date - 06/07/2017

Place – Taleigao Plateau Goa.

Mrs. Sapana Savaikar

Research Scholar

CERTIFICATE

As per the Goa University ordinance, I certify that this thesis entitled "सूर्यबाला का कथा साहित्य : सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य" "Suryabala Ka Katha Sahitya : Samajik Evam Sanskrutik Paridrushya" is a record of research work done by candidate herself during the period of study under my guidance and that it has not previously formed the basis for the award of any degree or diploma in the Goa University or elsewhere.

Date :- 6/07/17

Place:- Dept of Hindi

Research Guide

[signature]

Dr. Vrushali Mandrekar

Head, Dept. of Hindi

Goa University.

प्राक्कथन

किसी सुनिश्चित अंचल अथवा भौगोलिक प्रदेश में बहुत से लोग निवास करते हैं । ऐसे लोग जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक-दूसरे के साथ मिलजुलकर काम करते हैं । जिसके परिणामस्वरूप अनेक प्रकार की सार्थक क्रियाएँ एवं प्रतिक्रियाएँ जन्म लेती हैं और उनका विकसित रूप ही सामाजिक संबंधों को बनाये रखने के लिए मद्‌दगार साबित होता है। यहाँ प्रत्येक सामाजिक प्राणी एक-दूसरे की अपेक्षाओं के अनुकूल व्यवहार करता है । सामान्यतः मानवीय व्यवहार के नियामक, निर्देशक एवं नियंत्रक स्थान विशेष के मनुष्यों की आस्थाएँ, मान्यताएँ, परंपराएँ एवं कार्य-प्रणालियाँ होती हैं, जो उस समाज की संस्कृति का आधार निर्मित करती हैं । इस तरह से समाज और संस्कृति का गहरा संबंध होता है ।

भारतीय समाज में उत्तरोत्तर प्रगति हो रही है । भूमंडलीकरण, बाजारवाद, शहरीकरण, शिक्षा का प्रचार-प्रसार, औद्योगीकरण आदि के प्रभाव स्वरूप समाज में परिवर्तन को देखा जा सकता है । औद्योगीकरण के फलस्वरूप नौकरी पाने के लिए गाँव से लोग शहरों की ओर बढ़ गए । इससे संगठित परिवारों में विघटन की प्रक्रिया आरंभ हो गयी । आज तलाक की समस्या से एकल परिवार की नींव भी चरमराने लगी है । लिव इन रिलेशनशीप के तहत पारिवारिक संबंधों में बदलाव आने की शुरुआत हो गयी है । इस तरह से समाज की प्रमुख इकाई परिवार में बदलाव आने लगा है । यातायात और संचार माध्यमों में तेज गति से विकास के कारण आज विश्व सिमट गया है । मनुष्य आसानी से विदेश जाने-आने लगा है । शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण लोगों की मानसिकता में बदलाव आने लगा है । आपसी भाईचारे की भावना समाप्त होने लगी है, उसकी जगह स्वार्थ ने ली है । दया, माया, ममता, ईमानदारी, विश्वास, त्याग-बलिदान, जैसे

मानवीय मूल्य समाप्ति के कगार पर हैं । संचार माध्यमों के कारण विदेशी संस्कृति का प्रभाव भारतीयों पर हो रहा है । इससे भारतीय संस्कृति में परिवर्तन आ रहा है ।

सूर्यबाला भारतीय समाज में पली-बढ़ी हुई है । यहाँ की संस्कृति में सुसंस्कृत बनी है, इसलिए उनके कथा साहित्य पर इसका प्रभाव नजर आता है । समाज से समाप्त होनेवाले मूल्यों को बचाने की प्रेरणा देना सूर्यबाला के कथा साहित्य का मूल उद्‌देश्य रहा है । सूर्यबाला के कथा साहित्य पर अनेक पत्र-पत्रिकाओं में विभिन्न आलोचकों ने लिखा है पर उनके कथा साहित्य में समाज और सांस्कृति इस विषय पर कोई ठोस सुसंगत आलोचना उपलब्ध नहीं होती, इसलिए "सूर्यबाला का कथा साहित्य : सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य" इस विषय पर शोध करना एक वैचारिक उपलब्धी हो सकती है।

'समाज एवं संस्कृति' नामक प्रथम अध्याय में समाज और संस्कृति शब्दों की व्युत्पत्ति, अर्थ तथा परिभाषा भारतीय और पाश्चात्य मतानुसार प्रस्तुत की है । इसी के साथ समाज एवं संस्कृति का स्वरूप आदि की चर्चा की है । समाज और साहित्य का संबंध, संस्कृति और साहित्य में परस्पर संबंध पर विचार करते हुए रचनाकार, उसका समाज तथा उसकी संस्कृति के साथ उसके संबंध पर प्रकाश डाला गया है ।

रचनाकार जिस समाज में जीता है उससे उसका गहरा संबंध होता है । समाज और संस्कृति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । वे एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं इसलिए जिस समाज में रचनाकार रहता है, वहाँ के समाज के साथ-साथ वहाँ की संस्कृति भी उसे प्रभावित किए बिना नहीं रह सकती । निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि रचनाकार, समाज और संस्कृति का संबंध गहरा है ।

'सूर्यबाला का व्यक्तित्व एवं कृतित्व' नामक व्दितीय अध्याय में सूर्यबाला के व्यक्तित्व के अनेक पहलूओं पर प्रकाश डाला गया है । सबसे पहले उनका जीवन परिचय दिया है । उसमें उनका पारिवारिक जीवन, शिक्षा-दीक्षा, उनकी स्वभावगत विशेषताएँ, उनके साहित्य की प्रेरणा, उन्हें प्राप्त पुरस्कार आदि का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया है, इसके साथ उनके संपूर्ण साहित्य का जायजा प्रस्तुत किया है । उनके दस कहानी-संग्रह जिनमें 'एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम', 'दिशाहीन', 'थाली भर चाँद', मुंडेर पर', 'गृहप्रवेश', 'साँझवाती', 'कात्यायनी संवाद', 'मानुष गंध', 'पाँच लंबी कहानियाँ', 'गौरा गुनवंती' आदि में स्थित सभी कहानियों का विस्तृत अध्ययन कर उनका परिचय दिया है । सूर्यबाला के पाँच उपन्यास 'मेरे संधिपत्र', 'सुबह के इंतजार तक', 'यामिनी कथा', 'अग्निपंखी', और 'दीक्षांत' का परिचय भी इस अध्याय में दिया है । सूर्यबाला एक सशक्त व्यंग्यकार भी रही हैं । उन्होंने 'धृतराष्ट्र टाइम्स', 'भगवान ने कहा था' जैसी प्रसिद्ध रचनाओं का सृजन किया है । इसके साथ-साथ बच्चों के लिए उपयोगी साहित्य की रचना भी उन्होंने की है । अपनी स्मृति-कथा 'अलविदा अन्ना' में अपने विविध अनुभवों का लेखा-जोखा उन्होंने प्रस्तुत किया है । इन सभी रचनाओं का परिचयात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है ।

'सूर्यबाला की कहानियों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य' नामक तृतीय अध्याय में सर्व प्रथम भारतीय सामाजिक ढाँचे का परिचय देते हुए सूर्यबाला की कहानियों में आया हुआ समाज, समाज की प्रमुख इकाई परिवार में उनके पात्रों का स्थान, महत्व और योगदान, उनके पात्रों के गुण-दोष आदि का विस्तृत विवरण दिया है । उनकी कहानियों में आयी हुई भारतीय समाज की अनेक क्षेत्रों से संबंधित समस्याएँ जैसे अर्थ से संबंधित, विवाह से संबंधित, शोषण से संबंधित, भाषा से संबंधित, भ्रष्टाचार, शहरीकरण, स्वार्थांधता आदि से संबंधित समस्याएँ, इसके अलावा भारतीय समाज में स्थित सांप्रदायिक सद्भाव आदि का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है ।

प्रस्तुत अध्याय में कहानियों में आए हुए सांस्कृतिक पक्ष पर भी प्रकाश डाल गया है, जिसमें भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान, संस्कृति के विविध पहलू जैसे ईश्वर की पूजा करना आदि । भारतीय समाज में बदलाव के कारण भारतीय संस्कृति में आनेवाला बदलाव और भारतीयों पर होनेवाला उसका प्रभाव, विवाह जैसे सामाजिक एवं सांस्कृतिक बंधन में आनेवाले बदलाव, लोगों की बदली हुई मानसिकता, भारतीय लोगों के रहन-सहन में आनेवाले बदलाव, भारतीयों की धार्मिक प्रतिबद्धता, पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावस्वरूप भारतीय लोगों के जीवन में आनेवाली सांस्कृतिक टकराहट, भारतीय लोगों के रीति-रिवाज, दहेज प्रथा, मानवीय एवं नैतिक मूल्यों की आवश्यकता, भारत में पारिवारिक संबंध, स्वदेश प्रेम, भारतीय खेल, और भाषा से संबंधित समस्या इन सारे पहलुओं का अध्ययन कर उन्हें उदाहरण सहित प्रस्तुत अध्याय में प्रस्तुत किया है ।

'सूर्यबाला के उपन्यासों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य' नामक चतुर्थ अध्याय में सूर्यबाला के उपन्यासों का विस्तृत अध्ययन कर उनमें आया हुआ पुरुष प्रधान समाज, सामाजिक वर्ग-भेद, भ्रष्टाचार, गरीबी से संबंधित अनेक समस्याएँ, तलाक की, बलात्कार की समस्या, सामाजिक मर्यादा, दिखावेपन की समस्या, स्वार्थ केंद्रित समाज का चित्रण, शिक्षा से संबंधित समस्याएँ आदि मुद्दों को उदाहरण के साथ प्रस्तुत किया है।

सूर्यबाला के उपन्यासों में भारतीय परिवार में नारी का स्थान, भारतीय जीवन में आनेवाले रीति-रिवाज, भारतीय लोगों का रहन-सहन और उसमें आनेवाले बदलाव, पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावस्वरूप भारतीय लोगों के जीवन में आनेवाले सांस्कृतिक टकराव, मानवीय मूल्य, भारतीयों के अंधविश्वास, भारतीयों का प्रकृति के प्रति प्रेम, मातृभूमि से प्रेम, आदि विविध मुद्दों को प्रस्तुत अध्याय में प्रस्तुत किया गया है ।

'सूर्यबाला का कथा साहित्य : भाषा एवं शैली' नामक पंचम अध्याय में सूर्यबाला के कथा साहित्य को मद्‌देनजर रखते हुए भाषा एवं शैली संबंधी विविध आयामों को विश्लेषित करने की कोशिश की है । सूर्यबाला की भाषा अपने कथ्य को संप्रेषित करने में समर्थ है । उन्होंने आज के पाठक के लिए संप्रेषणीय भाषा का उपयोग किया है। उसमें अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत शब्दों की बहुलता पायी जाती है । आवश्यकता के अनुसार उन्होंने कई जगहों पर अंग्रेजी वाक्यों का उपयोग किया है । कई जगहों पर उन वाक्यों का हिंदी में अर्थ भी कोष्ठकों में दिया है । इसी तरह से अन्य भाषाओं में पंजाबी, बांग्ला भाषाओं का भी प्रयोग किया है जिनका अर्थ कोष्ठकों में दिया है । सूर्यबाला ने कई सारे देशज, ध्वन्यात्मक, युग्म शब्दों का, मुहावरों एवं कहावतों का आवश्यकता के अनुसार कलात्मक उपयोग किया है ।

संकेतात्मक एवं तर्कनिष्ठ भाषा के उपयोग से उनके कथा साहित्य की आभा बढ़ गयी है । रोमांटिक प्रसंगों के चित्रण में इसका प्रभावी उपयोग हुआ है । चित्रात्मक भाषा के प्रयोग के कारण सूर्यबाला की कथाएँ पाठक पर अपना गहरा प्रभाव छोड़ती हैं । अपनी भाषा को सुंदर बनाने के लिए उन्होंने प्रसंगानुसार अनेक श्लोक, प्रार्थना, गाने, कविताएँ, शेरो-शायरी, स्वर, आलाप, ध्वनियों, लोकगीतों आदि का प्रयोग किया है । सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य के संप्रेषण के लिए 'मैं' की शैली, निवेदन शैली, आत्मालाप शैली, पूर्वदिप्ती शैली, रेखाचित्र शैली, व्यंग्यात्मक शैली, पत्र शैली, चेतना प्रवाह शैली, छायाचित्रात्मक शैली, संवाद शैली, वर्णनात्मक शैली, स्वप्न शैली, टेलीफोन संवाद शैली, लोकगीत शैली, कथात्मक शैली जैसी विविध शैलियों का उपयोग किया है, है । अतः कहा जा सकता है कि सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य के लिए कथ्य एवं पात्रों के अनुरूप भाषा का सुंदर प्रयोग किया है ।

प्रस्तुत शोध कार्य के लिए विभिन्न संदर्भ-ग्रंथों, पत्र-पत्रिकाओं, शोध प्रबंधों की सहायता ली गयी है । अतः सर्व प्रथम उन सभी विद्वानों, रचनाकारों की ऋणी हूँ जिनकी रचनाओं, विचारों, शोध-तथ्यों का मुझे लाभ हुआ । मेरे शोध-प्रबंध की पथप्रदर्शक आदरणीय डॉ. वृषाली मांद्रेकर का समय-समय पर मार्गदर्शन तथा वैचारिक सम्बल प्राप्त होता रहा है, उनके प्रति मैं हृदय से श्रद्धानत हूँ । मेरे शोध-प्रबंध की प्रेरणा मेरी गुरु, डॉ. शुभदा जोशी से समय-समय पर मानसिक सम्बल प्राप्त होता रहा है, उनके प्रति मैं दिल से कृतज्ञ हूँ । हिंदी विभाग के प्राध्यापक गण, डॉ. रविंद्रनाथ मिश्र, डॉ. इशरत खान आदि की भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने हर बार मेरीमदद की है ।

शोध कार्य करने की सतत प्रेरणा मेरी माँ श्रीमती लक्ष्मी सावईकर, पिताजी स्व.श्रीपाद सावईकर से मिलती रही है। परिवार के सभी सदस्यों में मेरे मामा डॉ. विनायक और भास्कर गर्दे, मौसी मालिनी और मौसाजी जनार्दन नांबियर, पति विजयकुमार पेळपकर, सास सुलोचना पेळपकर आदि ने मेरा हमेशा आत्मबल बढ़ाया है, इसलिए मैं उनके प्रति भी कृतज्ञ हूँ ।

हिंदी विभाग की संजना और आंतोन ने भी मुझे समय-समय पर सहकार्य किया है, मैं उनकी भी आभारी हूँ । गोवा विश्वविद्यालय के ग्रंथपाल सहयोगियों के प्रति भी आभारी हूँ, जो हर समय मद्दगार साबित हुए हैं । अंत में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से जिनसे मुझे प्रस्तुत शोध कार्य संपन्न करने हेतु सहयोग प्राप्त होता रहा, उन सभी की मैं ऋणी हूँ ।

विवेच्य शोध प्रबंध, शोध आलोचना के क्षेत्र में एक विनम्र प्रयास माना गया तो मैं अपना वैचारिक श्रम सार्थक मान लूँगी ।

दिनांक :- 06/07/2017

विनीत

(श्रीमती सपना सावईकर)

अनुक्रम

१. समाज एवं संस्कृति	**१ - २२**
१.१ समाज की अवधारणा एवं स्वरूप	१ - ८
१.२ संस्कृति की अवधारणा एवं स्वरूप	८ - १८
१.३ समाज एवं संस्कृति का संबंध	१८ - २०
१.४ समाज, संस्कृति और साहित्य का संबंध	२० - २१
निष्कर्ष	२२
संदर्भ ग्रंथ सूची	२३ - २४
२. सूर्यबाला का व्यक्तित्व एवं कृतित्व	**२५ - ६२**
२.१ सूर्यबाला का व्यक्तित्व	२५ - ३३
२.२ सूर्यबाला का कृतित्व	३३ - ६१
निष्कर्ष	६२
संदर्भ ग्रंथ सूची	६३ - ६४
३. सूर्यबाला की कहानियों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य	**६५ - १६४**
३.१ सूर्यबाला की कहानियों में सामाजिक परिदृश्य	६५ - १४५
३.२ सूर्यबाला की कहानियों में सांस्कृतिक परिदृश्य	१४५ - १६३

निष्कर्ष — १६३ - १६४

संदर्भ ग्रंथ सूची — १६५ - १६८

४. सूर्यबाला के उपन्यासों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य — १६६ - २४६

४.१ सूर्यबाला के उपन्यासों में सामाजिक परिदृश्य — १६६ - २२०

४.२ सूर्यबाला के उपन्यासों में सांस्कृतिक परिदृश्य — २२० - २४५

निष्कर्ष — २४५ - २४६

संदर्भ ग्रंथ सूची — २४७ - २५०

५. सूर्यबाला का कथा साहित्य : भाषा एवं शैली — २५१ - ३२६

५.१ सूर्यबाला के कथा साहित्य की भाषा — २५१ - २६३

५.२ सूर्यबाला के कथा साहित्य की शैली — २६३ - ३२८

निष्कर्ष — ३२८ - ३२६

संदर्भ ग्रंथ सूची — ३३० - ३३५

उपसंहार — ३३७ - ३४३

परिशिष्ट — ३४४ - ३४६

सहायक ग्रंथ सूची — ३४७ - ३५०

अध्याय १. समाज एवं संस्कृति

मनुष्य के व्यवहार या मनुष्य की आंतरिक क्रियाओं, सामाजिक संबंधों एवं प्रक्रियाओं से मानवीय संबंधों की गतिविधियाँ संचालित होती हैं । समाज में अनेक व्यक्तियों के बीच प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अन्तःक्रिया होती है । मनुष्य अपने विकास के लिए जिन गतिविधियों से गुजरता है, उन गतिविधियों से गुजरते समय उसे अन्य लोगों की सहायता की आवश्यकता होती है, इसलिए वह समूह में रहना पसंद करता है । यही समूह समाज कहलाता है । इस समाज की अवधारणा और उसके स्वरूप का अध्ययन प्रस्तुत अध्याय में करेंगे ।

१.१ समाज की अवधारणा एवं स्वरूप

'समाज' शब्द के उच्चारण से नजरों के सामने एक समूह का दृश्य निर्माण होता है । 'समूह' या 'समुदाय' समाज का एक अर्थ हो सकता है । वास्तव में 'समाज' शब्द बहुत व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है । यह विभिन्न अर्थों का संवहन करता है, जिनको दो भागों में बाँटा जा सकता है - १) लोक प्रचलित अर्थ २) वैज्ञानिक अर्थ।

सामान्यतः भारतीय समाज में 'समाज' शब्द का तात्पर्य कुछ लोगों का समूह समझा जाता है, जैसे आर्य समाज, द्रविड समाज आदि। हिंदी के अधिकांश शब्दकोशों में भी 'समाज' शब्द का ऐसा ही अर्थ मिलता है।

'प्रामाणिक हिंदी कोष' में 'समाज' शब्द का अर्थ है - समूह, गिरोह, एक जगह रहनेवाले अथवा एक ही प्रकार का काम करनेवाले लोगों का वर्ग, दल या समूह।'[१]

'हिंदी विश्वकोष' में 'समाज' शब्द का अर्थ है- १) समूह, संघ, गिरोह, दल २) सभ्य ३) वैष्णवों का समाधि स्थान ४) हस्ती, हाथी ५) एक ही स्थान पर रहनेवाले अथवा एक ही प्रकार का व्यवसायादि करनेवाले वे लोग जो मिलकर अपना एक अलग समूह बनाते हैं। ब्राह्मणादि वर्ण की सभा ।'[२]

'बृहत हिंदी कोष' में 'समाज' का अर्थ है- मिलना, एकत्र होना, समूह, संघ, दल, सभा, समिति, आधिक्य, समान कार्य करनेवालों का समूह, विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संघटित संस्था, ग्रहों का योग, हाथी ।'[३]

'भाषा शब्द कोष' में 'समाज' का अर्थ है - समूह, सभा, समिति, दल, वृंद, समुदाय, संस्था, एक स्थान निवासी तथा समान आचार विचारवाले लोगों का समूह, किसी विशेष उद्देश्य या कार्य के लिए अनेक व्यक्तियों की बनायी या स्थापित की हुई सभा ।'[४]

'तुलसी शब्द सागर' में 'रामचरितमानस' में प्रयुक्त 'समाज' शब्द का अर्थ है - १) लोगों का समूह, २) समूह, ३) सभा, मंडली, परिषद् ४) उत्सव, जुलूस या अन्य कोई समारोह ५) तैयारी ६) सामान ।'[५]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि 'समाज' शब्द का जन प्रचलित अर्थ है - दल, गिरोह, समूह, समुदाय, संगठन, सभा, सभ्य, संस्था आदि ।

भारतीय समाज आदि काल से अपने विकास की ओर अग्रसर रहा है । उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष को जानने के लिए समाजशास्त्रियों ने उसका विस्तृत एवं वैज्ञानिक अध्ययन किया है। उनके अनुसार समाज, समूह, समुदाय एवं सभा शब्दों में पर्याप्त अंतर है । समाजशास्त्रीय परिकल्पना के परिप्रेक्ष में 'समाज' शब्द की परिभाषा विविध प्रकार से दी गयी है । परंतु विद्वानों में मतभेद होने की वजह से आज भी सर्वस्वीकृत एवं सर्वमान्य परिभाषा उपलब्ध नहीं है । तथापि समाज-शास्त्रियों की परिकल्पना को कालक्रम एवं प्रस्तुतीकरण की सुविधा की दृष्टि से डॉ. विमलशंकर नागर ने तीन समूहों में विभाजित किया है -

क. प्रथम समूह - १६ वी शताब्दी के पूर्व के समाज-शास्त्रियों की समाज संबंधी परिकल्पना

ख. द्वितीय समूह - १६ से १८ वी शताब्दी तक के समाज-शास्त्रियों की समाज संबंधी परिकल्पना

ग. तृतीय समूह - १९ से २० वी शताब्दी तक के समाज-शास्त्रियों की समाज संबंधी परिकल्पना

इसका विश्लेषण करते हुए वे लिखते हैं - '१९ वी शताब्दी के समाज-शास्त्रियों ने 'समाज' शब्द की दो प्रकार से व्याख्या की है । १) व्यापक अर्थों में 'समाज' शब्द मानव-मानव के मध्य सामाजिक संबंधों की परिपूर्णता को व्यक्त करता है । २) 'समाज' दोनों स्त्री-पुरुष एवं सभी आयु के मनुष्य के ऐसे स्वतः सतत् प्रवाहमान समुदाय को समझा जा सकता है जो साथ-साथ रहने के लिए प्रतिबद्ध है तथा जिसकी अधिक या कम अपनी विशिष्ट संस्कृति एवं संस्थायें हैं।'[६]

अर्थात् १९ वी शताब्दी तक उस समूह को समाज कहा जाता था जिसकी इकाइयाँ साथ-साथ रहने के लिए प्रतिबद्ध थीं और अपनी सांस्कृतिक दृष्टि से अलग पहचान रखती थीं ।

डॉ. विमलशंकर के अनुसार "१९वी शताब्दी के मध्य तक समाजशास्त्र एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में स्थान नहीं ग्रहण कर पाया था । इस काल के विद्वानों के मतानुसार समाज मानव की मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करनेवाले समूह के रूप में था । काम्टे तथा स्पेन्सर ने आग्रहपूर्वक कहा है कि 'समाज' कुछ व्यक्तियों का संगठित नाम नहीं है परंतु एक विशिष्ट सत्ता है, जो उससे संबंधित व्यक्तियों की व्यवस्था करती है।"[७]

इसी काल में कुछ विद्वानों ने यह स्पष्ट किया कि 'समाज' अलौकिक शक्ति का लौकिक रूप है जिसकी मानव-मनोविज्ञान के अनुसार व्याख्या की जा सकती है एवं साथ ही वह एक ऐसा अंग है, जिसका नियोजित अन्वेषण किया जाना चाहिए परंतु ये सभी विद्वान समाज के वास्तविक स्वरूप पर सहमत नहीं हो पाते हैं । इसके संबंध में कहा जा सकता है कि १९ वी शताब्दी में समाज में स्थित व्यक्तियों के कार्य को महत्व दिया जाता है जो एक-दूसरे की जरूरतों की पूर्ति के साधन उपलब्ध कराते हैं ।

डॉ. विमलशंकर के अनुसार '२०वी शताब्दी के विद्वानों के 'समाज' संबंधी विचारों में पर्याप्त मत-वैभिन्न्य पाया जाता है । इस काल में समाज शब्द अधिक व्यापक अर्थ में 'विस्तृत मानवता' या 'मानव-जाति' अथवा 'मानव संगम का प्रामाणिक आधार' आदि शब्दों का उल्लेख मिलता है। एम. गिन्सबर्ग, आर. एम. मैकाइवर तथा टी.पार्सन्स सभी ने लगभग यह मत व्यक्त किया है कि सामाजिक संबंधों की पूर्ण बनावट ही समाज है।'[८] इस काल के डब्ल्यू. जी. समर एवं ए. एस. किलर जैसे समाजशास्त्रियों की दृष्टि से "'एक समाज' ऐसे मानव प्राणियों का समूह है जो अपनी जाति की निरंतरता के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए सहयोगपूर्ण प्रयासों में जीवित रहता है ।"[९] आर. लिंटन ने "'एक समाज' को परिभाषित करते हुए कहा, 'एक समाज' ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो पर्याप्त समय तक साथ-साथ रहकर कार्य कर चुके हैं अथवा स्वयं को सुपरिभाषित सीमाओं में आबध्द करके एक सामाजिक इकाई के रूप में विचार करते हैं।"[१०]

गिन्सबर्ग के शब्दों में "समाज सुनिश्चित संबंधों एवं व्यवहार की पध्दातियों से सुसंबध्द व्यक्तियों का ऐसा समूह है जो दूसरे व्यक्तियों से सहज ही अलग पहचाना जा सके।"[११]

एल. विल्सन एवं डब्ल्यू. एल. कोल्फ के शब्दों में "'समाज' एक ऐसा समूह है जिसके अंतर्गत सदस्य सामान्य जीवन की प्रारंभिक आवश्यकताओं एवं दशाओं को पूर्ण करता है।"[१२]

इन परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'समाज' सामुहिक संबंधों का आधार है । मनुष्य के आपसी संबंध, उसका अन्य लोगों के साथ किया जानेवाला व्यवहार ही समाज के निर्माण एवं विकास में सहयोग प्रदान करता है । इनके माध्यम से ही समाज की एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को उसके विकास के लिए अपने अनुभव एवं अपनी संस्कृति हस्तांतरित करती है ।

१.१.१ समाज की इकाइयाँ

समाज एक व्यापक अवधारणा है । इसके विभिन्न अवयवों को सामाजिक इकाइयाँ कहा जा सकता है जो निम्नलिखित हैं –

क) व्यक्ति – समाज की प्राथमिक इकाई व्यक्ति है । एक से अधिक व्यक्तियों की आंतरिक क्रिया-प्रतिक्रिया से सामाजिक संबंधों का प्रारंभ होता है ।

ख) परिवार – समाज की प्राथमिक तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्था परिवार है । इसका आधार व्यक्तियों के आंतरिक संबंध हुआ करते हैं । परिवार के मूल लक्षणों में यौन-संबंध, सामान्य निवास-स्थान, रक्त संबंध, आर्थिक व्यवस्था तथा वंशावली को सम्मिलित किया जाता है । परिवार के मुख्य छह प्रकार्य होते हैं – आर्थिक संबंधों की स्थापना और रक्षण, मनोरंजनात्मक, सुरक्षात्मक, धार्मिक तथा शैक्षणिक । समाज निर्माण की प्रक्रिया परिवार से ही शुरु होती है । व्यक्ति के जीवन के लिए आवश्यक सामाजिक गुणों की शिक्षा परिवार से ही शुरु होती है । इसलिए परिवार को सामुहिक जीवन की सशक्त पाठशाला कहा गया है । परिवार में आपसी प्रेम, बंधुता, सहजीवन, कर्तव्य, सहयोग, त्याग, रहन-सहन, सहनशीलता आदि सामाजिक गुणों का विकास होता है । साथ ही सेवा, दया, प्रेम, त्याग, श्रध्दा, कर्तव्यनिष्ठा, प्रामाणिकता, निस्वार्थ वृत्ति आदि नैतिक गुणों के संस्कार परिवार में किए जाते हैं । यही संस्कार परिवार तथा समाज में जीने के लिए सहयोग देते हैं और मनुष्य को आनंदपूर्ण जीवन जीने में मदद करते हैं ।

ग) समूह – 'समूह' व्यक्तियों के उस योग को कहते हैं, जिसमें विभिन्न लोगों के बीच किसी विशेष आधार पर निश्चित संबंध होते हैं । प्रत्येक व्यक्ति समूह के प्रति और उसके प्रतीकों के प्रति सतर्क होता है । वे एक-दूसरे के प्रति जागरूक होते हैं ।

घ) समिति – समाज में प्रत्येक व्यक्ति की कुछ आवश्यकताएँ होती हैं । इन आवश्यकताओं की पूर्ति कभी सरल रूप से और कभी कठिन रूप से होती है । जब मनुष्य अपनी इन

आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक निश्चित नियमबध्द संगठन का निर्माण करते हैं, तो इस संगठन को समाजशास्त्रीय अर्थों में 'समिति' कहते हैं। इसी के माध्यम से वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है ।

ङ) समुदाय - जब किसी समूह के सदस्य अपने समूह से किसी विशेष स्वार्थ की पूर्ति के कारण संबंधित नहीं होते, बल्कि उसमें अपना सामान्य जीवन व्यतीत करते हैं, तब ऐसे छोटे या बड़े समूह को ही 'समुदाय कहा जाता है । समुदाय मनुष्यों का योग है जो कि साथ-साथ रहते हैं और एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं । यहाँ पर व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से नहीं बल्कि परोक्ष रूप से एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं ।

च) संस्था - संस्थाओं का संबंध व्यक्तियों के समूह से नहीं होता बल्कि इसका तात्पर्य उन कार्य विधियों से होता है जिनके माध्यम से समाज अपने लक्ष्यों को नियमबध्द रूप से प्राप्त करता है। समाज व्दारा स्वीकृति तथा समाज की परंपरा में व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपनाए गए साधन, कार्य-विधियाँ, तरीके या प्रणालियाँ आदि को संस्था कहते हैं।

उपर्युक्त सारी इकाइयाँ समाज को कार्यरत रखने में सहायक होती हैं । भारतीय समाज को अगर देखा जाए तो प्रचीन काल में यह समाज चार वर्णों में विभाजित था। हर वर्ण के अपने-अपने अलग-अलग कार्य होते थे जो समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे । कालांतर में भारतीय समाज में जाति-व्यवस्था ने प्रवेश किया और वर्ण-व्यवस्था में विकृति आने लगी । अनेक विधर्मियों ने भारत पर आक्रमण किए और अपने धर्मों का प्रचार प्रसार किया । अज्ञान के कारण समाज में आयी विकृतियों को नष्ट करने के लिए कई सारी संस्थाओं का निर्माण हुआ । इन संस्थाओं के माध्यम से भारतीय समाज में जागृति आनी शुरु हुई । शिक्षा के प्रचार प्रसार से तथा विज्ञान के अविष्कारों से परिचय प्राप्त कर भारतीय

समाज विकसित होने लगा । अंग्रेजों से स्वाधीनता प्राप्त कर विज्ञान की सहायता से भारत में औद्योगीकरण का आरंभ हुआ । इससे भारतीय समाज तेजी से विकसित होने लगा ।

सन् १९६० के आस-पास भारतीय समाज में आधुनिकीकरण का विकास तेज गति से होने लगा था और इसके कुप्रभाव भी समाज पर अपना प्रभाव डालने लगे थे । भारतीय सामाजिक ढाँचे की स्थिरता का आधार ग्राम तथा परिवार रहे हैं, लेकिन सन् १९६० तक आते-आते भारत में बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना होने लगी । विदेशी तकनीकी ज्ञान के साथ विदेशी संस्कृति से पहले से प्रभावित भारत उत्तरोत्तर और प्रभावित होने लगा । पंचवर्षीय योजनाओं की विफलता ने भारत में एक नव-समृध्द अफसरों एवं व्यापारियों का वर्ग पैदा कर दिया, जिस पर सामाजिक नियंत्रण की पकड़ ढ़ीली पड़ती चली गयी थी । इस समय पर्याप्त भूमि-सुधार न हो पाने से एवं जमींदारों के अत्याचारों की वजह से गावों की स्थिति दयनीय बनी रही फलतः नगरों की नौकरी, समृध्दि और सुविधाओं ने गाँव की खेतिहर जनता को आकृष्ट किया । इसके परिणामस्वरूप गाँव और ग्रामीण परिवार का परंपरागत ढाँचा चरमराने लगा । विदेशी कर्ज के दबाव के कारण मुद्रा-स्फीति की स्थिति पैदा हुई थी, जिसके परिणामस्वरूप कमर-तोड़ महँगाई सामने आयी । इससे मध्यम वर्ग की जिंदगी बदतर हो गयी । इससे संगठित परिवार में पारिवारिक सदस्यों में सहनशीलता और आत्मत्याग की भावना समाप्त हो गयी । इससे पारिवारिक संबंधों का क्षरण बहुत तेजी से होने लगा । ८वे दशक तक आते-आते महानगरीय जीवन से संगठित परिवार रूपी संस्था गायब हो गयी । इतना ही नहीं, एकल परिवार में रहनेवाले लोगों के दाम्पत्य संबंध भी चरमरा उठे ।

आधुनिक युग में अनेक संस्थाओं ने नारी शिक्षा को महत्वपूर्ण माना और उसके विकास के लिए बहुत प्रयत्न किए । आगे जाकर औद्यौगीकरण और नगरीकरण ने नारी शिक्षा को अभूतपूर्व प्रोत्साहन दिया । महानगरों में पुरुष के साथ-साथ नारी को भी आजीविका अर्जित करने के लिए विवश होना पड़ा । मध्यवर्ग की महिलाएँ अधिकाधिक शिक्षित होकर जीवन में

संघर्ष करने लगीं । इसी वर्ग से कई सारी शिक्षित महिलाएँ कथा लेखिकाओं के रूप में उभरीं और उन्होंने इसी जीवन यथार्थ को अपनी कथाओं के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाया। सूर्यबाला इन्हीं लेखिकाओं में से एक है, जिनकी कहानियों में उपर्युक्त स्थितियों के परिणामस्वरूप समाज में आए हुए बदलावों का अंकन मिलता है ।

१.२ संस्कृति की अवधारणा एवं स्वरूप

'संस्कृति' तितली की भाँति विविधरंगी शब्द है । पाश्चात्य एवं भारतीय विचारकों ने इसे अनेक रूपों में परिभाषित किया है । ज्ञान की विविध शाखाओं जैसे मनोविज्ञान, धर्मशास्त्र, दर्शन शास्त्र, समाजशास्त्र, मानव शास्त्र, वास्तु शास्त्र आदि ग्रंथों में संस्कृति की विविध रूपों में विवेचना मिलती है ।

संस्कृति मानवीय निर्मिती है, जिसे मनुष्य ने अपने जीवन-यापन की प्रणालियों से संबंधित आवश्यक एवं उपयोगी तत्वों को विकसित कर अस्तित्व में लाया है । विश्व की प्रारंभिक संस्कृति के संबंध में यह मान्यता है कि ईश्वर ने मनुष्य के पथ-निर्देशन हेतु, जिससे कि वे श्रेष्ठ मानव बनें, जीवन-पद्धति संबंधी आवश्यक सिद्धांत वेदों के माध्यम से प्रदान किये थे । ध्यान मग्न ऋषियों ने ध्यानावस्था में अपने पवित्र अन्तःकरण में ईश्वर से दिव्य ज्ञान प्राप्त होने पर वेदों के रूप में उसे प्रस्तुत किया । इन सिद्धांतों के आधार पर वैदिक संस्कृति ने रूप धारण किया जो विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है ।

'संस्कृति' शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' से क्तिन प्रत्यय लगाने पर उत्पन्न हुआ है । जिसका अर्थ है - संशोधन करना, सुधारना, सर्वोत्तम बनाना, सुंदर या संपूर्ण बनाना, सजाना, सँवारना, परिष्कृत करना, शिक्षित करना, पवित्र करना, शुध्द करना, सुसज्जित करना, सुसंपन्न करना, पकाना, संचित करना, सुनिर्मित करना, आदि । इस आधार पर 'संस्कृति' शब्द शुध्दीकरण, अलंकरण, परिष्करण, सुशिक्षण, सुसंपादन, संचयन आदि अर्थों की अभिव्यंजना करता है ।

'संस्कृति' शब्द की व्युत्पत्ति 'संस्कार' शब्द से हुई है । जिसका अर्थ है – सुधारना, संशोधन करना, ठीक करना, उत्तम बनाना, परिष्कार करना । 'संस्कृत' शब्द का भी यही अर्थ है । वाचस्पति गैरोला संस्कृति की भूमि संस्कारों पर आधारित मानते हुए लिखते है, " संस्कार पद का अर्थ संस्कृत, उपयुक्त या सम्यक बनाना है । किसी विकृत वस्तु को विशेष क्रियाओं व्दारा उत्तम बना देना ही उसका संस्कार है । ऐसे संस्कार ही संस्कृति के जन्म और उत्कर्ष के कारण एवं साधन हैं ।"[१३]

संस्कार से अभिप्राय संशोधन अथवा उत्तम बनानेवाले कार्य से है । इसी अर्थ में 'कृ' का 'स्कृ' हो जाता है – "सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे"[१४]

पाणिनि के इस सूत्र से 'भूषण' अर्थ में 'सुट्' होने पर संस्कृति शब्द सिध्द होता है । संस्कार मनुष्य एवं जाति, दोनों के होते हैं । जातीय संस्कारों को ही संस्कृति की संज्ञा दी जाती है ।

संस्कार कार्यों की पूर्ति का गंभीर और नैतिक दायित्व है जिसमें धार्मिकता और पवित्रता की भावना मिली रहती है । साहित्यिक दृष्टि से देखा जाए तो शिक्षा, शोभा, आभूषण, धार्मिक विधि–विधान आदि का सम्मिलित रूप ही संस्कार है । डॉ. राजबली पाण्डे ने संस्कार की अवधारणा और स्वरूप को निरूपित करते हुए कहा है– "संस्कार का अभिप्राय शुध्दि की धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के दैहिक, मानसिक व बौध्दिक परिष्कार के लिए किये जानेवाले अनुष्ठानों से है जिनसे वह समाज का पूर्ण विकसित सदस्य हो जाये ।"[१५]

जैमिनी सूत्र में संस्कार की प्रक्रिया को इन शब्दों में स्पष्ट किया गया है – "संस्कार किसी वस्तु को ऐसा रूप देने की प्रक्रिया का नाम है जिससे उसे और उपयोगी बनाया जा सके।"[१६] संक्षेप में कहा जा सकता है कि संस्कार उस तत्व का नाम है जिससे मानव जीवन के दोषों का परिमार्जन कर उसे भव्यता प्राप्त करने में मदद करना । मनुष्य में उच्च मानवीय गुणों के साथ–साथ आदिम पाशव प्रवृत्तियाँ भी रहती हैं उन्हें विविध सामाजिक और नैतिक संस्कारों

व्दारा प्रतिबंधित तथा परिमार्जित करके मानवीय समाज के अनुकूल गुणों को शिक्षा, अध्यवसाय आदि व्दारा विकसित करके ही वह सच्चा मानव कहलाने योग्य बनता है । इसी अर्थ में डॉ. भगवतीचरण उपाध्याय कहते है - "मनुष्य भी अपनी आदिम अवस्था में संस्कारहीन रहता है और धीरे-धीरे वह अपने ऊपर प्रतिबंध लगाकर अनुचित को दबाकर, उचित को लेकर ही सुंदर बनाता है । व्यक्ति सत्ता में शरीर मन को शुध्द करके एक ओर व्यक्तिगत विकास, दूसरी ओर उसका समूह में शिष्ट आचरण, समाज के प्रति उचित व्यवहार उसे संस्कृत बनाता है ।"[१७]

इससे स्पष्ट होता है कि संस्कृति से तात्पर्य संस्कारों से संपन्न होना, शुध्दि करना अथवा व्यक्ति को सुधारना आदि से है । इस दृष्टि से जिस व्यक्ति का आचरण व्यक्तिगत तौर पर और सामाजिक तौर पर दोनों रूपों से शुध्द हो और मानवीय तथा सामाजिक दोनों तरह के गुणों से परिपूर्ण हो, उसी को संस्कृत कहा जा सकता है । आज हिंदी में 'संस्कृति' शब्द 'कल्चर' का पर्याय माना जाता है । अतः कल्चर शब्द का अर्थ समझना आवश्यक होगा ।

"व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'कल्चर' शब्द 'cult' धातु में 'ure' प्रत्यय लगने से निष्पन्न हुआ है। इसकी व्युत्पत्ति लैटिन भाषा की 'कोलर' से उत्पन्न 'कुलटुरा' शब्द से हुई है जो संक्षेप में पूजा करने तथा कृषि कार्य का द्योतक है ।"[१८] culture & cultivation की व्युत्पत्तिमूलक और अर्थमूलक समानता को देखते हुए संस्कृति की प्रक्रिया के स्पष्टीकरण में डॉ. प्रसन्नकुमार आचार्य लिखते हैं, "'कल्टिवेशन' का अर्थ कृषि है । भूमि की प्राकृतिक अवस्था को परिष्कृत करना ही कृषि का उद्‌देश्य है । कृषि की विभिन्न पध्दतियों व्दारा भूमि का परिष्कार किया जाता है । भूमि की भाँति मनुष्य की मानसिक और सामाजिक अवस्थायें भी विकसित हुआ करती हैं । संस्कृति अथवा कल्चर मनुष्य की सहज प्रवृत्तियाँ, नैसर्गिक शक्तियाँ तथा उनके परिष्कार का द्योतक है ।"[१९]

कई बार ऐसा होता है कि एक शब्द के अंतर्गत इतने अधिक अर्थों को समाहित कर लिया जाता है कि उस शब्द के किसी एक अर्थ को निश्चित करना अत्यंत कठिन हो जाता है । संस्कृति शब्द भी इसी प्रकार का है। आज इस शब्द के अंतर्गत हम जिन अर्थों को समाहित करते हैं, उनका इतना बड़ा भण्डार है कि प्रत्येक विद्वान उसे अपने ढंग से, अपनी इच्छा के अनुरूप ग्रहण करने का प्रयास करता है । विद्वानों ने अपनी क्षमता के अनुसार जो इस विषय पर मंथन किया है और अपने विचार प्रकट किए हैं उनकी चर्चा यहाँ आवश्यक है ।

भारतीय विचारकों में डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन धर्म, दर्शन और संस्कृति के क्षेत्र संस्कृति संबंधी उनकी धारणा है, "संस्कृति वह वस्तू है जो स्वभाव, माधुर्य, मानसिक निरोगता एवं आत्मिक शक्ति को जन्म देती है ।"[२०] मंगलदेव शास्त्री मानवता के स्थापक तत्वों को संस्कृति के रूप में स्वीकार करते हुए लिखते हैं, "किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन व्यापारों में सामाजिक संबंधों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करनेवाले तत्वद् आदर्शों की समष्टि को ही संस्कृति समझना चाहिए ।"[२१] डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल इसे मानव की जीवन यात्रा के साथ संबध्द करते हुए कहते हैं, "संस्कृति मनुष्य के भुत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांगपूर्ण प्रकार है। हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति है ।"[२२]

हिंदी के प्रसिध्द आधुनिक कवि एवं आलोचक श्री रामधारी सिंह दिनकर का कहना है कि "संस्कृति जिंदगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते हैं । इसलिए जिस समाज में हम पैदा हुए हैं अथवा जिस समाज में मिलकर हम जी रहे हैं, उसकी संस्कृति हमारी है, यद्यपि अपने जीवन में हम जो संस्कार जमा करते हैं वह भी हमारी संस्कृति का अंग बन जाता है और मरने के बाद हम अन्य वस्तुओं के साथ अपनी संस्कृति की विरासत भी अपनी संतानों के लिए छोड़ जाते हैं । इसलिए संस्कृति वह चीज मानी जाती है जो हमारे सारे जीवन को व्यापे हुए है तथा उसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ है ।"[२३]

इस प्रकार 'संस्कृति' का मनुष्य के जीवन से, उसके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से गहरा संबंध है। इस बात को महादेवी वर्मा व्यक्त करती हुई कहती है – "संस्कृति शब्द से हमें जिसका बोध होता है, वह वस्तुतः ऐसी जीवन पध्दति है, जो एक विशेष प्राकृतिक परिवेश में मानव-निर्मित परिवेश संभव कर देती है और फिर दोनों परिवेशों की संगति में निरंतर स्वयं आविष्कृत होती रहती है । यह जीवन पध्दति न केवल बाह्य, स्थूल और पार्थिव है और न मात्र आंतरिक, सूक्ष्म और अपार्थिव । वस्तुतः उसकी ऐसी दोहरी स्थिति है, जिसमें मनुष्य के सूक्ष्म विचार, कल्पना, भावना आदि का संस्कार, उसकी चेष्टा, आचरण आदि बाह्याचार की परिष्कृति उसके अंतर्जगत पर प्रभाव डालती है।"[२४] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार "मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाएँ ही संस्कृति है।"[२५]

पाश्चात्य विद्वानों ने भी संस्कृति या कल्चर पर अपने विचार व्यक्त किए हैं । वस्तुतः 'कल्चर' सर्वप्रथम कृषि कार्य संबंधी अर्थ का द्योतक था । पहले पहल इसे सुप्रसिध्द विचारक बेकन ने व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया और इसे मानव के नैतिक जीवन, धार्मिक जीवन तथा बौध्दिक जीवन के साथ जोड़ा । उसके पश्चात् मैथ्यू आर्नड ने अपनी संस्कृति विषयक अवधारणा को इन शब्दों के माध्यम से प्रकट किया, "जीवनगत परिपूर्णता के प्रति प्रेम तथा उस परिपूर्णता का अध्ययन ।"[२६] परंतु व्यक्ति समाज से अलग एकांकी रहकर उक्त परिपूर्णता को नहीं प्राप्त कर सकता । अतएवं यह एक सामाजिक भाव है तथा सांस्कृतिक मनुष्य समानता के सच्चे देवदूत हैं। रैडोलिफ ब्राउन संस्कृति को एक पारंपारिक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करते हुए कहते है कि, "संस्कृति वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से किसी सामाजिक वर्ग या श्रेणी में विचार, अनुभूति या क्रिया के सुसंस्कृत ढंग एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संक्रांत किए जाते हैं ।"[२७] संस्कृति संबंधि परिभाषाओं में आधुनिक पाश्चात्य आलोचक टी. एस. इलियट की धारणाएँ महत्वपूर्ण हैं । उनका कहना है

कि "संस्कृति विभिन्न क्रियाओं का योग मात्र है, बल्कि वह जीवन-यापन की एक पध्दति है.... जो जीवन को जीने योग्य बनाती है ।"[२८]

इस प्रकार उपर्युक्त भारतीय व पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाओं को देखते हुए कहा जा सकता है कि संस्कृति मनुष्य को वैचारिक स्तर से प्रशिक्षित करना शुरू करती है और उसके जीवन के प्रत्येक कर्म क्षेत्र में प्रस्फुटित होती है । यह एक ऐसी विरासत है, जो बच्चे के जन्म के साथ-साथ ही परिवार तथा समाज व्दारा उसे अनायास हस्तांतरित की जाती है । यह समाज के लोगों की इच्छा और क्रिया को संतुलित करके संतुष्ट करती है तथा उन्हें ज्ञान की ओर प्रोत्साहित करती है । मनुष्य को तामसिक और राजसिक गुणों से ऊपर उठाकर सात्विक गुणों से परिचित करवाती है । अतः मनुष्य को तामसिक गुणों से ऊपर उठाने के ही पीढ़ी दर पीढ़ी सम्मिलित समस्त गुणों का नाम संस्कृति है । इस प्रकार उसका संबंध मानव के भौतिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, साहित्यिक, दार्शनिक, कलात्मक आदि सभी प्रकार के महत्वपूर्ण विकासों एवं जीवन के विविध पहलुओं से है ।

संस्कृति का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को सुसंस्कृत एवं सभ्य बनाना है । संस्कृति का लक्ष्य देश या जाति के जीवन को पवित्र एवं परिष्कृत रूप देना है । संस्कृति हमारे अंतर को शुध्द एवं निर्मल बनाती है । हमारे रहन-सहन तथा व्यवहार को सुसंस्कृत एवं सुंदर बनाने में वह सहायता करती है । इस तरह संस्कृति सद्गुणों की जननी है । वह मनुष्य में उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठा करती है । संस्कृति धर्म, कर्म एवं त्याग के नियम बनाती है । किसी देश की संस्कृति का ध्येय उसके जन समुदाय के आचरण एवं आचार-विचार के शुध्दीकरण का होता है । उसमें विनम्रतापूर्ण जीवन व्यतीत करने की पध्दति के आदर्श संस्कृति से प्राप्त होते हैं । समाज में श्रेष्ठ एवं आदर्श व्यक्तित्व के विकास में संस्कृति का सराहनीय सहयोग रहता है। उस दृष्टि से संस्कृति सद्गुणों का निचोड़ है जिसमें प्रमुख रूप से आचार की पवित्रता एवं

व्यवहार की शिष्टता सम्मिलित है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि संस्कृति का मुख्य उद्देश्य शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक शक्तियों का विकास करना ही है ।

उपर्युक्त जानकारी के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संस्कृति की विशेष उपलब्धि जीवन में नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों का समावेश करना है । मानव जीवन में इन मूल्यों का समावेश उसके खुद के लक्ष्य, उद्देश्य, हित भाव, व्यवहार, विश्वास, रहन-सहन, सांस्कृतिक कार्य एवं आचरण आदि के रूप में लक्षित होता है ।

संस्कृति का लक्ष्य परंपरागत मूल्यों का नवीन पीढ़ी तक संप्रेषण, नूतन मूल्यों का निर्माण एवं उनका मानव-जीवन में समाने के लिए कार्यप्रणाली का निर्धारण करना है । यहाँ परंपरा से प्राप्त मूल्यों से अभिप्राय मौखिक सांस्कृतिक परंपरा से है, जिससे कि अधिकांश जनता स्वतः अपनी आवश्यकतानुसार सांस्कृतिक विचार ग्रहण करती है और वह पुस्तक, संगीत, नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला, भवन-निर्माण कला एवं अन्य ठोस वस्तुगत आकृतियों के माध्यम से साकार रूप प्राप्त करता है ।

"संस्कृति के अंतर्गत मानव जाति की क्षमता, दक्षता, योग्यता, परिज्ञान, संबंधी प्रक्रिया, पध्दति, संहिता, नीति, विधि, शैली एवं कला, भाषा, विज्ञान, संप्रेषणीय बोध, दर्शन, चिंतन, अनुभव एवं व्यवहारादि को सम्मिलित किया जा सकता है ।"[२६]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि संस्कृति निरंतर प्रवाहित ऐसी एक धारा है जो हर मनुष्य को खुद में समाते हुए उसे सुसज्जित, परिष्कृत कर सुसंस्कृत बनाती है । मानव-समाज में होनेवाली समस्त क्रियाकलापों को खुद में समाकर आने वाले हर समय की नवीनता को स्वीकारते हुए मनुष्य के जीवन को सुंदर बनाती है । हर एक देश की अपनी एक संस्कृति होती है । विश्व की प्राचीन संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति की गणना की जाती है । मिस्त्र, सुमेर और बाबुल के समकालीन भारतीय संस्कृति मानी जाती है । इस संस्कृति की विशेषताओं को इस प्रकार देखा जा सकता है-

१.२.१) समन्वयवाद

भारतीय संस्कृति कई जातियों के मेल से बनी संस्कृति है । उसे वर्तमान स्वरूप देने में द्रविड़, नेग्रिटो और अस्ट्रिक संस्कृतियों से भी बहुत से महत्वपूर्ण तत्व प्राप्त किए हैं । इसके अलावा यूनानी, पह्लव, शक, हूण, मूची, मुसलमान और ईसाई लोग भारत में अपनी-अपनी संस्कृति लेकर आए । भारतीय संस्कृति ने इसमें से आवश्यक और अपने निजी स्वरूप के अनुकूल लगनेवाली सामग्री ग्रहण कर उसे अपना अंश बना लिया । इस प्रकार की समन्वयवादिता भारतीय संस्कृति की विशेषता है ।

अनेक संस्कृतियों की महत्वपूर्ण विशेषताओं को सम्मिलित करते-करते सहिष्णुता, उदारता और अनुकूलन के गुण सहज ही इस संस्कृति में विकसित होते गए । इन्हीं के कारण भारत में जीवन-शक्ति विकसित करने में हमारी संस्कृति को कोई कठिनाई नहीं हुई ।

१.२.२) आध्यात्मिकता

भौतिक सुख समृध्दि के विकास के साथ-साथ आध्यात्मिकता को भी भारतीय संस्कृति में बहुत महत्व प्राप्त हुआ है । इसके बिना जीवन की क्षणभंगुरता और अपूर्णता पर विजय प्राप्त नहीं किया जा सकता । इसी के कारण यहाँ पत्थर से लेकर त्यागी, ऋषि, मुनि और महात्मा कहीं अधिक आदर और श्रध्दा से पूजे जाते हैं । धार्मिक और सांप्रदायिक उदारता का मूल वेदों में मिलता है । वेदांत, सांख्य, योग, वैशेषिक, मीमांसा, बौध्द जैसे कई दर्शनों को निष्कासित करने की भारतीय संस्कृति को आवश्यकता नहीं महसूस हुई क्योंकि रोम रोम में रमनेवाला एक ही ईश्वर का अंश, आत्मा विविध रूपों में संसार में व्याप्त है इस भावना ने सभी को आत्मसात करने की भावना को जन्म दिया है । इसका व्यवहारिक रूप विश्व-बंधुत्व की भावना में देखा जा सकता है । आत्मा के अमरत्व की कल्पना ने जन्मांतरवाद, कर्मफल के सिध्दांत को भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग बना दिया है । जिसके कारण प्राणांतक, निराशा और घुटन भरे असंतोष को शताब्दियों तक मनोवैज्ञानिक समाधान मिलता रहा ।

१.२.३) योजनाबध्द जीवन पध्दति

भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल में आश्रम पद्धति का पालन होता था । इस आश्रम व्यवस्था व्दारा मानव के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास का सुनियोजित विधान हुआ है। यह जीवन को चार सोपानों में विभाजित कर अलग-अलग अवस्थाओं में विभिन्न कार्यों के संपादन, सामाजिक कर्तव्यों के निर्वाह, जीवन-यापन की प्रक्रिया और नैतिक विकास की योजना है। *भारतीय संस्कृति, जीवन की इस योजना के व्दारा व्यक्ति, परिवार, समाज और विश्व-*कल्याण का समन्वय करती थी । भोग और त्याग के संतुलित सामंजस्य ने जीवन की सर्वांगीण प्रगति को आवश्यक रूप से स्वीकार करते हुए मोक्ष या मुक्ति को अंतिम लक्ष्य माना था ।

१.२.४) वर्ण व्यवस्था

भारतीय मनीषियों ने समाज की आवश्यकता, रुचि, योग्यता, प्रकृति और कार्यक्षमता के आधार पर समाज को ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र आदि वर्णों में विभाजित किया था । इन चारों वर्णों के समाज के प्रति अपने-अपने कर्तव्य होते थे जैसे ब्राम्हण के लिए ज्ञान प्रदान करना, धन और किर्ती से दूर रहना । आत्म-संयम, सरलता, तप, त्याग, पवित्रता आदि उसके प्रमुख गुण थे । शौर्य, तेज, धैर्य, चातुर्य, व्यवहार-कुशलता युध्द में साहस आदि क्षत्रिय के कार्य थे। अर्थ-वृध्दि और व्यवसाय का विकास करना, दवा-दारू करना, मनोरंजन आदि की व्यवस्था करना वैश्यों के और इन सभी वर्णों के लोगों की सेवा करना शुद्रों का कर्तव्य था । इस व्यवस्था के निर्माण के समय यह तय था कि किसी भी वर्ण का कोई भी व्यक्ति मानसिक, शारीरिक एवं आत्मिक विकास के व्दारा किसी भी वर्ण में स्थान पा सकता था, लेकिन बाद में जाकर इसका स्थान जाति-प्रथा ने लिया और यह व्यवस्था एक विडंबना बनकर रह गयी।

१.२.५) प्रकृति प्रेम

किसी भी परिवेश पर वहाँ की प्रकृति का गहरा प्रभाव रहता है । प्राकृतिक सौंदर्य की संपदा ने अपने देश की सौंदर्य चेतना को उच्चता प्रदान की है । उसके साथ ही मानव मन को अपने आकर्षण से मुग्ध कर रखा है। इसी की वजह से भारत में चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत, आयुर्वेद जैसी ललित कलाओं ने विकास प्राप्त किया। यहाँ नदियाँ, वृक्ष, पशु, पत्थर, सूर्य, चंद्र जैसे प्राकृतिक तत्वों में भगवान के निवास की मान्यता है । हिंदी साहित्य में प्रकृति को अहम् स्थान प्राप्त हुआ । विशेषकर छायावादी युग में प्रकृति के आलंबन और उद्दीपन के सुंदर चित्र साहित्य में उकेरे गए हैं । ऊषा, संध्या, वसंत, अनेक पुष्प यहाँ भाषा के प्रतीक बन गए । भारतीय साहित्य में प्रकृति वर्णन को एक आवश्यक तत्व माना गया है। विभिन्न ऋतुओं के प्राकृतिक वैभव ने भारतीय संस्कृति को उत्सवप्रियता का गुण प्रदान किया है । भारत में ऋतुओं के अनुसार उत्सव और पर्व मनाए जाते हैं । इस तरह से मनुष्य के जीवन में प्रकृति एक अभिन्न अंग बनकर रह गयी है जिसका प्रभाव उसकी संस्कृति पर अवश्य दिखायी देता है । रघुवंश, अभिज्ञान शाकुंतलम, कुमार संभव, ऋतुसंहार जैसी सभी रचनाएँ प्रकृति के रमणीय एवं विराट चित्रों के वैभव से युक्त है ।

१.२.६) लोकमंगल की भावना

अपनी प्रारंभिक अवस्था में कुछ परिस्थितियों की माँग और सामाजिक संरचना के स्वरूप से भारतीय संस्कृति में सार्वजनीक भावनाओं का विकास हुआ । सभी प्राणियों को एक ही ईश्वर के तत्व की घोषणा के उपरांत लोकमंगल और लोककल्याण को हर क्षेत्र में व्यक्तिगत हित की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाने लगा । परिणामतः सभी क्षेत्रों में ऐसी बातों को श्रेष्ठ समझा जाने लगा जिसमें लोककल्याण की भावना निहित हो । साहित्य भी इसके प्रभाव से नहीं छूट पाया । इसलिए सेवा, परोपकार, त्याग, बलिदान, विनम्रता, उदारता, सतीत्व आदि गुण प्राचीन काल से यहाँ सुसंस्कृत व्यक्ति की कसौटी माने जाने लगे । इन गुणों से परिपूर्ण व्यक्तियों को

हम आज भी पूजते हैं । राम, कृष्ण, गौतम बुध्द, महावीर आदि इसी के उदाहरण हैं । व्यक्ति से समाज, समाज से देश और देश से विश्व मात्र का कल्याण भारतीय संस्कृति का आदर्श है -

सर्वेअपि सुखिनः सन्तु सर्वे संन्तु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चिद् दुःख माप्यनुयात् ।।

भारतीय संस्कृति के मूल सिध्दांतों ने इस देश के साहित्य को वैदिक युग से आधुनिक युग तक बराबर प्रभावित किया है । अध्यात्मप्रेरित उदारता, नैतिकता और सत्य के प्रति आस्था, कर्म एवं पुरुषार्थ प्रेम, विश्व-कल्याण, सौंदर्य चेतना, समन्वित प्रकृति प्रेम आदि सांस्कृतिक विशेषताओं को साहित्य में सहज रूप से देखा जा सकता है ।

१.२.७) पुरुष प्रधान संस्कृति

पुरुष प्रधान संस्कृति में परिवार में सभी निर्णय लेने का अधिकार पुरुष को होता है । ऐसे परिवारों में नारी को दुय्यम स्थान दिया जाता है । पुरुष घर की सारी जिम्मेदारियों को निभाता है । परिवार की सुरक्षा का उत्तरदायित्व उसी को निभाना पड़ता है, इसीलिए भारतीय परिवारों में पुरुष को महत्व प्रदान किया जाता है ।

भारतीय संस्कृति में पली-बढ़ी सूर्यबाला अपनी इसी सांस्कृतिक विरासत को संजोए हुए है । इसी वजह से उनके साहित्य पर भी इसका प्रभाव दृष्टिगत होता है, जिसका अध्ययन हम आगे जाकर करेंगे ।

१.३ समाज एवं संस्कृति का संबंध

किसी सुनिश्चित अंचल अथवा भौगोलिक प्रदेश में बहुत से लोग निवास करते हैं । ऐसे लोग जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक-दूसरे के साथ मिलजुलकर काम करते हैं । जिसके परिणामस्वरूप अनेकों प्रकार की सार्थक क्रियाएँ एवं प्रतिक्रियाएँ जन्म लेती हैं और उनका विकसित रूप ही सामाजिक संबंधों को बनाये रखने के लिए मद्दगार साबित

होता है । प्रत्येक सामाजिक प्राणी एक-दूसरे की अपेक्षाओं के अनुकूल व्यवहार करता है । सामान्यतः मानवीय व्यवहार के नियामक, निर्देशक एवं नियंत्रक स्थान विशेष के मनुष्यों की आस्थाएँ, मान्यताएँ, परंपराएँ एवं कार्यप्रणालियाँ होती हैं, जो उस समाज की संस्कृति का आधार निर्मित करती है ।

वस्तुतः समाज एवं संस्कृति का संबंध अन्योन्याश्रित है । एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व लुप्त हो जाता है । 'संस्कृति' का आधार 'समाज' है एवं समाज को सुचारु रूप से संचालित करनेवाली पध्दति ही संस्कृति है । जब किसी युग अथवा स्थान के समाज की संस्कृति उसकी आवश्यकताओं को पूर्ण करने में समर्थ नहीं होती, तब सांस्कृतिक विघटन की प्रक्रिया प्रारंभ होती है । इस प्रक्रिया में पुरातन सांस्कृतिक मूल्य क्षीण होते जाते हैं । उनके स्थान पर नवीन मूल्य स्थापित हो जाते हैं । ये नवीन मूल्य वर्तमान एवं आगामी समाज तथा युग की आवश्यकताओं के अनुकूल होते हैं । समाज में रहनेवाले लोग एक-दूसरे से जुड़े रहने के लिए उचित व्यवहार की अपेक्षा करते हैं । साथ ही अपना आनंद व्यक्त करने के लिए अनेक पर्वों एवं त्योहारों का आयोजन करते हैं । एक प्रदेश विशेष के लोग अपना अलग पहनावा, आचार-विचार, खान-पान, रहन-सहन, पर्व-त्योहार, उत्सव, रीति-रिवाज, व्यवहार, कार्यप्रणालियाँ, मान्यताएँ रखता है । यहीं बातें उसकी संस्कृति निर्धारित करती हैं । यह संस्कृति, उसकी अपनी विशेषता रहती है, जो उसे अन्य प्रदेशों से अलग सिद्ध करती है । हर एक प्रदेश विशेष की अपनी एक संस्कृति होती है, जो उस समाज विशेष के लोगों को एकत्रित रहने के लिए प्रोत्साहित करती है । एक तरह की जीवन पध्दति जीते समय, समय के अनुसार, परिस्थितियों के अनुसार अनेक परिवर्तन समाज में आते हैं, उन्हीं परिवर्तनों के अनुसार संस्कृति के कई तत्वों में परिवर्तन अपेक्षित रहता है । इस तरह से समय एवं स्थितियों के अनुसार समाज एवं संस्कृति में परिवर्तन आता है । समाज में परिवर्तन से

संस्कृति में परिवर्तन अपेक्षित रहता है । इस तरह से समाज एवं संस्कृति का रिश्ता अटूट है।

१.४ समाज, संस्कृति और साहित्य का संबंध

'साहित्य' किसी समाज विशेष की समस्त संवेदनाओं का कोष कहा जा सकता है, क्योंकि साहित्य में ही युग विशेष की सामाजिक मान्यताएँ, सांस्कृतिक प्रतिमान तथा जीवन के मूल्य प्रतिफलित होते हैं । साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से समाज के स्वरूप को अभिव्यक्ति प्रदान करता हुआ युगीन आकांक्षाओं के अनुकूल परिवर्तित समाज निर्मित करने के लिए आवाहन करता है एवं समाज साहित्यकार को संपूर्ण परिवेश एवं जीवन की आवश्यक सुविधाएँ प्रदान कर इस योग्य बनाता है कि वह समाज की वाणी को मूर्त रूप प्रदान कर सके। इस प्रकार समाज साहित्यकार का एवं प्रकारांतर से साहित्य का नियामक तथा साहित्य सामाजिकता का संवाहक होता है ।

विश्व के प्रत्येक समाज में सामाजिक संगठन एवं विघटन की प्रक्रिया निरंतर प्रहावमान रहती है । समाज के व्यक्ति अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए सतत् संघर्ष करते रहते हैं । युगीन साहित्य उस समाज के संघर्ष को वाणी एवं नूतन दिशा प्रदान करता है ।

सहित्य एवं समाज की तरह साहित्य तथा संस्कृति का संबंध सनातन, अटूट एवं सुश्रृंखलित है। साहित्य के निर्माण में युगीन संस्कृति मूलभूत पदार्थ का स्थान ग्रहण करती है एवं संस्कृति के निर्माण में साहित्य प्रेरक, संचालक एवं संरक्षक की भूमिका संपन्न करता है । जिस प्रकार किसी वस्तु के निर्माण हेतु कच्चे पदार्थ की आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार साहित्य के निर्माण में साहित्यकार को युगीन संस्कृति से मूलभूत आधार सामग्री प्राप्त करने की आवश्यकता होती है । साहित्यकार समाज की विशिष्ट आशाओं, आकांक्षाओं, आवश्यकताओं, जीवन-पध्दतियों एवं कार्य-प्रणालियों, मूल्यों, विचारों, भावों, आदतों आदि को अपनी सारग्राही एवं पैनी दृष्टि से ग्रहण कर सार्थक एवं आकर्षक शब्द विधान से कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान

करता है । इस प्रक्रिया के मध्य साहित्यकार का जीवन-दर्शन युगीन पाठकों एवं रसिकों के भाव जगत को प्रभावित करता हुआ एक ओर संस्कृति के विकास में योगदान प्रदान करता है तो दूसरी ओर से उसे लिपिबध्द करता हुआ समकालीन संस्कृति को अक्षुण्ण भी बनाता है । इस प्रकार साहित्य संस्कृति का संरक्षक है और संस्कृति साहित्य की नियामक शक्ति बन जाती है ।

प्रायः साहित्यकार समाज का प्रत्यक्ष दृष्टा होता है । वह युगीन संस्कृति का अनुभवकर्ता भी होता है । सामाजिक घटनाओं का अनुभव वह लेता रहता है । इन अनुभवों को संजोते हुए साहित्य की निर्मिती होती है। कई रचनाकारों का यह मानना है कि कोई विशेष प्रसंग उन्हें चैन से रहने नहीं देता, कोई घटना उन्हें झकझोर डालती है और ऐसे में कई बार समाज एवं सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन की माँग उपस्थित होती है । ऐसे समय साहित्यकार अपने दायित्व को भूला नहीं सकता इसलिए वह अपनी लेखनी के माध्यम से समाज एवं युगीन संस्कृति के अच्छे और बूरे गुणों को दिखाते हुए अपेक्षित परिवर्तन की माँग करता है । हम हिंदी साहित्य के इतिहास को देखे तो रचनाकारों ने जागृत प्रहरी की तरह सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों में समय के अनुसार परिवर्तन की माँग की है और अपनी लेखनी के माध्यम से समाज में अपेक्षित परिवर्तन लाने का साहस दिखाया है । आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल में आज तक साहित्य अपना समाज एवं संस्कृति के प्रति दायित्व निभाता आया है । समाज एवं संस्कृति भी साहित्यकार के माध्यम से साहित्य को विपूल सामग्री प्रदान करती आयी है ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समाज, संस्कृति एवं साहित्य का संबंध अन्योन्याश्रित है, जहाँ एक के बिना दूसरा अधूरा है ।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि समाज वह इकाई है, जहाँ मनुष्य अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए और अपनी सुरक्षा को ध्यान में रखकर एक-दूसरे के साथ मिलकर रहता है, जहाँ सभी लोग एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं । संस्कृति वह इकाई है जो समाज में लोगों को एकत्रित रहने के लिए सहायक बनती है। वही समाज की नियामक है, जिसकी मदद से समाज के लोग एक-दूसरे के साथ मिलजुलकर खुशी-खुशी अपना जीवन बीता सकते हैं । इस तरह से समाज और संस्कृति का गहरा संबंध होता है, जहाँ संस्कृति के बिना समाज नहीं रह सकता और समाज के बिना संस्कृति का अस्तित्व नहीं रह सकता ।

साहित्यकार समाज में रहता है जिसे संस्कृति समाज विशेष में रहने के लिए मदद करती है । साहित्यकार का अपने समाज एवं संस्कृति से गहरा संबंध होने की वजह से उसका साहित्य भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता । इस तरह से समाज, संस्कृति और साहित्य का गहरा संबंध होता है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१) रामचंद्र वर्मा(सं), प्रामाणिक हिंदी शब्दकोष. पृ.सं.-१२८३

२) डॉ. विमलशंकर नागर, हिंदी के आंचलिक उपन्यास : सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ. पृ.सं.-१.

३) डॉ. विमलशंकर नागर, हिंदी के आंचलिक उपन्यास : सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ. पृ.सं.-१.

४) डॉ. विमलशंकर नागर, हिंदी के आंचलिक उपन्यास : सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ. पृ.सं.-२.

५) डॉ. विमलशंकर नागर, हिंदी के आंचलिक उपन्यास : सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ. पृ.सं.-२.

६) डॉ. विमलशंकर नागर, हिंदी के आंचलिक उपन्यास : सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ. पृ.सं.-३.

७) डॉ. विमलशंकर नागर, हिंदी के आंचलिक उपन्यास : सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ. पृ.सं.-३.

८) डॉ. विमलशंकर नागर, हिंदी के आंचलिक उपन्यास : सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ. पृ.सं.-४.

९) एम.गीन्सबर्ग. सोशोलॉजी. ऑक्सफर्ड यूनीवरसीटी पृ.सं.-३९.

१०) R.Linton.The study of man. P.N.-91.

११) एम.गीन्सबर्ग. सोशोलॉजी. पृ.सं.-४०.

१२) L. Wilson & W.L. Kolf. Sociological Analysis. P.N.-267.

१३) रविकुमार 'अनु'. हजारीप्रसाद व्दिवेदी के साहित्य की सांस्कृतिक चेतना पृ.सं-३.

१४) रविकुमार 'अनु'. हजारीप्रसाद व्दिवेदी के साहित्य की सांस्कृतिक चेतना पृ.सं-३.

१५) वीरेंद्र चंद्र सोती, भारतीय संस्कृति के मूल तत्व. पृ.सं.-१.

१६) डॉ. कृष्णा अवस्थी, वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन. पृ.सं.-२२.

१७) डॉ. कृष्णा अवस्थी, वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन. पृ.सं.-२३.

१८) डॉ. कृष्णा अवस्थी, वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन. पृ.सं.-२४.

१९) डॉ. कृष्णा अवस्थी, वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन. पृ.सं.-१८.

२०) डॉ. कृष्णा अवस्थी, वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन. पृ.सं.-१८.

२१) रविकुमार 'अनु'. हजारीप्रसाद व्दिवेदी के साहित्य की सांस्कृतिक चेतना पृ.सं-४.

२२) रविकुमार 'अनु'. हजारीप्रसाद व्दिवेदी के साहित्य की सांस्कृतिक चेतना पृ.सं-४.

२३) रविकुमार 'अनु'. हजारीप्रसाद व्दिवेदी के साहित्य की सांस्कृतिक चेतना पृ.सं-४.

२४) रविकुमार 'अनु'. हजारीप्रसाद व्दिवेदी के साहित्य की सांस्कृतिक चेतना पृ.सं-४.

२५) रविकुमार 'अनु'. हजारीप्रसाद व्दिवेदी के साहित्य की सांस्कृतिक चेतना पृ.सं-४.

२६) रविकुमार 'अनु'. हजारीप्रसाद व्दिवेदी के साहित्य की सांस्कृतिक चेतना पृ.सं-४.

२७) रविकुमार 'अनु'. हजारीप्रसाद व्दिवेदी के साहित्य की सांस्कृतिक चेतना पृ.सं-५.

२८) रविकुमार 'अनु'. हजारीप्रसाद व्दिवेदी के साहित्य की सांस्कृतिक चेतना पृ.सं-५.

२९) रविकुमार 'अनु'. हजारीप्रसाद व्दिवेदी के साहित्य की सांस्कृतिक चेतना पृ.सं-५.

अध्याय २. सूर्यबाला का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

साहित्य समाज का प्रतिबिंब होता है । साहित्यकार समाज से ही प्रेरणा ग्रहण कर साहित्य का सृजन करता है। समाज के चित्र को शाब्दिक रूप में उकेरने की कला कुछ ही लोगों के पास होती है । इनका पढ़ना, लिखना, बोलना पाठक पर विशिष्ट और अमिट प्रभाव डालता है । अतः साहित्य लेखन भी एक कला है । एक सजग साहित्यकार अपने युग का सजग प्रहरी होता है । वह अपनी लेखनी के माध्यम से समाज के प्रति अपना उत्तरदायित्व निभाता रहता है ।

सूर्यबाला एक बहुमुखी प्रतिभा संपन्न कथाकार एवं व्यंग्यकार के रूप में प्रसिद्धि पा चुकी है । उनका निजी व्यक्तित्व बड़ा समृद्ध रहा है । उनके व्यक्तित्व का प्रभाव उनके साहित्य पर नजर आता है, इसलिए उनके व्यक्तित्व का अध्ययन आवश्यक बन जाता है । प्रस्तुत अध्याय में उनके व्यक्तित्व का अध्ययन करेंगे ।

२.१ सूर्यबाला का व्यक्तित्व

हिंदी कथा-साहित्य को संवेदनशील सृजन से प्रकाशित करनेवाली उभरती हुई प्रसिध्द लेखिका सूर्यबाला का आगमन इस पृथ्वीलोक पर २५ अक्टूबर १९४३ में उत्तरप्रदेश के पवित्र तिर्थस्थान वाराणसी में हुआ । इनका पूरा नाम सूर्यबाला वीरप्रतापसिंह श्रीवास्तव है । उनकी माँ का नाम स्व. श्रीमती केशर कुमारी है। माता-पिता के सान्निध्य में उनका बचपन अत्यंत लाड़-प्यार में बीता । पारिवारिक साधन संपन्नता के कारण उन्हें कभी किसी के आगे मोहताज नहीं होना पड़ा । इसी के कारण वे अपने जीवन में कभी किसी के आगे झुकना पसंद नहीं करती । उनके घर में पढ़ने, लिखने, कला-संगीत का सुरुचिपूर्ण वातावरण था जो सूर्यबाला को विरासत के रूप में प्राप्त हुआ । उनके परिवार में समारोहों के मौकों पर स्तरीय नाटक तथा प्रहसन खेले जाते थे । उनके माता-पिता को कला, संगीत एवं साहित्य में रुचि

थी । घर में हारमोनियम, बाँसुरी, ग्रामोफोन बजता रहता था । पेड़-पौधों तथा बागवानी का शौक भी उन्हें था । आँगन में लाल मुनियाँ, तोता, पहाड़ी मैना, फौहारे और रंगबिरंगी मछलियों के बीच सूर्यबाला का बचपन बीता ।

अपने जन्मस्थल वाराणसी के प्रति उनके मन में बहुत श्रध्दा तथा प्रेम है । वाराणसी की यादें उन्हें रोमांचित करती हैं । अपने जन्म-स्थल तथा वहाँ के परिवेश का बड़ा सुंदर वर्णन उनकी बहुत-सी कहानियों में प्राप्त होता है ।

२.१.१ परिवार (माता-पिता)

सूर्यबाला के पिताजी शिक्षा-विभाग में उच्च पदाधिकारी थे । उनके यहाँ विभिन्न कक्षाओं के पाठयक्रमों में स्वीकृत होने के लिये आयी पुस्तकों का अम्बार होता था । इन्हीं पुस्तकों ने विभिन्न विषयों के प्रति पढ़ने की रुचि सूर्यबाला में जागृत की । उनके पिता का पहला विवाह लाला भगवानदीन की पुत्री से हुआ था । लालाजी उन्हें पुत्रवत् मानते थे । अपनी सभी टीकायें तथा पुस्तकें उन्हें भेंट में देते थे । सूर्यबाला के घर की अलमारियाँ चंद्रकांता संतति, स्त्री सुबोधिनी, उर्दू की रामायण और सुदामा चरित्र, अंग्रेजी के रॉबिन्सन-क्रूसो और शेक्सपीयर, मिल्टन आदि के साथ स्वामी रामतीर्थ ग्रंथावली और लाला भगवानदीन की टीकाओं से भरी होती थीं ।

उनके घर का माहौल ब्रजी, अवधी के छंद, कवित्तों के साथ-साथ उर्दू-फारसी की शेरो-शायरी और लोकोक्तियों से गुलजार हुआ करता था । उनके पिता शौकिया शायरी करते थे । कभी-कभी अपने सहकर्मियों और मित्रों को तरन्नुम में गाकर सुनाते थे । हारमोनियम और बाँसुरी पर शास्त्रीय धुनें निकालते थे । उनके माता-पिता दोनों शिक्षित तथा अंग्रेजी, हिंदी तथा उर्दू के ज्ञाता थे । उनकी माता एक आदर्श गृहिणी थी । वे दोनों उच्च संस्कारशील मध्यमवर्गीय गृहस्थ थे । वे अनुशासन प्रिय एवं परंपराओं में आस्था रखनेवाले, उदार विवेकशील प्रवृत्ति के परोपकारी सज्जन थे । सूर्यबाला पर माता-पिता के संस्कारों का गहरा प्रभाव पड़ा जिससे

उनका व्यक्तित्व निखर उठा । इन सभी बातों का प्रभाव उनके वैचारिक दृष्टिकोण से साहित्य में उजागर हुआ । सूर्यबाला की बहनें वीरबाला, केशरबाला, चंद्रबाला तथा भाई विष्णुप्रताप भी संस्कारशील और उच्च शिक्षित है। सूर्यबाला के बचपन में ही पाँच बच्चों को माँ के पास सौंपकर उनके पिता गुजर गए । उनकी असमय मृत्यु के बाद उनकी माँ ने सभी बच्चों की परवरिश, विषम आर्थिक परिस्थितियों में भी अपने अकेले दम पर की। पिता की मृत्यु की वजह से बच्चों का बचपन बड़ा उदासी में बीता, लेकिन संस्कारों में मिली विनोदप्रियता ने उन्हें अपने ऊपर भी हँसना सिखाया जो आगे जाकर हास्य-व्यंग लेखन के रूप में सूर्यबाला के साहित्य में अभिव्यक्त हुआ । अकेली महिला व्दारा इतने छोटे बच्चों को सँभालना और उन्हें किसी भी बात की कमी न खलने देना चुनौती भरा काम था और केसर कुमारीजी ने वह बखुबी निभाया । सूर्यबाला के शब्दों में "आज से पचास वर्ष पूर्व के मध्यमवर्गीय, परंपरावादी समाज में, अल्पवया में विधवा हुई मेरी माँ ने सारी परंपराओं, मर्यादाओं को निभाते हुए, बगैर किसी ठोस आर्थिक आधार के चार छोटी-बड़ी बेटियों का और नन्हें पुत्र का जैसी शिक्षा-दीक्षा, भरण-पोषण किया वह किसी चमत्कार से कम नहीं ।"[7] पिता की मृत्यु के उपरांत आर्थिक विपन्नता के बावजूद अपनी दयनीयता का प्रदर्शन कर किसी की दया का पात्र बनना उन्हें कतई स्वीकार न था। जो है, उसमें खुश रहकर स्वाभिमान से जीना उनकी माँ ने उन्हें सिखाया था । माँ व्दारा दिए गए सारे संस्कारों के घूँट वह जीवन भर पीती रही। उनके पिता का भी उनपर बहुत प्रभाव रहा है । पिता की जुझारू प्रकृति, पत्नी के प्रति सम्मान भाव, सौंदर्य भावना और ललित कलाओं में उनकी रुचि थी । उनके माता-पिता अनुशासन और संतुलन के साक्षात् प्रतीक थे । संबंधों के निर्वाह में, जीवन की विसंगतियों में विपरित स्थितियों में निर्णय लेने की उनकी क्षमता अचूक थी । अपने माता-पिता के अलावा उनकी पति व्दारा परित्यक्ता मौसी का जीवन भी उनके लिए मिसाल बन गया । प्रतिकूल

परिस्थितियों में प्रकाश की किरण को पकड़कर उजाले की ओर बढ़ने की सीख इन लोगों से ही उन्हें मिली ।

२.१.२ शिक्षा–दीक्षा

सूर्यबाला के पिता का तबादला आठ–दस महीनों बाद होता रहता था इस वजह से पाँचवी कक्षा तक उनको स्कूल में नहीं भेजा गया था । उनके पिता, पुरानी जगह से उखड़ी, थोड़ी सहमी, बच्ची को नई जगह बिना उसकी मर्जी के डाँट–डपटकर स्कूल में डालने के पक्ष में नहीं थे । सूर्यबाला ने लिखा है– "तब के बनारस के आर्य महिला स्कूल में जब मेरा नाम छठवी में लिखाया गया तब तक पूरी तरह अपनी मर्जी से मैं, घर में चारों तरफ बिखरी उन तमाम रंग–बिरंगी, नई नकोर पुस्तकों को भी पढ़–पचा चुकी थी जो मेरे शिक्षा–विभाग के अधिकारी पिता के पास पहली से आठवीं तक के पाठयक्रमों में स्वीकृत होने के लिए आया करती थीं ।"[२] उन्होंने अपना शोध कार्य 'रीति साहित्य' इस विषय पर काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी से डॉ. बच्चनसिंह के निर्देशन में संपन्न किया ।

२.१.३ परिवार

सूर्यबाला का विवाह श्री. आर. के. लाल के साथ हुआ । उनके पति सुसंस्कृत एवं उच्चशिक्षित हैं । वे पहले मर्चेंट नेवी में चीफ इंजीनियर पद पर कार्यरत थे, लेकिन बाद में उन्होंने वह नौकरी छोड़ दी । उसके बाद वे अनेक उच्च पदों पर कार्यरत रहे और अब वे सेवानिवृत्त हो चुके हैं ।

सूर्यबाला का परिवार बड़ा समृध्द है । उनके दो बेटे तथा एक बेटी है । बड़ा बेटा अभिलाष मैकेनिकल इंजीनियर तथा अनुराग कम्प्यूटर इंजीनियर है । बेटी दिव्या साइंटिस्ट है जो मुंबई में कंपनी में कार्यरत है ।

सूर्यबाला अपने पारिवारिक जीवन से संतुष्ट है । उनके परिवारवाले बड़े प्यार से एक–दूसरे के साथ मिलजुलकर जीवन बिता रहे हैं ।

२.१.४ अर्थोपार्जन

सूर्यबाला ने साहित्य-सृजन के साथ-साथ नौकरी भी की थी । वे आरंभ में 'बनारस विश्वविद्यालय' डिग्री कॉलेज में कार्यरत रहीं । उसके बाद वाराणसी में व्याख्याता के पद पर अध्यापन का कार्य किया । कुछ वर्षों के उपरांत नौकरी छोड़कर वे गृहिणी के दायित्वों को निभाती हुई लेखन कार्य में जुट गयी है।

२.१.५ व्यक्तित्व

मानव जीवन में उसका व्यक्तित्व बड़ा महत्व रखता है । व्यक्तित्व से तात्पर्य है - अपने गुणों से, अपनी वाणी से, अपने आचार-विचारों से प्रभावित करना । इसे दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

१) अंतरंग व्यक्तित्व

२) बहिरंग व्यक्तित्व

साहित्य में साहित्यकार के व्यक्तित्व का प्रभाव भी होता है । सूर्यबाला के साहित्य में कई बार उनका व्यक्तित्व उभरता है जिसके लिए उसका अध्ययन करना आवश्यक है ।

बहिरंग व्यक्तित्व में व्यक्ति विशेष के बाह्य व्यक्तित्व, रहन-सहन, आदतें आदि को विश्लेषित किया जाता है । सूर्यबाला से मेरी प्रथम भेंट सन् २०१० में हुई जब गोवा विश्वविद्यालय में राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन हुआ था और सूर्यबाला को आमंत्रित किया गया था । उनसे मिलने के उपरांत उनका व्यक्तित्व बड़ा ही प्रभावशाली प्रतीत हुआ । वह अपने नाम की तरह साक्षात् सूर्यपूत्री ही नजर आयी । तेजस्वी चेहरा, गोरा रंग, सुदृढ़ शरीर, माथे पर दमकती बड़ी-सी बिंदी, जिससे उनका व्यक्तित्व दिप्त हो रहा था । बड़ी शांत, मधुर वाणी में बातें कर मुझे उन्होंने प्रभावित किया । कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जिनसे कोई अपेक्षा नहीं रहती

लेकिन उनके तेजस्वी व्यक्तित्व को निहारकर मन तृप्त होता है । जीवन में कुछ ऐसे लोग मिलते हैं जो इस प्रकार का व्यक्तित्व रखते हैं । इनमें सूर्यबाला भी एक है ।

सूर्यबाला का आंतरिक व्यक्तित्व भी बड़ा प्रतिभाशाली है । उनकी स्वभावगत विशेषताओं को इस प्रकार देखा जा सकता है -

क) मिलनसार

सूर्यबाला बड़ी मिलनसार स्वभाव की है । सदैव बड़ी हँसमुख एवं अत्यंत उदार स्वभाव की है। इस प्रकार के स्वभाव की वजह से उनसे बातचीत करने में कोई हिचक महसूस नहीं होती । वे भी बड़ी धीरता से, सहनशीलता से सामनेवाले व्यक्ति की शंकाओं का निवारण करती नजर आती है । इतनी बड़ी लेखिका होने के बावजूद वह अहंकार उनमें दिखायी नहीं देता जो सामान्य तौर से लोगों में देखा जाता है ।

ख) अतिथ्यशील

सूर्यबाला भारतीय संस्कारों में पली-बढ़ी हुई है । जब गोवा विश्वविद्यालय में आयोजित संगोष्ठी के लिए वे आयी थी तब मैं उन्हें मिलने गयी थी । बहुत सुबह ही गॅस्ट हाऊस में जहाँ वह रूकी हुई थी, मैं पहुँच गयी। जब मैं पहुँची तब वह बहुत ही व्यस्त दिखाई दे रही थीं फिर भी मुझे देखकर अपने सारे काम वैसे ही छोड़कर मुझे कमरे में बुलाया और सादर बिठाकर मेरे आने का कारण पूछा और मेरे प्रश्नों के बहुत स्वाभाविकता से उत्तर दिए । दूसरी बार जब मैं गयी, तब भी बहुत प्रसन्नता से उन्होंने मेरा स्वागत किया और अपने लिए मँगवाए हुए फलों को मेरे साथ बाँटकर खाया ।

ग) संवेदनशील

रचनाकार संवेदनशीलता से ही बनता है । सूर्यबाला की कई कहानियाँ उनके व्यक्तिगत जीवन से प्रेरित हैं । आस-पास के तथा अपने जीवन के अनुभवों को बड़ी संवेदनशीलता से ग्रहण

कर अपनी रचनाओं में उन्होंने पिरोया है । 'मातम', 'न किन्नी न', 'मानसी', 'मटियाला तीतर' जैसी अनेक कहानियाँ उनके इसी स्वभाव का परिचय देती हैं ।

घ) ईमानदार

सूर्यबाला अत्यंत प्रतिभाशाली साहित्यकार है और साथ ही ईमानदार महिला भी है । अपने परिवार की जिम्मेदारियों को निभाते हुए लेखन कार्य के प्रति ईमानदार है । साथ ही अपने साहित्य-लेखन के प्रति भी ईमानदारी से पेश आती है ।

ङ) मददगार

जब भी मैं अपनी समस्याओं को लेकर उनके पास गयी हूँ, उन्होंने मेरी समस्याओं को हल किया है । जब ई-मेल व्दारा मुझे उनका पूरा परिचय प्राप्त नहीं हो रहा था, तब उन्होंने उस लिपि के फोन्ट्स मेरे लिए भेजे जिसे डाऊनलोड कर मैं उनका परिचय प्राप्त कर सकी । साथ ही उनके पास जो उनके साहित्य पर आलेख छपे थे वे भी मेरे लिए उन्होंने उपलब्ध करवाए ।

च) समझदार

सूर्यबाला बड़ी समझदार महिला है । विशेषतः समाज में महिलाओं, लड़कियों के जीवन की परख उन्हें हैं । परिवार में व्यवहार करते समय सहनशीलता और समझदारी का होना बहुत आवश्यक होता है । सूर्यबाला के स्वभाव की वजह से ही उनकी कहानियों के नारी पात्र ज्यादा बोलते नहीं बल्कि समझदारी से निर्णय लेते हैं और जीवन में आगे बढ़ते हैं ।

उपर्युक्त सभी विशेषताओं का दर्शन हमें उनके साहित्य में होता है ।

२.१.६ साहित्यिक प्रेरणा-

सूर्यबाला को पुस्तकें पढ़ने की रुचि थी । उनकी बड़ी बहन उन्हें दसवीं-बारहवीं की हिंदी पुस्तकों से 'प्रायश्चित', 'अकबरी लोटा', 'ईदगाह', 'ताई,' 'रक्षाबंधन', 'आकाशदीप', 'साइकिल की सवारी', 'हार की जीत', 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' जैसी कहानियाँ पढ़कर सुनाती थी।

इनमें से कितनी ही कहानियाँ उनके मन पर छायी रहती थीं । उन कहानियों को दुबारा-तिबारा पढ़ा जाता था । इस तरह कहानियों के शिल्प और संवेदना से जुड़े कितने सारे अहसास उस छोटी उम्र में भी वह सहेजती चली गयी जिसके परिणामस्वरूप आज वह कहानी कला विकसित रूप में साहित्य में उतरने लगी । सूर्यबाला के अनुसार "मेरे अंदर रचनात्मकता का बीज बोने का बहुत सारा श्रेय स्मृतियों की मेहराबों पर जगर-मगर होती इन कालजयी कहानियों को जाता है । ये मेरी बाल संवेदना के लिए पारस स्पर्श थीं । जीवन अपने समूचे राग-विराग, घृणा, आक्रोश और हताशा के साथ इन कहानियों में धड़कता था । सबसे बढ़कर अवसाद, ममत्व, मोह-बंधों और हास-परिहास के अतिरिक्त इन कहानियों में वे पछतावें भी हैं जो मनुष्य के अंदर के मनुष्य को बचाये रखने की पहली शर्त है ।"[३]

अपनी साहित्य सर्जना का आरंभ उन्होंने कविता लिखकर किया । पहली रचना आठवी-नौंवी वर्ष की आयु में रचित 'बाँसुरी' नाम की कविता है । उनकी किशोर वय की कविताएँ, कहानियाँ और लेख दैनिक 'आज' के साहित्य परिशिष्टों में प्रकाशित होते रहे । स्कूल एवं

कॉलेज की पत्रिकाओं में कविता एवं कहानियाँ प्रकाशित होती थीं । विद्यालय की प्रतियोगिताओं में भाग लेकर स्वरचित कविताओं का पाठ किया करती थी । इन सब बातों ने उन्हें लेखन की ओर प्रवृत्त किया । उनकी प्रथम कहानी 'जीजी' सन् १९७२ में 'सारिका' पत्रिका में छपी। मार्च १९७३ में उनकी पहली व्यंग्य रचना 'खाना ईंट का आना समाजवाद का' और दूसरी कहानी 'अविभाज्य' धर्मयुग में प्रकाशित हुई ।

उनकी रचनाओं का अनुवाद मराठी, उर्दू, गुजराती, पंजाबी, कन्नड़ और अंग्रेजी भाषाओं में हुआ है । आकाशवाणी तथा दूरदर्शन पर प्रायः उनके सभी उपन्यासों एवं कहानियों का रूपांतर एवं प्रस्तुतीकरण किया गया है । टी. वी. धारावाहिकों एवं दूरदर्शन प्रस्तुतियों में प्रमुखतः 'पलाश के फूल', 'न किन्नी न', 'सौदागर दुआओं के', 'एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम', 'सबको पता है', 'रेस', निर्वासित आदि कहानियाँ आती हैं । दूरदर्शन पर

'सोफरनामा', 'पूर्वजन्मों का लेखाजोखा' आदि व्यंग्य रचनाओं की प्रस्तुती हुई है । न्यूयार्क तथा नेहरू सेंटर (लंडन) में कहानी एवं व्यंग्य रचनाओं का पाठ प्रस्तुत हुआ है । दूरदर्शन की इंडियन क्लासिकल श्रृंखला में उनकी कहानी 'सजायाफ्ता' का चयन हुआ था ।

२.१.७ पुरस्कार

साहित्य में विशेष योगदान के लिए उन्हें प्रियदर्शनी पुरस्कार, घनश्यामदास सराफ पुरस्कार, व्यंग्यश्री सम्मान एवं पुरस्कार, कमलादेवी गोइनका वाग्देवी पुरस्कार आदि से सम्मानित किया गया है । इसके साथ ही नागरी प्रचारिणी सभा, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मुंबई विश्वविद्यालय, आरोही संध्या, अखिल भारतीय कायस्थ महासभा, सातपुड़ा संस्कृति परिषद आदि संस्थाओं से वह सम्मानित हुई हैं ।

उनकी कहानियाँ लोकमत समाचार, वागर्थ, धर्मयुग, सारिका, वर्तमान साहित्य, ज्ञानोदय आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं ।

२.२ कृतित्व

साहित्यकार का कृतित्व उसके व्यक्तित्व से प्रेरित एवं प्रभावित होता है । सूर्यबाला भी इससे अलग नहीं है ।

२.२.१ कहानी-संग्रह

अब तक उनके दस कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनका विवरण मैं यहाँ प्रस्तुत कर रही हूँ । उनका पहला कहानी-संग्रह है - 'एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम' ।

२.२.१.१ एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम (१९७७)

सूर्यबाला का प्रस्तुत कहानी-संग्रह सन् १९७७ में विद्या विहार प्रकाशन व्दारा प्रकाशित हुआ। इसमें कुल नौ कहानियाँ संकलित हैं । इस कहानी-संग्रह की विशेषता यह है कि इसमें हर कहानी के पहले भूमिका के रूप में लेखिका ने अपने विचार व्यक्त किए हैं । इन सबमें भाषा, शिल्प और कथ्य की विविधता है, लेकिन इनका वैचारिक आधार एक ही है । इन

कहानियों में लेखिका ने जहाँ एक ओर संबंधों या रिश्तों में आया हुआ खोखलापन दिखाया है, वहीं स्वार्थ के संकीर्ण दायरों का लेखा-जोखा भी दिया है । इसमें संकलित कहानियों का विवरण इस प्रकार है -

मनुष्य की परिस्थितियों में बदलाव आते रहते हैं । प्रस्तुत कहानी 'समान सतहें' में ऐसे ही परिवार का चित्रण हुआ है जो पहले संपन्न था लेकिन स्थितियों में बदलाव से आर्थिक दृष्टि से कमजोर बन गया था । कथा-नायक अपनी पत्नी से उसके चाचा की बढ़ाई सुनकर उनके घर जब जाता है, तो पाता है कि उनकी स्थिति भी नायक की अपनी स्थितियों की तरह ही है । वे दिन बीत चुके हैं जिनके बारे में उसने सुना था । उनके घर की स्थिति और कथा नायक के घर की स्थिति दोनों परिवारों को समान सतहों पर लाकर खड़ा करती है।

'व्यभिचार' कहानी में नायिका को कई पाठकों के पत्र आते रहते हैं । उनमें पते की जगह अकसर लोग भूलकर 'केयर ऑफ' की जगह 'डॉटर ऑफ' या 'मिसेज' की जगह 'मिस' लिखते हैं । यह जब वह अपने पति को दिखाती है तो पति उसका मजाक उड़ाता है । ये चिठ्ठियाँ ही कहीं उनमें नए तरह का प्यार एवं एक-दूसरे के प्रति विश्वास जगाती हैं । जब एक पाठक कथा-नायिका से निकटता स्थापित करता-सा उसे नजर आता है तो उसे यह उसके व्दारा व्यभिचार महसूस होता है और वह अपने पति के और करीब जाने की कोशिश करती है । साथ ही उस व्यक्ति से मिलना टालती है । वह अपनी ही व्दंव्दात्मक मानसिकता की शिकार बन जाती है और शारीरिक मांसलता के तिलस्म को तोड़ने की कोशिश करती है।

मनुष्य को जीवन में अनेक समझौते करने पड़ते हैं । प्रस्तुत कहानी 'सुलह' में मध्यवर्गीय परिवार का चित्रण हुआ है जहाँ अनेक छोटी-छोटी इच्छाएँ होने पर भी उन्हें आर्थिक दृष्टि से लाचार होने की वजह से पति-पत्नी व्दारा एक-दूसरे को समझकर अनचाहे ही दबाया जाता है । कड़ी मेहनत और ईमानदारी बरतने के बावजूद जब कथा नायक की नौकरी छूट जाती है तो घरवालों की कई जरूरतें उसके सामने सवाल बनकर खड़ी होती हैं । लेमन

ड्राप्स की दुकान के सामने से गुजरते समय वह अपनी आखरी तनख्वाह से अपने बच्चे के लिए कैडबरी चॉकलेट खरीदने की इच्छा को दबा नहीं पाता । सामान्य लागों की सामान्य-सी ईच्छाएँ पूरी करने के लिए भी कितना सोचना पड़ता है, इसका मार्मिक चित्रण प्रस्तुत कहानी में हुआ है ।

इस कहानी को पढ़ते समय ऐसा लगता है कि लेखिका की स्वयं की अपने बिते दिनों की डावाडोल स्थिति, नैराश्य और किशोर वय में ही जिंदगी के साथ जूझती तमाम कशमकश है जो कहानी के पुरुष पात्र के माध्यम से व्यक्त हुई है ।

कई बार हमारी सामाजिक मान्यताएँ, पारिवारिक संस्कार हम पर हावी हो जाते हैं । कितने भी उच्च्व शिक्षित होने के बावजूद कुछ महत्वपूर्ण निर्णय लेते समय हमें अपना परिवार, समाज, धर्म और कई बार तो जाती का भी विचार करना पड़ता है ।

प्रस्तुत कहानी 'हाँ, लाल पलाश के फूल... नहीं ला सकूँगा.....' में कथा-नायक अनूप बंगाली रासाल बाबू की बेटी वृंदा से शादी करने की बात मन ही मन तय करता है तो उसके चाचाजी विदेशी लड़की से उसके व्दारा शादी न करने पर उस पर बड़ा नाज व्यक्त करते हैं और कहते भी है कि उसकी शादी वे अपनी बिरादरी की लड़की से ही करेंगे । जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका विरोध करते हुए अनूप, जो विदेश से उच्च्व शिक्षा प्राप्त कर लौटा हुआ है, मन में होते हुए भी वृंदा से शादी नहीं कर सकता।

"उच्च्व वर्ग, मजदूर और शोषित वर्ग का पहला निशाना रहा है, पर अपने आप में कहीं यह वर्ग, जो मैनेजमेंट के हाथों की कठपुतली होता है, इतना दयनीय, लाचार एवं बदतर होता है कि उसका अनुमान केवल भुक्तभोगी ही लगा सकते हैं । सारी शान-शौकत और ऐश-आराम के बीच यह वर्ग रेत की मछली-सा तड़पता नजर आता है । इसका उदाहरण यह कहानी 'दरारें' है ।"[४]

कथा-नायक मिस्टर रायजादा बंसल का अपमान करता है जिससे क्रोधित होकर मजदूर यूनियन लीडर बंसल न्यायालय में केस दायर करता है और सारे मजदूर हड़ताल पर जाते हैं। मिस्टर रायजादा परेशान है कि उसे मैनेजमेंट के लोग डिप्टी डायरेक्टर के पद से हटाकर उसका कहीं डिमोशन न करें । साथ ही बंसल भी यह जान चुका है कि इस हड़ताल से कंपनी का कोई नुकसान होने वाला नहीं है । इसमें उसकी जान भी चली जाती है तो आज जो लोग उसके साथ हैं वे कल उसके परिवारवालों का साथ देने नहीं आएँगे। यह सारी बातें जानने के बाद भी दोनों अपना-अपना अहं छोड़ने को तैयार नहीं है ।

अपना भूतकाल जब वर्तमान समय में दस्तक देता है तो मन अस्वस्थ हो जाता है । प्रस्तुत कहानी 'अविभाज्य' में विवाहित ऋतु अपने परिवार के साथ मोना की शादी में शामिल होने के लिए जाती है । वहाँ जाकर देखती है कि रथीन माथुर अपनी पत्नी सीमा के साथ वहाँ मौजुद है । इसी रथीन माथुर ने ऋतु के साथ शादी करने की इच्छा प्रकट की थी । लेकिन कई लोगों के समझाने पर उसने उससे शादी से इंन्कार किया था । आज वह उसके सामने था और उस बात का प्रतिशोध लेने के लिए सभी रिश्तेदारों के सामने सीमा की तारीफ किए जा रहा था । ऐसे में ऋतु बिती हुई बातों को याद कर अस्वस्थ हो रही थी । उसका पति ऋषि संतुलित विचारोंवाला बहुत प्यारा व्यक्ति था । वह अपनी पत्नी को समझाता है और उचित सलाह देता है जिससे शादी के उपरांत लौटते समय ऐसा आभास होता है मानो रथीन को ऋतु का अभाव महसूस हो रहा हो और वह अपने किए पर पछता रहा हो ।

प्रस्तुत कहानी-संग्रह की भूमिका में कमलेश्वर लिखते हैं - "अविभाज्य के नारी और पुरुष पात्र अपने अतीत से जुड़े रहकर अपनी मानसिकता का आधार खोजते हैं । यही खोज उन्हें एक-दूसरे के करीब बनाए हुए है।"[५]

प्रस्तुत कहानी 'निर्वासित', 'बागबान' सिनेमा की याद दिलाती है । रीमा और उसका पति अपने बेटे के बुलावे पर अपना घर-बार छोड़कर राजेन के घर रहने जाते हैं । वहाँ सारी

३.१.७ विवाह से संबंधित समस्याएँ

विवाह मनुष्य की शारीरिक, मानसिक एवं पारिवारिक जरूरत है । इसी वैवाहिक बंधन से परिवार का निर्माण होता है । आज जहाँ पर पुरुष और स्त्री के बीच 'लीव इन रीलेशनशीप' के तहत एक साथ रहने के लिए मान्यता प्राप्त हुई है वहाँ विवाह जैसे संस्कार पर प्रश्नचिह्न लग गया है । आज हम समाज में विवाह से संबंधित कई सारी समस्याओं को देखते हैं । इन्हीं समस्याओं को सूर्यबाला ने अपनी कहानियों के माध्यम से पाठक के सामने रखा है । यहाँ पर हम सामाजिक दृष्टि से विवाह से संबंधित समस्याओं का अध्ययन करेंगे। 'हाँ, लाल पलाश के फूल...नहीं ला सकूँगा...' का अनूप मन में होते हुए भी वृंदा से अंतर्जातीय विवाह नहीं कर पाता क्योंकि उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी वह अपने परिवारवालों के खिलाफ जाकर अन्य जाति की लड़की से शादी नहीं कर सकता । 'पूल टूटते हुए' कहानी की नायिका होशियार होने पर भी रंग-रूप न होने की वजह से और दहेज के लिए पैसे न जुट

साधन-सुविधाएँ, नौकर-चाकर मौजुद होने के बावजूद रीमा और उसका पति वह आजादी महसूस नहीं करते जो पहले किया करते थे । अपने बच्चों से प्यार पाना तो दूर बल्कि उपेक्षा का सामना करना पड़ता है । अंत में उनका छोटा बेटा और बड़ा बेटा माँ-बाप की जिम्मेदारियों का बँटवारा कर लेते हैं और बची-खुची जिंदगी में उन्हें साथ रहने देने की जगह अलगाया जाता है । कमलेश्वर के शब्दों में "'निर्वासित' के माता-पिता को नई पीढ़ी ने नहीं उसके आर्थिक तनावों की मजबूरियों ने निरीह बनाया है ।"[६] लेकिन कहानी पढ़ने के उपरांत यह महसूस होता है कि उनके बेटों की जिंदगी तो वे हँसी-खुशी बिता रहे हैं और ऊब, झिझक तथा अकेलेपन के शिकार केवल उनके माता-पिता ही हैं ।

ममता कालिया के 'दौड़' उपन्यास की याद दिलानेवाली सूर्यबाला की 'रेस' कहानी है । आज के युग में हर क्षेत्र में कॉम्पीटीशन है । इसमें जो भागता है वही बचता है । इस बात से वाकिफ आज के युवक केवल भागते रहते हैं । इस दौड़ में वे अपने परिवार, तीज-त्योहार, स्वास्थ्य, मित्र, रिश्तेदार इन सभी को भूल जाते हैं और अपना लक्ष्य केवल अपने कार्यक्षेत्र में आगे पहुँचना मानते हैं । इसमें एक-दूसरे पर विश्वास, प्यार, अपनापा, भाई-चारा जैसी बातों को कहीं भी स्थान नहीं रहता बल्कि उसकी जगह हर एक व्यक्ति को साशंक भरी निगाहों से देखा जाता है । एक-दूसरे का पैर खिंचते हुए खुद कैसे आगे पहुँचे केवल इसका विचार किया जाता है । ऐसे में मनुष्य के स्वास्थ्य पर इसका बहुत बड़ा परिणाम होता है । समयाभाव की वजह से उसकी तरफ भी ध्यान नहीं जाता और उसकी परिणति मौत में हो जाती है । प्रस्तुत कहानी के माध्यम से लेखिका ने आज की जीवन-शैली पर करारा व्यंग्य किया है और प्रश्न उपस्थित किया है कि क्या यही जीवन है ?

प्रस्तुत कहानी 'एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम' में एक शागिर्द की त्रासदी का वर्णन है । पत्नी, जुलेखा की मौत के उपरांत अली अफजल मुराद कव्वाली में जाना छोड़ देते हैं । बुढ़ापे में

जब बेटी जुबेदा का पत्र उन्हें मिलता है कि वह आने वाली है, तो घर की स्थिति सुधारने और उनकी आवभगत करने के लिए पैसे जुटाने वे शब्बन के साथ मजलिस में जाते हैं । शब्बन के इशारे पर वे ऐसा आलाप खींचते हैं कि सभी उससे झूम उठते हैं और उनकी तारीफ करने लगते हैं । इससे शब्बन के लिए यह धोखे की घंटी बन जाती है और वह उन्हें अपने साथ मजलिस में आने से इन्कार करता है । अब एक गरीब उस्ताद के सामने फिर से पैसों के इंतजाम का सवाल खड़ा हो जाता है ।

२.२.१.२ दिशाहीन (१९८१)

यह सूर्यबाला का दूसरा कहानी-संग्रह है । सन् १९८१ में यह प्रतिभा प्रतिष्ठान से प्रकाशित हुआ है । इसमें नौ कहानियाँ संकलित हैं जो विविध विषयों पर आधारित हैं । इस संग्रह में अधिकतर कहानियाँ सामाजिक विषय पर लिखी गयी हैं । इनका परिचय इस प्रकार है ।

बच्चे बड़े संवेदनशील होते हैं । उनकी मानसिकता को समझे बिना हम उनपर कई बातें थोप देते हैं तो वे विद्रोह करने पर उतर आते हैं । प्रस्तुत कहानी 'मेरा विद्रोह' में एक पिता

अपने बेटे से बहुत अपेक्षाएँ रखता है और उससे कठोर व्यवहार करता है । इससे उसका मन अपने पिता के प्रति विद्रोही हो उठता है परिणामस्वरूप वह, वह सारी बातें करने में मजा उठाता है जिससे उसके पिताजी परेशान हो । अंत में अपने पिता को मजबूर, अवश रोते हुए देखकर उनसे संधि करने का प्रस्ताव रखता है । कहानी के माध्यम से लेखिका बताना चाहती है कि बच्चों को प्यार से समझाना बहुत आवश्यक है । उन्हें विश्वास में लेकर कई समस्याओं का समाधान निकाला जा सकता है ।

असफल प्रेम मनुष्य के जीवन में भारी परिवर्तन लाता है । इससे कई सारे युवक-युवतियाँ बिना शादी किए जिंदगी बिताने के लिए तैयार हो जाते हैं । प्रस्तुत कहानी 'कतारबंद स्वीकृतियाँ' में स्थित सिस्टर एंसी के जीवन में भी यही होता है । असफल प्रेम की वजह से साथ ही पारिवारिक स्थितियों के कारण वह सिस्टर बन जाती है और कॉन्वेंट में अध्यापन

का काम करती है । वहीं उसका सिंधु नाम की लड़की से अपनापा बढ़ता है । सिंधु की माँ न रहने की वजह से वह एंसी को ही माँ के रूप में देखती है । इससे एंसी की सिंधु और उसके पिता के प्रति सहानुभूति बढ़ जाती है । वह इस अटैचमेंट को अपनी कमजोरी मानती है और बार–बार प्रभू से माँफी माँगती है । एक दिन उनके मिशन से उसे दुखियों का दुख बाँटने के लिए बुलावे का पत्र आता है और सिस्टर एंसी सिंधु के अटैचमेंट का प्रतीक सूखा पीला गुलाब का फूल बहुत नीचे अंधेरे में फेंककर दूसरे दिन जाने के लिए तैयार हो जाती है ।

प्रस्तुत कहानी के माध्यम से सूर्यबाला विवृत्त जीवन में भावनाओं को, संवेदनाओं को दबाकर कैसे जिया जाता है यह रेखांकित करती है । साथ ही अविवाहित रहने के लिए बाध्य युवक तथा युवतियों की मनोदशा का चित्रण उन्होंने बड़ी मार्मिक दृष्टि से किया है ।

प्रस्तुत कहानी 'गुजरती हदें' में लेखिका ने एक ऐसे व्यक्ति का वर्णन किया है जो अपनी

जिम्मेदारियों से भागता है । अमेरिका में नौकरी प्राप्त कर वहीं की लड़की से शादी कर अपने घरवालों से रिश्ता तोड़ देता है । आठ साल बाद अपनी पत्नी से तलाक पाकर वापस भारत चला आता है । तंगहाली में जीनेवाले उसके घरवाले उसका स्वागत करते हैं, लेकिन उन सभी के बीच वह अकेलापन महसूस करता है और अपने घरवालों को उसी हालात में छोड़कर वह अमेरिका वापस लौटता है । एक बार चकाचौंध की दुनिया से होकर आनेवाला व्यक्ति सामान्य माहौल में रह नहीं पाता । यही इस कहानी का मूल है ।

समाज में एक बड़ा वर्ग तैयार हुआ है जो शादी नहीं करना चाहता । इसके लिए हर एक के अपने-अपने कारण होते हैं । इन्हीं में से एक होता है - अपने मन के अनुसार, कैरियर, स्टेटस के अनुसार लड़का या लड़की का न मिलना । ऐसे लोगों के मन में एक तरह की कुंठा, निराशा, अकेलेपन की भावना घर कर जाती है और वे दूसरों के प्रति व्देष, ईर्ष्या के शिकार बन जाते हैं । ऐसी ही एक लड़की की 'पुल टुटते हुए' यह कहानी है, जो

अपनी बहन के लिए माँगकर आए हुए रिश्ते को देखकर जलन महसूस करती है । साथ ही जब उसके पिता से उसे यह पता चलता है कि शादी-शुदा अविनाश अपने बच्चों को अच्छी तरह से पालने के लिए उससे शादी करने के लिए तैयार है तो उसे गहरा आघात पहुँचता है।

'छोटा परिवार, सुखी परिवार' इस कथ्य पर लिखी हुई 'घटनाहीन' यह कहानी है । गरीब व्यक्ति जब दो से अधिक बच्चों को जन्म देता है तो वह अपनी क्षमता को नहीं देखता । जब उनकी जिम्मेदारियों को उठाने की बात आती है तब उसे अपनी कमियों का एहसास होता है । इस कहानी को पढ़ने के उपरांत 'खुशहाल' कहानी की याद आती है जिसमें नौकरी की समस्या को लेखिका ने उभारा है ।

शिक्षित व्यक्ति के लिए बेरोजगारी एक अभिशाप होती है । परिवार, समाज में वह सिर उठाकर जीने लायक भी नहीं बचता बेरोजगारी उसके समूचे वजूद को, संपूर्ण मानसिकता को पंगु बनाकर रख देती है । जब वह परिवारवालों पर निर्भर रहता है तब अपने निर्णयों, कार्यों को अहमियत नहीं दे पाता । एक बोझ सा जीवन जीता है । किसी के अहसानों के बोझ को ढ़ोता रहता है । प्रस्तुत कहानी 'कंगाल' में इसी प्रकार के बेरोजगार व्यक्ति का चित्रण हुआ है जो नौकरी पाने की कोशिश तो करता है, लेकिन नौकरी नहीं मिल पाती । घरवालों की हमदर्दियाँ, खुसफुसाहटों से बचने के लिए एक दिन अपने इंटरव्यू की बात भी घर में नहीं करता और माँ के साथ मामा की तेरही के लिए बाराबांकी चला जाता है । वापस आकर देखता है कि उसके इम्तिहान का लिफाफा आया है, जिसके इंटरव्यू की तारीख बीत चूकी थी ।

सूर्यबाला ने हमेशा अपने करियर से ज्यादा परिवार को अहमियत दी है । लेखन कार्य करते समय भी उन्हें लगता है कि वह उनके परिवारवालों के हिस्से का समय तो नहीं ले रही है ? शायद इसी वजह से उन्होंने प्रस्तुत कहानी 'इसके सिवा' में एक महत्वाकांक्षी महिला का

चित्रण किया है, जो अपने करियर के पीछे भागते हुए पूरे परिवारजनों को अहमियत देना भूल जाती है । इसका प्रभाव उसके परिवारवालों पर पड़ता है । साथ ही एक ईमानदार व्यक्ति को कंपनियों में प्रमोशन मिलना कितना मुश्किल हो रहा है इस बात को भी लेखिका इस कहानी में रेखांकित करती है ।

'दिशाहीन' यह एक ऐसे लड़के की कहानी है, जो दो संस्कृतियों के बीच फँसा हुआ है । प्राथमिक और मिडिल की शिक्षा प्राप्त करते हुए पाए हुए संस्कार, महाविद्यालयीन शिक्षा पाने के लिए गए हुए शहरी संस्कारों से मेल नहीं खाते । भाषा, रहन-सहन, व्यवहार, वातावरण सब कुछ अलग होने की वजह से गाँव का शिक्षित युवक आत्मविश्वास खो देता है और खुद में हीनता की भावना को संजोता है । इससे उभरने के लिए एडजसमेंट के नाम पर शहरी खान-पान, रहन-सहन, दोस्त, पहनावा अपनाता है, लेकिन अपने पिता की चिठ्ठी से आर्थिक स्थिति का यथार्थ जानने के उपरांत दिशाहीन सा हो जाता है । उसे न ही अपने पहले संस्कार ठीक से जीने देते हैं और न ही शहरी संस्कृति उसके आत्मविश्वास को लौटा पाती है ।

आज गरीब बच्चों का बालमजदूर बनना सामन्य बात बन गयी है । ये मजदूर भी सपने देखते हैं और उन्हें पूरा करने के लिए अपनी जान भी गँवाते हैं । प्रस्तुत कहानी 'सिंड्रेला का स्वप्न' में एक लड़की काम करते-करते सिन्ड्रेला का चित्र देखती है और उसकी कहानी जानने के उपरांत स्वयं वैसी ही बनना चाहती है । इसी सिलसिले में वह एक दिन कोयले के रूम में सो जाती है जहाँ ठंड़ से ठिठूरती हुई बिमार पड़ जाती है । उसी बिमारी में उसकी मौत होती है । सूर्यबाला की इस प्रकार की कहानियों की एक और विशेषता नजर आती है वह है- बाल मन की संवेदना के साथ-साथ वह शहरी या शिक्षित लोगों के, उन बालकों के प्रति शोषणपूर्ण व्यवहार का भली-भाँति चित्रण करती है, जो आज संवेदनहीन बनते हुए अपनी मानवीयता खो रहे हैं ।

२.२.१.३ थाली भर चाँद (१९८८)

सूर्यबाला के प्रस्तुत कहानी-संग्रह का प्रकाशन सन् १९८८ में सत्साहित्य प्रकाशन से हुआ । इस कहानी-संग्रह में कुल सोलह कहानियाँ संकलित हैं । सूर्यबाला ने विविध विषयों पर आधारित कहानियाँ इस संग्रह में लिखी हैं । इस कहानी-संग्रह की विशेषता यह है कि कहानियों के आरंभ में सूर्यबाला ने प्रस्तावना के रूप में अपने विचार पाठकों के सामने प्रस्तुत किए हैं ।

इस कहानी-संग्रह के बारे में सुश्री मंजु चतुर्वेदी लिखती है "गाँव, कस्बा, नगर और महानगर में व्याप्त विसंगतियों, अंतर्विरोधों, अनभिज्ञता, विवशता और असमानता के कारण व्दंव्द और व्दिधा में उलझे व्यक्ति चरित्र से 'सीधा साक्षात्कार' इन कहानियों की विशेषता है । इसलिए इनका कथ्य हमें अपने जीवन के इर्द-गिर्द घटित होता प्रतीत होता है ।"[७]

'न किन्नी न' सूर्यबाला की चर्चित रचना है । इसकी प्रमुख पात्र किन्नी को लाचार होकर जीवन के हर मोड़ पर समझौता करना पड़ता है । अपनी बेटी की उतरनों से लेकर खिलौने तक उसकी अमीर मौसी उसे और उसके भाई को देती है । जिस लड़के को किन्नी मन ही मन चाहती है उसकी शादी मौसी की बेटी के साथ तय होती है । इससे दुखी होकर किन्नी आजीवन कुँआरी रहना चाहती है, लेकिन मौसी की बेटी की मौत के उपरांत किन्नी को मजबूरन उसके पति से शादी करनी पड़ती है । अपनी मौसी को किन्नी बहुत चाहती है और वही मौसी किन्नी को सारी दुय्यम दर्जे की चीजों के साथ-साथ दुय्यम दर्जे का पति भी दे जाती है । आर्थिक दृष्टि से सबल होने के बावजूद भी किन्नी उस लड़के से विवाह करने के लिए विवश हो जाती है । इसका मार्मिक चित्रण सूर्यबाला ने कहानी में किया है । डॉ. वसंतकुमार माली के अनुसार "उतरन पर जीनेवाला वर्ग, कपड़ों की ही नहीं रिश्तों की भी उतरन ही पहनने को विवश है । किन्नी की अमीर मौसी पैसे के बल पर सुख-सुविधाएँ ही नहीं अपनी भानजी के प्रेमी को भी खरीद लेती है । हर बार दिये जाने वाले उतरन की

तरह बेटी की मौत के बाद बड़ी दरियादिली से दामाद को लौटा देती है । जिसके कारण यह कहानी मन को छू लेती है, किन्नी ।"[८]

निम्न वर्ग के शोषण पर आधारित 'रहमदिल' यह कहानी है । आज हम देखते हैं कि समाज के हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार बढ़ा है । जहाँ कहीं भी निम्नवर्ग और अनपढ़ लोग दिखाई दे वहाँ पर अधिक मात्रा में शोषण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है । इससे ट्रेन के पेसेंजर भी नहीं छुटते । अनपढ़ और गरीब लोगों की मदद करनेवाला जब ट्रेन में कोई नहीं होता तब उनके अज्ञान और भोलेपन का फायदा उठाकर टी. टी. टिकट को जाली बताता है और उनका सारा पैसा हड़प लेता है । लुट-पिटकर प्राण रक्षा का संतोष ही इनके लिए शेष बचता है ।

प्रस्तुत कहानी 'तोहफा' में बाल सुलभ संवेदनाओं का मार्मिक चित्रण हुआ है । अपने स्वार्थ की वजह से अपने बेटे के जन्मदिन पर अपने बॉस के आने तक सभी लोगों को इंतजार कराना और देर रात से बॉस के आने पर सोए हुए अपने बेटे को जगाकर केक काटकर बॉस के प्रश्नों के जवाब देने के लिए मजबूर करना, नशे में चूर अपने बॉस से हाथ न मिलाने के कारण जन्मदिन के सुनहरे अवसर पर जोर से झापड़ देना आदि घटनाएँ एक स्वार्थी पिता की हैवानियत को उजागर करती है । अपने कोमल, संवेदनशील बच्चे की भावनाओं को अहमियत देने की जगह आज का मध्यमवर्गीय व्यक्ति अपने बच्चे के जन्मदिन के अवसर पर भी स्वाभिमान छोड़कर अपने बॉस की मर्जी का मालिक क्यों बनता जा रहा है ? यह सवाल यह कहानी खड़ा करती है ।

पति व्दारा उपेक्षित नारी परिवार में कैसी प्रताड़नाओं का शिकार बनती है यह 'रमन की चाची' इस कहानी के माध्यम से लेखिका ने उद्‌घाटित किया है । नयी बहु का पढ़ा-लिखा होना, सुंदर होना घर की औरतों के लिए किस प्रकार फाँस बन जाता है इसका चित्रण कहानी में हुआ है । रमन की चाची सीधी-सादी औरत है । शादी के कुछ ही दिनों बाद

घर का काम बड़ी मेहनत और लगन से करने के बावजूद भी उसपर यह मुहर लग जाती है कि वह किसी काम की नहीं है । एक दिन उसके पैर में जख्म हो जाता है और उसी से उत्पन्न बिमारी में उसकी मौत हो जाती है । नारी मुक्ति के इस दौर में भी स्त्रियाँ अपने प्रति एक निरपेक्ष तटस्थता का भाव रखती हैं । वे टूट सकती हैं, अपमानित हो सकती हैं, पागल हो सकती हैं, मर सकती हैं किंतु आत्मसजगता और एक समझदारी भरी प्रतिबध्दता खुद में नहीं जगा पातीं । इसी सत्य को लेखिका ने अपनी इस कहानी से पाठकों के सामने रखा है ।

आगे बढ़ना, अपनी प्रगति करना यह मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है । आज मनुष्य अपनी जिंदगी में सबकुछ सहजता से जल्दी पाना चाहता है । अनेक सही-गलत रास्ते अपनाकर अपने साध्य तक पहुँचना चाहता है । प्रस्तुत कहानी 'पराजित' में भी दस सालों के इंतजार के उपरांत भी कड़ी मेहनत और लगन से प्रमोशन प्राप्त नहीं होता तो कथा-नायक दूसरे लोगों की तरह अपनी पत्नी के सौंदर्य का उपयोग करना चाहता है । इस बात से क्रोधित पत्नी अपने पति को उसकी सही जगह दिखाती है और उसकी आँखें खोलती है । प्रतियोगिता के इस दौर में मनुष्य किस प्रकार स्वार्थी बनते हुए गलत दिशा की ओर बढ़ रहा है इस बात को कहानी के माध्यम से लेखिका ने रेखांकित किया है । कहीं न कहीं आज के मानव को आत्मपरिक्षण का संकेत भी लोखिका देती है ।

आज रिश्तों में बदलाव आ रहा है । रिश्ते में एक-दूसरे के प्रति लगाव, अपनापन, सम्मान जैसी बातें काल-बाह्य होती जा रही हैं । उसकी जगह लाभ-हानी, स्वार्थ आदि बातों ने ली है । प्रस्तुत कहानी 'पड़ाव' में एक बुजुर्ग दम्पति की करुण दास्तान है जिनकी उनके परिवारवालों ने उपेक्षा की है । कई सालों बाद उनके घर उनका चचेरा भतीजा अपनी पत्नी और बच्ची के साथ कुछ दिनों के लिए आता है जिससे बुजुर्ग दम्पति खुश होते हैं । बनवारी से पैसे उधार लेकर आठ दिनों तक मेहमाननवाजी करते हैं । दूसरी ओर उनका भतीजा

और बहु आत्मकेंद्रित होकर केवल अपने लाभ के बारे में सोचते हैं । अपना काम होने तक बुजुर्गों के प्रेम का लाभ उठाते हैं और काम होने पर बूढ़ों को ठगने की खुशी में वापस अपने घर लौटते हैं ।

अपने अफसरों को खुश कर तरक्कियाँ पाने का फॉर्मुला बहुत लोग अपनाते हैं । ऐसे लोग खुद के प्रति सहानुभूति प्राप्त करने का एक भी मौका नहीं छोड़ते । स्वार्थांध होकर अपनी मानवीय संवेदनाओं को भी खो देते हैं । प्रस्तुत कहानी 'संताप' में अपने दो बच्चों की मौत पर गम मनाने की जगह, उसी मौत का फायदा सहानुभूति प्राप्त करने के लिए उठाने वाले पति से उसकी पत्नी के मन में संताप है । अपने बच्चों की जान बचाने के लिए पानी की तेज धारा में कुदने की जगह जब वह और बच्चे होने की बात करता है तब उसकी पत्नी संताप से बेहोश हो जाती है । तभी अपने बड़े साहब के आगमन से खुश होता हुआ पति उसे जल्दी होश में लाने की कोशिश करता है । मनुष्य संवेदनहीन होकर किस हद तक गिर सकता है इसका चित्रण प्रस्तुत कहानी में किया है ।

सूर्यबाला के अनुसार कुछ महिलाएँ ऐसी होती हैं जो चाहती हैं कि उनके पति उनकी भावनाओं को समझे और उसके अनुसार उनके साथ व्यवहार करें लेकिन अक्सर होता यह है कि उनके पति अपने काम में इतने व्यस्त होते हैं कि वे अपनी पत्नियों को इतना समय नहीं दे पाते और सोचते हैं कि उन्हें घर में किस बात की कमी होगी ? ऐसे में उनकी पत्नियाँ घुटन, अकेलापन आदि की शिकार होती हैं क्योंकि उन्हें भावनाओं के स्तर पर सँबल प्राप्त नहीं होता । वे इस बारे में मुखर भी नहीं होतीं ऐसे में अपना जीवन निरसता से बिताती हैं । प्रस्तुत कहानी 'झील' में भी ऐसी ही महिला का चित्रण है जो सारी साधन-सुविधाएँ उपलब्ध होने के बाद भी दुखी है । उसके पति को इसका अहसास तभी होता है जब वह अपनी नौकरी से निवृत्त होता है और काम के अभाव में अकेलापन महसूस करता है ।

पति-पत्नी के बीच संवाद की कड़ी टूटने के भयंकर परिणाम संपूर्ण परिवार पर कैसे हो सकते हैं इसका अंकन इस कहानी में हुआ है ।

धार्मिक क्षेत्र में आए हुए परिवर्तन का रेखांकन प्रस्तुत कहानी 'राख' में हुआ है । हृदय में सच्ची आस्था एवं श्रध्दा लेकर हनुमानगढ़ी पर गए हुए परिवारवाले जब वहाँ के वातावरण एवं भक्तों के व्यवहार में आए हुए परिवर्तन को देखते हैं तो उनके स्वार्थ को देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं । उनके इस प्रकार के व्यवहार से परिवारवालों की हनुमानगढ़ी के प्रति आस्था एवं श्रध्दा टूट जाती है और बाबाजी व्दारा दी गयी भभूत उनके लिए सिर्फ राख बनकर रह जाती है ।

प्रस्तुत कहानी 'सिर्फ मैं' में आत्मकेंद्रित एवं असंतुष्ट महिला का चित्रण है जो केवल खुद के बारे में सोचती है । खुद के निर्णय, इच्छाएँ, आकांक्षाएँ पति पर थोपती है । उससे खुद का तबादला भी करवाती है, लेकिन नयी जगह से असंतुष्ट वह फिर से नयी जगह जाना चाहती है । इन सारी बातों से परेशान पति अपनी पत्नी के स्वभाव से परिचित हो जाता है और अपने दिल की जगह दिमाग का उपयोग कर उसकी बातों को टालता रहता है । आत्मकेंद्रित होने पर मनुष्य दूसरों के सुख-दुखों का विचार करना भी भूलता है यही इस कहानी का केंद्रीय भाव है ।

'कहाँ तक' एक आत्मकेंद्रित माँ की कहानी है जिसे अपने परिवारवालों का कुछ नहीं पड़ा है। वह केवल खुद के बारे में ही सोचती है । ढलती हुई उम्र में भी उसे अपने युवती होने का अहसास होता है । अंत में उसकी बेटी उसे यह अहसास दिलाती है कि अब वह बड़ी हो गयी है और उसकी माँ को अब उसकी शादी के बारे में सोचना चाहिए । तब उसकी माँ की आँखें खुल जाती हैं और उसे अपनी गलती का अहसास होता है ।

प्रस्तुत कहानी 'खोह' स्वार्थी, आत्मकेंद्रित, संवेदनहीन मनुष्य का चित्रण करती है । इस कहानी में धवल और जयंत दोस्त हैं । पुरानी दोस्ती की वजह से जयंत को धवल अपने घर

बुलाता है । वह और उसकी पत्नी बहुत अच्छी तरह से उनकी मेहमाननवाजी करते हैं । धवल की पत्नी को उनका व्यवहार अखरता है फिर भी वह अपनी ओर से उन्हें कोई तकलीफ न हो इसका पूरा खयाल रखती है ।

कुछ सालों बाद जयंत की पत्नी की कैंसर की बिमारी में मौत होती है । जयंत हर समय व्यस्त रहता है । धवल और उसकी पत्नी उसकी पत्नी की मौत पर उसे सांत्वना देने पहुँचते हैं तो देखते हैं कि अब भी वह उतना ही व्यस्त है । उसे मरी हुई पत्नी का कोई दुख नहीं है बल्कि उसने तो दूसरी शादी भी की है । उसके इस प्रकार के व्यवहार से धवल और उसकी पत्नी को बहुत दुख होता है।

'कहो ना' इस कहानी में अकेलेपन की समस्या को लिया गया है । कथा–नायिका मीता अपने पति के शिष्ट एवं शांत स्वभाव की वजह से उससे खुलकर मन की बात नहीं कहती । उससे उनके बीच की संवाद की कड़ी टूटती है । मीता अपनी भाभी के आखरी बेटे की शादी में अपनी पति के कहने पर नहीं जा पाती । उसका बेटा निक्की उससे दूर हॉस्टेल में रहता है इससे वह अकेलापन महसूस करती है । अपने मन की बात किसी से बाँट नहीं पाती । शादी से लौटा पति जब मीता को न पाने पर परेशान होता है तो छुपी हुई मीता उसके सामने आकर उस पर झुँझलाती है । तब पति के सच्चे प्यार का फिर से उसे अहसास होता है और नए सिरे से जीवन जीने की चाह उत्पन्न होती है ।

'थाली भर चाँद' "कहानी का कथ्य उस अभिजात वर्ग को बहुत सीधे और चुटीलेपन से मुँह चिढ़ाता है जो काम को हिकारत की दृष्टि से देखते है ।"[६] कहानी में दो परिवार अड़ोस–पड़ोस में रहते हैं । एक जो बड़ी–बड़ी बातें करता है, खुद को ऊँचे विचारों एवं रहन–सहनवाला समझता है और घर पर नौकरानी न आने पर या समय पर न पहुँचने पर दूसरे परिवारवालों को ईर्ष्या की नजर से देखता है । वही परिवार आश्चर्यचकित रह जाता है जब देखता है कि उनके पड़ोस में नौकरानी न आने पर घर की तीन छोटी बच्चियाँ बड़ी सरलता,

सहजता एवं उत्साह से घर का काम करने में अपनी माँ का हाथ बँटाती है । हँसी मजाक करते हुए खेल ही खेल में घर का काम सँभालती हैं और इसलिए थाली भर चाँद समेट लेने का आल्हाद, समाधान और सौंदर्य भी इन्हीं के पास है ।

'योध्दा' इस कहानी में लाचारी, यंत्रणा और मानसिक व्दंव्द की अभिव्यक्ति हुई है । लेखिका ने एक ऐसे युवक का चित्रण किया है जो सही मायने में योध्दा है, लेकिन उसका श्रेय उसके भाई को दिया जाता है जो दंगे में मारा गया है । एक दिन दंगे में एक बच्चे की जान बचाने के लिए दोनों भाई अपनी जान पर खेलते हैं जिसमें एक मारा जाता है । जो मारा जाता है उसे योध्दा और शहीद माना जाता है, लेकिन जिसने वास्तव में साहस एवं बहादुरी दिखायी वह जिंदा रहने की वजह से उपेक्षित रहता है । उसे जो मान-सम्मान मिलना चाहिए था, उससे वंचित रहता है ।

'सुम्मी की बात' परिवार में सबका खयाल रखनेवाली सुम्मी की कहानी है । परिवार में अपनी भूमिका निभाते अनजाने ही सुम्मी कई तरह के समझौते कर चुकी है । जब वह अपने अतीत में खो जाती है तो उसे अपने बिताए हुए दिन याद आते हैं । उन्हीं यादों में वह खोयी रहती है और किसी के बुलाने पर फिर से होश में आती है । फिर से अपने कामों में व्यस्त हो जाती है ।

२.२.१.४ मुंडेर पर (१९९०)

प्रस्तुत कहानी-संग्रह का प्रकाशन सन् १९९० में नेशनल पब्लिशिंग हाऊस से हुआ । इसमें दस कहानियाँ संग्रहित हैं । इसमें 'भुक्खड़ की औलाद' कहानी भी संग्रहित है जिसका जिक्र आगे किया जाएगा ।

सूर्यबाला की कहानियों में अनेक पात्रों के प्रत्यक्ष संबंध न होते हुए भी संवेदनात्मक संबंध होते हैं । प्रस्तुत कहानी 'मुंडेर पर' में भी पड़ोस में रहकर पढ़नेवाले व्यक्ति से कथा-नायिका का केवल परिचय मात्र है । कथा-नायिका उससे प्रेरणा पाकर बहुत पढ़ती है । लेकिन पढ़ते

समय निरंतर उसी लड़के के बारे में सोचती रहती है । वह उससे अपना परिचय बढ़ाना चाहती है इसीलिए उसके घर काम करनेवाले छोटू से उसके बारे में पूछती है । अचानक एक दिन उस पड़ोसी को उसके पिता के बीमारी की तार मिलती है और वह घर छोड़कर चला जाता है । इस बात से नायिका को बड़ा दुख होता है लेकिन कुछ ही दिनों में वह अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो जाती है ।

सूर्यबाला की 'फरिश्ते' यह कहानी प्रेमचंद की 'दूध का दाम' कहानी की याद दिलाती है । प्रस्तुत कहानी में एक ईमानदार नौकर अपने मालिक व्दारा किए गए कत्ल का इल्जाम खुद पर लेता है और सजा काटने जेल चला जाता है । जेल जाते समय मालिक उसके परिवार की जिम्मेदारी उठाने और उसे जल्दी छुड़वाने की बात तो करता है, लेकिन बाद में मुकर जाता है । उसकी बीवी और बच्चे से मनचाहे काम करवाये जाते हैं । एक प्रकार से उसके परिवारवालों का मालिक और उसके घरवाले उनका शोषण करते हैं । निराधार मटरुआ और उसकी माँ अपने मालिक को फरिश्ता समझते हैं, केवल इसलिए कि वे ही उनके जिंदा रहने का आधार है । मटरुआ की माँ अपने बेटे को वे सारे काम करने को कहती है जो उसका मालिक और घरवाले बताते हैं और केवल इसी आशा को लेकर शोषण के शिकार होते हैं कि उनका मालिक उसके पति को जेल से रिहा करने की कोशिश करेगा ।

सूर्यबाला की कहानियाँ संवेदनाओं से जुड़ जाती हैं । प्रस्तुत कहानी 'अनाम लमहों के नाम' एक अत्यंत संवेदनशील गृहस्थिन नारी की मानसिकता की कहानी है जो एक ओर पड़ोस की कोठरी में रहनेवाले एक अनाम पड़ोसी के दर्द से बींधती है, तो दूसरी ओर वह अपने व्यवहारी, काइयाँ किस्म के, पति के कृत्यों को तर्क की तुला पर तौलती हुई उन्हें विवेचित, विश्लेषित कर सही ठहराती है । यही वैचारिक समझौतावादी जिंदगी उसे जीने में समर्थ बनाती है । उनके बच्चे भी इसी प्रकार की स्थितियों को झेलने के लिए बाध्य हैं। बच्चों की मानसिकता को समझने में असमर्थ पिता उनकी स्कूली जरूरतों को ऑफिस से चुराकर लायी

हुई चीजों से पूरा करता है । उसके कंजूस स्वभाव की वजह से बच्चे बिगड़ने लगते हैं लेकिन पड़ोस में रहनेवाले अनाम व्यक्ति के प्रभाव से छोटा बच्चा सुधर जाता है । उसके व्दारा गाए जानेवाले गानों से कुछ दिनों के लिए नायिका के जीवन में भी उल्हास भर जाता है । इस प्रकार के अनाम संबंध भी जीवन में नया मोड़ लाने की क्षमता रखते हैं यह इस कहानी से स्पष्ट होता है ।

'वे जरी के फूल' यह "कहानी उन हजारों रुक्कियों की कहानी है, जो प्यारी-सी एक अलमस्त जिंदगी जीने के बाद सामाजिक रस्मों और जिंदगी जीने के लिए मजबूर कर दी जाती हैं ।"[10] दहेज जैसी सामाजिक कुप्रथा की वजह से अनाथ रुक्की, सुशील, सुंदर होने के बावजूद जिंदगी भर अकेली रह जाती है । कथा-नायक जब रुक्की के बारे में सोचता है तो उसे लगता है कि रुक्की की जिंदगी सँवर गयी होगी लेकिन सच्चाई पता चलने पर वह भी अवाक् रह जाता है । आजादी के उपरांत समाज में इतना बदलाव आने के बाद भी कुछ

कुप्रथाएँ समाज से हटने का नाम नहीं ले रहीं हैं, यह सच इस कहानी के माध्यम से सामने आता है ।

'सौगात' इस कहानी में ससुर का काम अपने बहु–बेटे की तावेदारी निभाना ही रह जाता है। उनके मोतियाबिंद के ऑपरेशन के समय खयाल रखने के लिए मानिकपुरवाली भौजी को बुलाया जाता है जो उनका दुख समझती है । अस्पताल में वह निरंतर उनकी सेवा करती है। वहाँ से घर लौटने पर तुरंत भौजी को वापस भेजने का इंतजाम किया जाता है जब कि बूढ़ा ससुर चाहता था कि भौजी उनके घर और कुछ दिन रहें । इससे दोनों का मन बहल जाएगा । लेकिन उनकी बहु और बेटा इतने स्वार्थी हैं कि काम होते ही भौजी के जाने का इंतजाम कर देते हैं । जाते समय सौगात के तौर पर बूढ़ा अपनी दिवंगत पत्नी की पहनी हुई कासनी रंग की धोती और एक बटुआ उसे थमाता है क्योंकि इसके अलावा उसके पास देने

के लिए कुछ भी नहीं है । बेटे-बहु की सहानुभूति-स्नेह के बिना एक रूखी-सूखी जिंदगी जीना बड़ा मुश्किल होता है, इस पीड़ा को कहानी में चित्रित किया है ।

'गैस' यह कहानी मध्य-मध्यवर्गीय पारिवारिक जिंदगी की खींच-तान का सही चित्रण करती है । गैस जैसी जरूरतमंद चीज खतम होने पर नौकरी पेशा औरतों को किस प्रकार की समस्याओं से जुझना पड़ता है, इसका वर्णन लेखिका ने किया है । घर की छोटी-मोटी चीजों को इकठ्ठा करने के लिए कामकाजी महिलाओं को किस तरह परेशानियाँ उठानी पड़ती हैं यह लेखिका ने कहानी के माध्यम से लोगों के सामने रखा है । इन परिस्थितियों में खास तौर पर पति या घर के अन्य सदस्यों से असहकार्य मिलने पर समझौता करते हुए समस्याओं पर मात की जा सकती है इसका चित्रण भी लेखिका ने किया है । नायिका की विवशता यहाँ पर दो बिंदुओं पर उभरी है एक मानव विरोधी भ्रष्ट व्यवस्था और दूसरा पति पुरुष के असहयोग और दायित्वहीनता का ।

कथा-नायिका के घर गैस खतम होने पर काफी परेशानियाँ उठानी पड़ती है । उसके घर रिश्तेदारों के आगमन के डर से वह जल्दी से जल्दी गैस का इंतजाम करना चाहती है ।

गैस-गोदाम से गैस-ऑफिस वालों से मिन्नतें, शिफारिशें करते हुए समय बरबाद करने के बावजूद जब उसे गैस नहीं मिलता तब वह सीधे लोहे की अंगीठी और आधी बोरी कोयले लेकर वापस लौटती है ।

'जेब्रा' यह कहानी बड़ी मर्मांतक है । व्यावहारिक और मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण जेब्रा नाम का लड़का कोठी-बँगलेवालों से बहुत सारी गालियाँ लेकर कुछ पैसों के लिए जी तोड़ मेहनत करता है । अपने पिता के प्रति उसकी भावनाएँ तटस्थ होती हुई भी कितनी उद्दाम हैं, इसका लेखिका ने जीवंत करुण चित्र खींचा है ।

जेब्रा, उज्जड़, गँवार होने के बावजूद कथा-नायिका को उसे काम पर रखना पड़ता है । जेब्रा अपना काम लगन से करता है लेकिन सारे लोगों को उसके हुलिऐ से नफरत है । उसका

GOA UNIVERSITY LIBRARY GOA

T-817
817

पिता शराब पीकर कहीं भी पड़ा रहता है । इसलिए जेब्रा के मन में उसके प्रति नफरत है । एक दिन नायिका के घर के गेट की बाहरवाली नाली में वह शराब पीकर पड़ता है। कई लोग उसे देखते तो हैं लेकिन कोई उसे बाहर नहीं निकालता । नायिका को पता लगने के उपरांत वह जेब्रा से इसलिए नहीं कहती कि वह समय से पहले न चला जाए । लेकिन जब जेब्रा से वह सुनती है कि उसे इस बात का पता है, तो अवाक् रह जाती है । घर लौटते समय जेब्रा अपने पिता को उठाने का असफल प्रयास तो करता है फिर गाली देते हुए निकल जाता है । नायिका और उसके घरवालों को तब धक्का पहुँचता है जब वे सिनेमा से लौटते हुए देखते हैं कि जेब्रा भी नाली के पास अपने बाप से लिपटकर सोया हुआ है ।

प्रस्तुत कहानी में लेखिका ने अमीर एवं गरीब लोगों की मानसिकता, व्यवहार, रहन-सहन और संवेदनाओं का भी बड़ा सुंदर वर्णन किया है । "इसमें लेखिका ने मध्यम वर्गीय भ्रष्टता, रिश्वतखोरी, आत्मश्लाघा और अमानवीयता को छील कर रख दिया है । जेब्रा जैसे भोले लड़के से कम पैसों में बहुत सारे काम लेते हैं और संभ्रांत वर्ग उसे चोर बदमाश और जेब्रा जैसे व्यंग्यवाचक उपनामों से संबोधित करते हैं । ये उपाधियाँ मध्यवर्ग के भ्रष्ट लोगों के लिए ही सटीक हैं ।"[11]

जीवन में किसी खास अनुभवों की वजह से लोग नजदीक आते हैं या दूर जाते हैं । खास तौर से बचपन एवं यौवन, जीवन के ऐसे मोड़ हैं जहाँ मनुष्य के मन अति संवेदनशील होते हैं । इसलिए उस समय मिले हुए सुखद एवं दुखद अनुभव भी मन में घर कर जाते हैं ।

प्रस्तुत कहानी 'पीले फूलोंवाली फ्रॉक' में कथा-नायिका के समक्ष एक आगंतुक आता है जो उसे किसी की शादी में मिला था। उस समय की सारी बातें वह उसे याद दिलाता जाता है नायिका यह देखकर आश्चर्यचकित होती है कि इस आगंतुक के मन में बाईस साल पहले की तस्वीर वैसे की वैसी आज भी बनी हुई है । हालाँकि दोनों शादी-शुदा हैं और अपने-अपने

जीवन में सुखी हैं । आगंतुक व्दारा किए गए वर्णन से नायिका फिर एक बार अपने जीवन के बाईस साल पहले का सफर कर आती है ।

ईमानदार और मेहनती व्यक्ति के जीवन की त्रासदी 'मुक्तिपर्व' कहानी में व्यक्त हुई है । आज कहीं भी काम करने वाले व्यक्ति को समाज से जुझना पड़ता है । समाज उसे उसके उसूलों के अनुसार जीने नहीं देता । ऐसा लगता है, भ्रष्टाचार ने अपने पैर इतने फैलये हैं कि सच्चाई की राह पर चलनेवाले को इस दुनिया में कोई स्थान नहीं है ।

प्रस्तुत कहानी का नायक सुशांत अपनी शादी के कुछ साल बाद अपने शोध-कार्य में सफल होता है । वह अपने इन्स्टीट्यूशन में भ्रष्टाचार का निरंतर विरोध करता है । इसलिए उसका अफसर उसपर नाराज रहता है। वह कुछ लोगों के साथ मिलकर सुशांत पर आरोप लगाता है कि उसने इन्स्टीट्यूशन के पैसों का उपयोग निजी जीवन के लिए किया है । अनेक आरोपों में फँसाकर सुशांत को सस्पेंड किया जाता है । उसे धोखा दिया जाता है । इसी सदमे से उसकी मौत होती है । उसके पीछे उसकी पत्नी माधवी अपने पति पर लगाए गए झूठे आरोपों को साबित करने न्यायालय में जाती है और ठीक दस साल बाद न्याय पाती है। अपने पति पर लगाए गए सारे आरोप मिटाती है । इन विरोधी, अन्यायी स्थितियों से संघर्ष कर अपने पति के चरित्र पर लगे धब्बे को धो डालने की एक स्त्री की जुझारू वृत्ति विस्मित और हर्षित करती है ।

२.२.१.५ गृहप्रवेश (१९९२)

प्रस्तुत कहानी-संग्रह सन् १९९२ में प्रभात प्रकाशन से प्रकाशित हुआ । इसमें कुल ग्यारह कहानियाँ संकलित हैं, जो विविध सामाजिक एवं सांस्कृतिक विषयों को लेकर लिखीं गयी हैं । अनेक नैतिक मूल्यों एवं सामाजिक मूल्यों की स्थापना प्रस्तुत कहानियों के माध्यम से लेखिका करना चाहती है ।

'गृहप्रवेश' कहानी में बीरु और शकुन नया घर बनाते हैं । गृहप्रवेश के अवसर पर वे अपनी बहन और उसके परिवारवालों को बुलाते हैं । आतंकित वातावरण की वजह से गृहप्रवेश के लगभग एक महीने बाद जब वे पहुँचते हैं तो देखते हैं कि वहाँ भी आतंक फैला हुआ है । बीरू और उसके परिवारवालों में एक प्रकार का भय फैला हुआ था । बीरू की जिजीविषा प्रत्येक विपरीत स्थिति को आशावादी दृष्टि से देखती थी और शकुन की आँखों में हमेशा दहशत भरी रहती थी, इसके कारण बीरू स्वयं को हर समय कमजोर महसूस करता है। "इस कहानी में लेखिका विघटन, आतंक एवं हताशा के बीच जी पाने की कोशिश और जी लेने की कला की प्रतिष्ठापना करती है ।"[१२] अंत में बीरू शकुन की आँखों में विश्वास रोपने में सफल होता है और गृहप्रवेश के ड़ेढ़ महिने के उपरांत उनका वास्तविक गृहप्रवेश होता है। इस कहानी में आतंक, दहशत के समाज पर पड़े प्रभाव का अंकन किया है । यह कहानी आज के असुरक्षित, आतंकमय वातावरण में छटपटाते आम आदमी की भयंकर यंत्रणा का एहसास दिलाती है ।

प्रस्तुत कहानी 'बाऊजी और बंदर' में लेखिका ने वृध्दों की समस्या का चित्रण किया है । आज हर इंसान दूसरे की ओर उपयोगिता की दृष्टि से देखता है । घर में स्थित वृध्दों के साथ भी इसी दृष्टि से व्यवहार किया जाता है । अपने बच्चों के साथ रहने की इच्छा रखनेवाले वृध्द माता-पिता व्दारा उठाए गए कष्टों को भुलाकर उनसे उपेक्षा भरा व्यवहार किया जाता है । उनके अकेलेपन या जीवन की एकरसता की ओर नजरंदाज किया जाता है। यह कहाँ तक उचित है ? इस बात पर सोचने के लिए यह कहानी मजबूर करती है ।

इस कहानी में बाऊजी के आने से परेशान बहु उनका किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है इस बारे में सोचती है और बंदरों को भगाने का काम उन्हें सौंपती है । जब परिवार के साथ कुछ दिनों के लिए उसे बाहर जाना पड़ता है तो बाऊजी का चौकीदार के रूप में उपयोग किया जाता है । बंदरों को भगाने में अक्षम बाऊजी उनसे दोस्ती करते हैं और उन्हें

भीगे हुए चने खिलाते हैं । इस बात को देखकर वापस अपने घर लौटनेवाले सारे घरवाले हैरान रह जाते हैं । बाऊजी और बंदर का समीकरण आज के युग में स्नेह और उष्मा रहित पारिवारिक स्थिति का आईना है ।

सांप्रदायिक दंगे देश की एकता को खंडित करते हैं । कुछ आपमतलबी लोग अन्य लागों को धर्म एवं जाति के नाम पर उकसाते हैं और दंगे करवाते हैं । प्रस्तुत कहानी 'सौदागर दुआओं के' में सांप्रदायिक सद्भाव, वैमनस्य और अंत में मानवता की विजय की घोषणा है । श्रीमती सुमति अय्यर के अनुसार "'सौदागर...' कहानी मानवता पर से उठते जा रहे विश्वास को फिर सुदृढ़ करती है । वस्तुतः संस्कार कभी व्यर्थ नहीं जाते । नवाज मियाँ की सही राह पर वापसी पीर साहब के लिए ही नहीं, पूरी इंसानियत की जीत है । जो मजहब को नहीं जानती । जो एक मशाल खुद है, जलाती नहीं, रोशनी देती है । मजबूत हाथों में हस्तांतरित होती हुई - एक नया रास्ता खोज निकालती है ।"[१३] सैय्यद साहब का घर हिंदुओं की बस्ती में है । उनके व्दारा दिए हुए तावीजों एवं दवईयों से कितने ही लागों की बिमारियाँ ठीक हुई हैं । बस्ती में सारे लोग उनपर श्रध्दा रखते हैं । रिजवी साहब जैसे मतलबी मुसलमान धर्म के नाम पर लोगों को उकसाकर उस बस्ती में आग लगाना चाहते हैं लेकिन केवल सैय्यद साहब और उनके बेटे नवाज मियाँ के वहाँ रहने की वजह से वे अपने मकसद में कामयाब नहीं हो पाते । एक दिन रिजवी साहब सैय्यद साहब के घर आकर दोपहर के समय बस्ती में आग लगाना चाहते हैं लेकिन सैय्यद साहब उस बस्ती को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते। उन्हें भड़काने की हर कोशिश में रिजवी साहब असफल होते हैं । सच्ची मानवता-धर्म का पालन करते हुए सैय्यद साहब मंजिल की सीढ़ियाँ चढ़ते जाते हैं ताकि ऊपर पहुँचकर वे बस्तीवालों को इस बात से होशियार करें कि बस्ती में आग लगनेवाली है । इस कहानी के माध्यम से लेखिका ने सांप्रदायिकता को भड़काने वाले लोगों का पर्दाफाश किया है । साथ ही इस समस्या को प्यार, मोहब्बत, इंसानियत और लोगों पर विश्वास, अपनापा आदि बातों से

सुलझाया जा सकता है तथा देश की अखंड़ता बरकरार रखी जा सकती है इस बात का संदेश दिया है।

प्रस्तुत कहानी 'होगी जय, होगी जय .....हे पुरुषोत्तम नवीन !' में सूर्यबाला इस सत्य को उजागर करती है कि आज सच बोलनेवाले और ईमानदार व्यक्ति को ही सजा मिलती है । इन्हीं मूल्यों की स्थापना प्रस्तुत कहानी के माध्यम से उन्होंने की है । पहले जमाने में ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति को आदर और सम्मान से देखा जाता था साथ ही सारे लोग उसपर हुए अन्याय को दूर करने के लिए एकत्रित होते थे लेकिन आज युग बदल गया है । ईमानदार व्यक्ति को अपना ईमान बेचने पर मजबूर किया जाता है और ऐसा न करने पर सजाएँ मिलती हैं । इस प्रकार की कई घटनाएँ हम अखबारों में आज देखते हैं । इस प्रकार की कई बातों की सच्चाई का पर्दाफाश होता है लेकिन बहुत-सी बातें दबायी जाती हैं। कथा-नायक का सच्चाई और ईमानदारी की वजह से कई बार तबादला हुआ है जिसके कारण उसके बच्चों की पढ़ाई पर इसका असर हुआ है । इस बार भी यह फॉरेस्ट अफसर

अरुण वर्मा एम. एल. ए. के भतीजे का ट्रक पकड़कर अपनी ईमानदारी पर डटा रहता है । अपने बच्चों को अपने पिताजी व्दारा मिली मूल्यों की संजीवनी देता है । उन्हें अपने पिताजी के साथ घटित घटना सुनाता है जिसमें लोगों ने उनका साथ दिया था और उनके डायरेक्टर को अपना ऑर्डर वापस लेना पड़ा था । पर अरुण वर्मा के साथ ऐसा नहीं होता । उसकी ईमानदारी की वजह से उसे सस्पेंड किया जाता है । इससे उसे इस बात का दुख होता है कि अपने समाज में ऐसे लोग नहीं बचे हैं जो सच को सच कहने की हिम्मत जुटा सके । सिर्फ उसकी पत्नी उसे इस स्थिति में सहारा देती है । वह खुश होकर देखता है कि उसका बेटा उसकी सच्चाई और ईमानदारी की धरोहर सँभालने के लिए तैयार हो रहा है ।

वास्तव में आज हमें सामाजिक और नैतिक मूल्यों को बचाने के साथ ही दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने की जरूरत आ पड़ी है, अन्यथा समाज का पतन निश्चित है ।

प्रस्तुत कहानी 'समापन' में वृध्दों की समस्याओं को रेखांकित किया है । कथा–नायिका की माँ नायिका को पत्र भेजकर उसे देखने की ईच्छा प्रकट करती है । अपनी माँ के इस प्रकार के व्यवहार से वह गुस्सा हो जाती है क्योंकि उसे मिलने जाते समय नायिका को लंबा सफर तय करना पड़ता है और दो महीने पहले ही वह उसे मिलकर लौटी है । उसने देखा है कि उसकी माँ दिन भर उसके भाई एवं अन्य परिवारवालों को परेशान करती रहती है । हालाँकि उसे किसी बात की कमी नहीं है लेकिन वह अपने बच्चों की समस्याएँ नहीं समझ पाती । उसकी बहु भी उनका पूरा खयाल रखती है । इसके बावजूद एक माँ का हृदय अपने बच्चों से प्यार के कारण हमेशा चिंतित रहता है । इस बात को बच्चे भी समझते हैं लेकिन अपनी व्यस्तता के कारण केवल माँ के साथ बने रहना बड़ा मुश्किल होता है ।

नायिका माँ को उसकी वास्तविक स्थिति से अवगत कराते हुए आराम से निश्चिंत रहने की सलाह देना चाहती है ।

प्रस्तुत कहानी 'सुनो समित, सुनो सुलभ' में एक स्वाभिमानी महिला का चित्रण आया है । समित, अपनी पत्नी विनीता को छोटे बच्चे सुलभ के साथ छोड़कर विदेश चला जाता है और अपनी तरक्की करता रहता है । कालांतर में वह उस उन्मुक्त वातावरण का आदी हो जाता है और वहीं पर दूसरी शादी करता है । विनीता अपने बेटे सुलभ का पूरा खयाल रखती है। उसके लिए समित पैसे भेजता है । विनीता भी मना नहीं करती। वह सुलभ की इच्छाओं को पूरा करने के लिए खुद की इच्छाओं को दाँव पर लगाती है । सुलभ बड़ा होने पर समित चाहता है कि वह भी विदेश में नौकरी के लिए आए । सुलभ अपने पिता की तरह झट से इस बात से सहमत हो जाता है और विनीता भी उसे रोकने की कोशिश नहीं करती और वह यह तय करती है कि बची हुई जिंदगी अब वह खुद के लिए जिएगी। खुद की जरूरतों एवं इच्छाओं को पूरा करेगी ।

गरीबी मनुष्य को कितना लाचार बनाती है, इसका उद्‌घाटन प्रस्तुत कहानी 'सुखांतकी' में हुआ है । कथा-नायिका के घर एक लाचार राहगीर एक दिन अपनी बेटी के लिए कुछ खाने के लिए माँगता है । नायिका उसे अंदर तो बुलाती है लेकिन उसके बारे में आशंकित रहती है। उसे खाने लिए देने के उपरांत वह बातों-बातों में यह जान जाती है कि वह मानदीह गाँव का है, जो अपनी पत्नी को इलाज के लिए ५०० रुपयों का कर्जा लेकर गाँव से निकला था । सारे पैसे पत्नी के इलाज तथा मृत्यु के उपरांत क्रिया-कर्म में खर्च हो गए। वापस गाँव जाने बिना टिकट के ट्रेन में चढ़ा तो टी. सी. ने उसे बीच के किसी स्टेशन पर उतारा । इस तरह से भूखी बच्ची को लेकर वह नायिका के घर तक खाना माँगने पहुँच गया था । इस बात से नायिका को उसकी दया आती है और वह उसे दस रुपये थमा देती है । वह लेकर वह खुशी-खुशी वहाँ से लौटते देख नायिका को थोड़ा समाधान मिलता है कि उसके दुख को कुछ हल्का करने में वह मददगार साबित हुई ।

मनुष्य जब तक जीवित रहता है, तब तक किसी को उसका महत्व नहीं रहता लेकिन जब वह इस दुनिया से चला जाता है तब उसका महत्व समझ में आता है । 'सलामत जागीरें' में कथा-नायक की माँ गुजरने के उपरांत उसे माँ न होने की कमी खलती है । जब तक वह थी, तब तक वह उसकी बातों को नजरंदाज करता रहा लेकिन जब वह गुजर गयी तब उसे उसकी सारी बातें प्यार से लबालब भरी नजर आने लगी ।

मनुष्य उत्सव प्रिय होता है । रिश्ते-नाते बनाए रखने के लिए ये पर्व या त्योहार बहुत मददगार साबित होते हैं। इनके बिना जीवन निरस बन जाएगा । इन त्योहारों के पीछे कोई न कोई भावना या उद्‌देश्य छिपा रहता है । आज मनुष्य इन बातों को धीरे-धीरे भूल रहा है। उसके पास दूसरों के लिए समय ही नहीं होता । समय हो भी तो भी वह स्वार्थ केंद्रित होने की वजह से पर्वों एवं त्योहारों के पीछे छिपे उद्‌देश्यों को नजरंदाज करता जा रहा है । आधुनिकता के दौर में बढ़ी आज की पीढ़ी के लिए भैया दूज जैसा पवित्र पर्व कोई महत्व

नहीं रखता यही बात प्रस्तुत कहानी 'दूज का टीका' में रेखांकित हुई है । दूज का टीका करने दूर से आयी बहन के लिए न ही भाई के मन में कोई प्यार है और न ही भाभी के। नई पीढ़ी तक भी ये पर्व पहुँचाने की कोशिश उनके व्दारा नहीं की जाती क्योंकि उन्हें तोहफे देने में खर्च होता है और बहन के अनुसार आत्मरक्षा करने में बहन समर्थ है जिसकी वजह से इस पर्व का उनकी नजर में कोई महत्व ही नहीं रह जाता। इस तरह से रक्षाबंधन, भैया दूज जैसे पर्व आज अर्थहीन साबित हो रहे हैं । उसके पीछे छिपी भावनाएँ एवं संवेदनाएँ समाप्त होती जा रही हैं ।

मनुष्य की स्वार्थ-वृत्ति को प्रस्तुत कहानी 'गुफ्तगू' में उजागर किया है । स्वार्थ मनुष्य को कृतघ्न बनाता है । कथा में के. के को कैंसर हुआ है । के. के एक परोपकारी व्यक्ति है । कथा-नायक के परिवारवालों को के.के ने बहुत मदद की थी । सभी लोगों की बिमारियों में उनका साथ दिया था । लेकिन अब जब के.के को, जो नायक के परिवार से बहुत दूर है, इन लोगों को देखने की इच्छा मात्र है, तब नायक और उसकी पत्नी केवल अपनी परेशानियों के बारे में सोचते हैं और अंत में वहाँ न जाने का निर्णय लेते हैं । अहसान फरामोश लोगों का चित्रण प्रस्तुत कहानी में किया है ।

होशियार होने के बावजूद गरीब बच्चों को शिक्षा से वंचित रहना पड़ता है । लड़कियों की शादी के लिए केवल डिग्रियों की आवश्यकता महसूस होना किस सीमा तक सही है ? यह सवाल लेखिका ने प्रस्तुत कहानी 'गीता चौधरी का आखिरी सवाल' के माध्यम से उठाया है । गीता चौधरी होशियार लड़की है । उसे घर की सारी जिम्मेदारियों को निभाना पड़ता है । उसके घरवालों के लिए उसकी केवल डिग्री महत्वपूर्ण है क्योंकि शादी के समय वह काम आनेवाली है । वैसे उसकी भाभी का भाई जाली सर्टिफिकेटों का इंतजाम कर सकता है । उसके परिवार में लड़कों का शिक्षित होना अधिक महत्वपूर्ण है । इसलिए गीता को उसके भाईयों के भी छोटे-बड़े काम करने पड़ते हैं । इससे उसकी पढ़ाई पर बहुत असर होता है ।

उसका व्यवहार भी बदल जाता है। उसकी हितचिंतक शिक्षिका का इस ओर ध्यान जाता है और वह उसे इस स्थिति से उबारने की कोशिश में जूट जाती है । लेकिन गीता चौधरी का सवाल कि लड़कियों की औकात इस समाज में क्या है ? उसे चुप करा जाता है क्योंकि आजादी के उपरांत इतने सालों बाद भी ये समस्या हमारे समाज में आज भी मौजूद है यही बड़े दुख की बात है । लेखिका पाठकों से यह प्रश्न करती है कि हमारा समाज कब तक बदलेगा ? श्रीमती सुमति अय्यर के अनुसार "गीता के माध्यम से समाज के मध्य वर्ग की लड़कियों की घुटन बहुत सुंदर रूप में उभरकर आई है । अंत में लाउड थिकिंग की नाटकीयता के बाद भी कहानी बाँधती हैं ।"[१४]

२.२.१.६ साँझवाती (१९९५)

प्रस्तुत कहानी-संग्रह किताबघर प्रकाशन से सन् १९९५ में प्रकाशित हुआ । इसमें ग्यारह कहानियाँ संकलित हैं। ये कहानियाँ विविध विषयों पर आधारित हैं इनका परिचय इस प्रकार है-

बढ़ती हुई बेरोजगारी की दुनिया में नौकरी मिलना बहुत मुश्किल होता है । मिल भी गयी तो उसे सँभालकर रखना उससे भी मुश्किल होता है । सामान्य व्यक्ति को अपमान सहकर भी नौकरी बनाए रखना और घर की आर्थिक समस्याओं से निपटने में आनेवाली मुश्किलों को 'खुशहाल' इस कहानी के माध्यम से लेखिका ने रेखांकित किया है ।

पुरुष प्रधान समाज में नारियों पर अत्याचार होते आए हैं । समाज में पुरुष कोई भी गलती करें और छुपाने के लिए झूठ भी बोले तो उसके प्रति सहानुभूति से देखा जाता है, लेकिन वही गलती स्त्री करें तो उसकी बात पर विश्वास न करते हुए उसे कड़ी से कड़ी सजा दी जाती है । प्रस्तुत कहानी 'सुमिन्तरा की बेटियाँ' में सुमिन्तरा का पति ढ़ोढ़े अपनी दो बेटियों की जिम्मेदारी सुमिन्तरा के माथे थोपकर दूसरी शादी करता है । शादी के दिन टॅक्सी में दुलहिन को बिठाकर ले जाते वक्त झुमरिया रेत, मिठ्ठी, कीचड़ हाथों में भरकर टैक्सी पर

फेंकसर घोषणा करती है कि 'ढोढ़े मर गिया, उठी लहास' । वह भागकर दूर जाती है । दोनों बहने मिलकर ढोढ़े की कबर बनाती हैं । उन्हें ढुंढकर वापस ले जाती हुई सुमिन्तरा पूरी तरह से मुक्त और तीनों नई चेतना से परिपूर्ण नजर आती हैं ।

सामान्य मनुष्य जब सच्चा और ईमानदार रहकर जीना चाहता है, तो उसका जीना हराम हो जाता है । प्रस्तुत कहानी 'विजेता' में नायक को उसकी सभ्यता और सरलता की वजह से उसके घरवाले भी उसे मरद नहीं समझते और लोग भी उसका आए दिन शोषण करते रहते हैं । आखिर सहनशीलता की भी एक सीमा होती है । एक दिन बस में एक महिला उस पर पाकेट काटने का इल्जाम लगाती है और उस समय उसका वजूद उसे मर्द होने से धिक्कारता है । जिंदगी में जितनी भी महिलाओं ने उसका शोषण किया था, उन सभी का गुस्सा उस आरोप करनेवाली महिला पर निकालकर वह उसे एक थप्पड़ जमाता है । इससे सभी लोगों को आश्चर्य होता है । लेकिन इसी घटना से उसमें आत्मविश्वास जगता है और वह अपनी जिंदगी स्वाभीमान से जीने की ठान लेता है ।

मनुष्य के जीवन में अनेक समस्याएँ होती हैं । कुछ लोग उनसे पलायन करते हैं और कुछ लोग उनसे जुझते हुए जीते हैं । प्रस्तुत कहानी 'गोबर च्चा का किस्सा' में गोबर च्चा मतलब गोबरधन गैर जिम्मेदार बनकर गेरुए वस्त्र धारणकर वैरागी बना फिरता है लेकिन उसका भाई बनवारी घर की सारी जिम्मेदारियों को पार करते हुए जीता है । लेखिका कहती है- " जिंदगी दुरदुराती, दुतकारती है और इस तरह जाँचती, आजमाती है कि कौन भगोड़ा है और कौन मैदाने-जंग का सूरमा ।"[१५] जब उसके पिता की मौत होती है तब सरताजी व्दारा गोबरधन के कान खींचने पर उसे अपनी गलती का अहसास होता है और वह सुधर जाता है । डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर के अनुसार सूर्यबाला की सार्थक गहरी व्यंग्यात्मकता, जिंदगी की साधारणता से ईमानदार लगाव, मामूली आदमी की संघर्ष-गाथा की पहचान और खोटी देशीपना उनकी कहानी 'गोबर चाचा का किस्सा' प्रकट करती है ।"[१६]

गरीबी मनुष्य से उसके सारे अधिकार छीन लेती है । 'सुनंदा छोकरी का डायरी' कहानी में सुनंदा और उसके भाई-बहन गरीबी की वजह से पढ़ नहीं पाते । बालमजदूरी की शुरुआत यहीं से होती है । पिता के अपघात के बाद नौकरी छूट जाती है जिससे सुनंदा को स्कूल छोड़कर काम करना पड़ता है । उसके सपने, खुशियाँ चूर-चूर हो जाती हैं । नौकरी न होने की वजह से पिता दारू पीने लगता है, पत्नी को मारता है । हररोज के झगड़ों से पूरा परिवार त्रस्त होता है । गरीबी के परिणामस्वरूप समाज में बालमजदूरी किस प्रकार बढ़ रही है इसका चित्रण प्रस्तुत कहानी में आया है ।

'आदमकद' नारी चेतना से परिपूर्ण कहानी है । सूर्यबाला ने सामान्य परिवार की बदसूरत औरत में अदम्य नारी चेतना को प्रस्तुत किया है । बदसूरत लेकिन निरंतर कर्मरत औरत की शादी नकारे मर्द के साथ करने पर क्या होता है यह दिखाया है । साथ ही किसी के शरीर का रंग उसके जीवन का निर्धारण नहीं कर सकता । उसकी पहचान, उसकी शक्ति एवं बुध्दि से होती है । नकारे पति के साथ शादी करने के बाद भी अपने पति का सदैव सम्मान करती वह महिला घर की सारी जिम्मेदारियों को निबाह ले जाती है । बेटे के जन्म के उपरांत पति के मौत से भी नहीं घबराती बल्कि भविष्य के बारे में महत्वपूर्ण निर्णय लेती है ।

'साँझवाती' यह कहानी 'बागबान' सिनेमा की याद दिलाती है । सिक्ख परिवार के दो प्रेमी मिलकर अपने बच्चों के बचपन और वर्तमान स्थिति का जायजा देते हैं । वास्तव में वे अलग-अलग बच्चों के घर रहतें है । जब एक दूसरे से मिलते हैं तो अपने बच्चों के बिगड़ने की बात एक दूसरे को बताते है । साथ ही लेखिका ने पारिवारिक ढाँचे को बनाए रखने की बात इसमें कही है । पहले पुरुष और महिला अपने-अपने पारिवारिक कर्तव्यों को निबाहते हुए सुखी जीवन बिताते थे लेकिन आज दोनों करियर के पीछे दौड़कर अपनी प्रगति तो कर रहे हैं लेकिन सुखी निश्चित नहीं हैं ।

सूर्यबाला की 'उत्तरार्द्ध' कहानी में गृहिणी स्त्री का वर्णन आया है, जो अपने परिवारवालों को एक-दूसरे के साथ जोड़कर रखना चाहती है । इसी कशमकश में खुद बिखरने का जब उसे खयाल आता है तब सँभलकर खुद का जीवन जीने के लिए वह कदम उठाती है ।

प्रस्तुत कहानी-संग्रह में इन कहानियों के अलावा और तीन कहानियाँ हैं - १) आखिरवीं विदा २) दिशाहीन ३) कंगाल । ये कहानियाँ हमें अन्य संग्रहों में भी प्राप्त होती हैं जिनका परिचय दिया गया है ।

२.२.१.७ कात्यायनी संवाद (१६६६)

'कात्यायनी संवाद' कहानी-संग्रह यथार्थपरक घटनाओं को रेखांकित करता है । इसमें विभिन्न मनोभावों को मनोविश्लेषणात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है । इस कहानी-संग्रह में ग्यारह कहानियाँ संकलित हैं जो इस प्रकार हैं -

'बिन रोई लड़की' इस कहानी में सूर्यबाला ने एक मासूम लड़की के मनोभावों का मार्मिक चित्रण किया है । इसका नाम स्नेहल था । वह बड़े सौम्य स्वभाव की थी जो कथा-नायिका के बेटे से प्यार करती थी लेकिन उसमें सीधे कहने का साहस नहीं था । अपनी दोस्त जया के जरिए कहने की कोशिश उसने की थी लेकिन वह कथा-नायिका का मन परिवर्तित करने में असफल रही । नायिका का तबादला होने पर अंतिम बार जब उसे मिलने गयी तब भी कथा-नायिका ने ऊपरी ऊपर की बातें कर उसे टाल दिया । स्नेहल अपने मन की बात कहना चाहती थी लेकिन बोल नहीं पाती थी । नायिका इस अजीब सी बन आयी स्थितियों से छुटकारा पाना चाहती थी । अंत में बड़ी मायूस और निराश होकर दुखी होकर स्नेहल वापस लौट जाती है । इस कहानी में लेखिका ने एक निरीह और कोमल लड़की की मासूमियत का चित्रण किया है ।

मनुष्य बड़ा स्वार्थी होता है । स्वार्थ की वजह से ही असमाधानी बन जाता है । इसी विषय को कलात्मक रूप में प्रस्तुत कहानी 'बिहिश्त बनाम मौजीराम की झाडू' में रेखांकित किया है।

मौजीराम सामान्य झाडूवाला है जो अपने काम से काम रखता है । लगन और मेहनत से कमाकर खाता है । वह अभावों में भी संतुष्ट है। वह अमीर लोगों की कॉलनी में झाडू लगाने का काम करता है । उसके मन में उन लोगों के प्रति कभी व्देष, ईर्ष्या, जलन पैदा नहीं हुई है जिन्हें वह बड़ी-बड़ी गाड़ियों में आते-जाते देखता है । लेकिन कथा-नायिका अपनी बिल्डिंग में स्थित सारे लोगों से जलती रहती है । इसी वजह से दुखी रहती है । अन्य लोगों से खुद की स्थितियों की तुलना कर हमेशा खुद के घर में उन चीजों का अभाव महसूस करती है जो वह अपने पड़ोसियों के यहाँ पाती है । जब वह मौजीराम को देखती है तो उसकी प्रसन्नता से भी कुढ़ती है । मौजीराम की दृष्टि जब उस पर पड़ती है तो उसे ऐसा महसूस होता है कि उसकी नजर में उसके प्रति करुणा है । लेखिका ने व्यंग्यात्मक ढ़ंग से इस बात को उजागर किया है कि केवल अमीर होने से कोई समाधानी नहीं होता बल्कि समाधान मानने से मनुष्य प्रसन्न रह सकता है ।

प्रस्तुत कहानी ‘कागज़ की नावें, चाँदी के बाल’ में बचपन की यादों का चित्रण किया है जिसमें अमीर और गरीब के बीच का अंतर, पति-पत्नी में तलाक की वजह से नायिका को खलनेवाली माँ की कमी, बचपन की शरारतें, पिताजी की डाँट आदि बातें समायी हैं । नायिका अपने बचपन में पड़ोस के गरीब लड़के से स्नेह रखती थी । वह उनके घर भी एक बार गयी थी । लेकिन उनके घर खुले आम जाने की उसे इजाजद नहीं थी क्योंकि वह निम्न वर्ग का था । नायिका की माँ न रहने की वजह से वह उस लड़के की माँ का अपने बच्चों के प्रति प्रेम को अभिभूत होकर देखती है, उनकी माँ उसके प्रति भी स्नेह रखती है जिसकी वजह से वह उनके घर जाना चाहती है । लेकिन पिता से डाँट खाने के उपरांत वहाँ जाने की वह हिम्मत नहीं जुटाती। शादी के बाद एक दिन बारीश होती देख उसे अपना बचपन याद आता है जहाँ पिताजी के विरोध के कारण वह दोनों किस प्रकार छुपकर खेला करते थे । इन्हीं स्मृतियों में वह डूब जाती है ।

'एक लॉन की जबानी' यह अर्ध्द अंडाकार फैले हुए लॉन की कहानी है जिसके तीनों तरफ एयरकंडीशनरों और 'रूफ गार्डनों' से लदीफँदी बिल्डिंगें और चौथी तरफ स्वीमिंग पूल है । आज के युग में पूरे वातावरण के साथ-साथ मनुष्य का स्वभाव, रहन-सहन, आदतें, पहनावा सबकुछ बदल रहा है । इसलिए पहले जमाने में इन सारी बातों में जो सहजता और सरलता थी वह नष्ट हो गयी है । बचपन से ही अमीरी और गरीबी की स्थितियाँ मनुष्य को किस प्रकार प्रभावित करती हैं यह इस कहानी में लॉन की जबानी बताया है । साथ ही आयाओं व्दारा अपने बच्चे और साहबों के बच्चों के साथ किया जानेवाला भेदभाव भी इस कहानी में उभरकर आया है ।

पुरुष प्रधान समाज में नारी की हमेशा उपेक्षा होती आयी है । चाहे वह घर सँभालते हुए नौकरी करनेवाली हो या घर के अंदर रहकर घर सँभालनेवाली हो । 'सीखचों के आर-पार' कहानी में नौकरी करनेवाली को लगता है कि घर पर रहकर गृहस्थी सँभालनेवाली का जीवन उन सारी उपेक्षाओं से मुक्त है जो उसे बस में, ऑफिस में पुरुषों के बीच रहकर सहनी पड़ती है और गृहिणी नारी को लगता है कि नौकरी करनेवाली महिला बहुत स्वतंत्र होती है। अंत में लेखिका इस निर्णय पर पहुँचती है कि इस दुनिया में कोई भी मुक्त नहीं है, न पुरुष और न ही नारी ।

भारतीय संस्कृति में त्योहार एवं उत्सवों का बहुत महत्व होता है । यह आनंद व्यक्त करने के पर्व होते हैं । आपसी मतभेदों को मिटाकर मिलजुलकर खुशियाँ बाँटने के मौके हैं, जिससे जीवन प्रफुल्लित होता है । दिपावली के दीये तो अंधकार को मिटाकर प्रकाश से आलोकित करते हैं । आज के युग में यही दीप मनुष्य के जीवन में स्वार्थ रूपी अंधकार को दूर करने में कितने असफल हो रहे हैं यह इस कहानी के माध्यम से पता चलता है । अमीर लोग उत्सवों को केवल कीमती उपहारों से आँकने लगे हैं, जिसकी वजह से वे न मिलने पर केवल निराशा ही मिलती है । गरीब लोगों के पास कुछ न होने के बावजूद जो कुछ है, उसी में वे

सुख और आनंद पाते हैं । 'उत्सव' कहानी में दो परिवारों की तुलना की है जिसमें उच्च वर्ग वाला परिवार दीपावली के अवसर पर निश्चित लोगों व्दारा दिए जानेवाले तोहफों की राह देखता है और मौल्यवान तोहफा न मिलने पर खुशी का पर्व दुख में गुजारता है । वहीं दूसरी ओर काम कर गुजारा करने वाला परिवार इस पर्व को धुमधाम से मनाकर आनंदित रहता है ।

परिवार में एक-दूसरे के प्रति प्रेम होना बहुत जरूरी होता है । एक-दूसरे का सुख-दुख बाँटना, एक-दूसरे को समझना, किसी भी विषय पर आपस में बोलना, समस्याओं को मिलकर सुलझाना आदि बातें नहीं होती वहाँ जीवन नीरस बन जाता है । केवल अमीरी से मनुष्य सुखी नहीं बन सकता । उपर्युक्त चीजों के अभाव में वह लाचार होकर जीवन बिताने लगता है । इतना ही नहीं, वह दूसरों जैसा सरल और सहज जीवन जीना चाहता है लेकिन जी नहीं पाता । 'चोर दरवाजे' इस कहानी में परिवार में खुलकर संवाद न होने की वजह से पति और पत्नी एक-दूसरे की भावनाओं को समझ नहीं पाते और एक-दूसरे के साथ रहने पर भी दुखी और अकेले होते हैं । वे अपने काम में व्यस्त रहते हैं ।

मनुष्य को गरीबी की वजह से पेट की आग मिटाने के लिए अनेक मुसीबतों को झेलना पड़ता है । इसी से अनेक समस्याएँ पैदा होती हैं उन्हीं में से है बालमजदूरी की समस्या । अनाथ बच्चों के पास इससे बढ़कर उपाय कौन-सा होगा ? 'अंतरंग' इस कहानी में ऐसी ही स्थितियों की शिकार बनी लड़की का वर्णन है । इसमें दिखाया गया है कि सभ्य कहलानेवाले लोग किस प्रकार एक असहाय लड़की का फायदा उठाते हैं और ऐसा महसूस कराते हैं कि वे कितने अहसानमंद है।

प्रस्तुत कहानी 'उजास' में असफल प्रेम से मारिया का संवेदनहीन होना, साथ ही रूटीन की एकरसता से ऊबना और दंगों के परिणामों का वर्णन है । एक छोटी सी बच्ची की कोमलता के स्पर्श से संवेदनहीन व्यक्ति में आया हुआ बदलाव और जीवन में आयी हुई उजास का

रेखांकन हुआ है । कहानी में असफल प्रेम की वजह से मारिया कुंठित होकर अपने माता-पिता से नाराज रहती है । वह अस्पताल में नर्स है । आम व्यक्ति के जीवन में आनेवाले छोटे-छोटे खुशी के मौके मारिया को बेकार लगते हैं । उसका जीवन नीरस बन गया है । दंगों के शिकार कई लोग जब अस्पताल में भरती हो जाते हैं तो उनसे उठनेवाली कराहों से मारिया चिढ़ती है। उसी दंगों की शिकार छोटी लड़की को सँभालते-सँभालते मारिया उसपर गुस्से से चिल्लाती है जिससे वह लड़की उसे कसकर पकड़ती है जिससे संवेदनाओं का दबा हुआ स्त्रोत दोनों ओर से बहने लगता है ।

सूर्यबाला पारंपारिक जीवन मूल्यों को मानने वाली नारी है । उनका मानना है कि जीवन की कुछ बहुत जरूरी चीजों को हमने पूरी तरह गैरजरूरी बना दिया है । इसलिए नहीं कि वे सचमुच खारिज कर देने योग्य हैं इसलिए कि उनसे हमारे स्व को, स्वार्थ को आँच आती है। प्रस्तुत कहानी 'कात्यायनी संवाद' में कात्यायनी स्वेच्छा से पिछले अठारह सालों से अपने अपाहिज पति की निरंतर सेवा करती है । वह सोचती है कि उसकी प्रतिभा की वजह से

उसके पति को जीवन में प्रताड़ना सहनी पड़ी है और आज उसी की वजह से उसकी यह स्थिति है । ढाई दिन तक रहने आयी हुई उसकी दोस्त मेधा कात्या को कहती है कि इस शोषण से मुक्ति पाओ लेकिन कात्या इसे शोषण मानने के लिए तैयार ही नहीं होती । वह स्वेच्छा से पति की सेवा करती रहती है । संक्षेप में जीवन मूल्यों का जतन इसी प्रकार किया जाता है यह दिखाना ही लेखिका का उद्देश्य रहा है।

आज की दौड़ भरी जिंदगी में अपना करियर और परिवार सँभालते हुए जीना मुश्किल हो रहा है । पुरुषों के साथ-साथ महिलाएँ भी नौकरी करती हैं । इस वजह से घर में बच्चे एवं बुजुर्ग जिस तरह का अपनापन, प्यार, विश्वास उन लोगों से चाहते हैं वह उन्हें नहीं मिल पाता और इससे अनेक समस्याएँ उभरती हैं । प्रस्तुत कहानी 'माय नेम इश ताता' में नीना और शौनक अपनी नौकरियों की वजह से अपनी बच्ची सुजाता को समय नहीं दे पाते इस

वजह से सुजाता केवल आया के पास ही रहती है जिसके प्रति उसके मन में भय, अविश्वास, गुस्सा है । आया के छोड़कर जाने के उपरांत उसकी दादी को गाँव से लाया जाता है जो बच्ची को अच्छी तरह समझती है और उसके साथ अपनेपन और दोस्ती का नाता जोड़ देती है ।

२.२.१.८ मानुष गंध (२००३)

मानुष गंध यह सूर्यबाला का सन् २००३ में प्रकाशित कहानी-संग्रह है । इसमें कुल चौदह कहानियाँ हैं । जो इस प्रकार हैं -

आज भारत में बेरोजगारी की समस्या बढ़ती जा रही है । उच्च शिक्षित लोगों को भी नौकरियाँ मिलना मुश्किल हो रहा है । इसी बात को 'मानुष गंध' इस कहानी में व्यक्त किया है । भारतीय युवक जब विदेशों में जाकर उच्च शिक्षा पाकर वापस आते हैं तो उनके लिए अपने देश में उनकी शिक्षा के अनुकूल नौकरियाँ उपलब्ध नहीं होती । जिसकी वजह से उन्हें मजबूरन विदेशों में जाना पड़ता है । प्रस्तुत कहानी में वैभव पेडियाट्री ब्रांड में स्पेशलाइजेशन कर अमेरिका से भारत लौटा था । उसे लगा था कि उसकी उच्च शिक्षा की वजह से उसे आसानी से नौकरी मिलेगी लेकिन बहुत प्रयास करने के बावजूद भी उसे अपने देश में नौकरी नहीं मिलती और वह बड़े खेद से विदेश लौटता है । शिक्षित भारतीय विदेश में बसने पर हम उनपर अप्रतिबध्दता का लेबल तो लगा लेते हैं लेकिन किन-किन छलनाओं से उनका साक्षात्कार होता है जो उन्हें ऐसा करने पर मजबूर करती हैं यह इस कहानी से उजागर होता है । मनुष्यता की गंध उन्हें भारत में न मिलकर विदेशों में मिलती है जिसकी वजह से वे विदेश चले जाते हैं ।

सूर्यबाला की 'शहर की सबसे दर्दनाक खबर' यह व्यंग्यात्मक कहानी है जिसमें सांप्रदायिक विव्देष पर करारा व्यंग्य किया गया है । चंद्रा टावरवाले शहर में दंगे की खबर सुनकर कमाल साहब के प्रति चिंतित हो उठते हैं । कमाल साहब जो इस टावर के सबसे जिंदादिल

इन्सान थे, सुरक्षा के नाम पर दी गयी हिदायतों एवं निर्देशों के दबाव का अनुभव करते हैं । उनके नाम बदलकर उनकी पहचान को बदलने की कोशिशें होती हैं। उसमें अपने पड़ोसियों से मिलनेवाली हार्दिकताओं के भीतर उन अलगावों की गूँज भी स्पष्ट होती है जो कमाल साहब को उनसे काटकर अकेला करती है । और वे रातोंरात उस टावर को छोड़ चले जाते हैं । डॉ. शशि मिश्रा के अनुसार "सीमेंट- काँक्रीट की इमारतों में रहते-रहते लोग स्वयं काँक्रीट बन चुके हैं । हँसने-रोने जैसी सहज क्रियाएँ इनके लिए आदिम अभिव्यक्ति है । और मर्द मानुस की मर्दांगी इनकी नजरों में बेशर्मी है।"[१७]

सूर्यबाला नारियों की स्वभावगत विशेषताओं का चित्रण करने में सिध्दहस्त है । 'तिलिस्म' में अपनी संतानों के प्रति माँ के वात्सल्य का वर्णन मिलता है । काफी लंबे समय बाद अपने घर आयी बेटी के प्रति माँ की ममता उमड़ आती है । बेटी के साथ उसकी पाच माह की छोटी सी बच्ची भी है । माँ अपनी बेटी और बेटी अपनी छोटी बच्ची की फिकर में ही लगी रहती है । माँ अपनी बेटी के व्यवहार से क्रोधित होती है । उसे लगता है कि उसे अपनी माँ की भी पड़ी नहीं है और खुद की भी । केवल अपनी बेटी के खयालों में खोयी है । वह बेटी से पूछती है - "यह सब बड़ी होकर कभी समझ पाएगी ये छुटंकी !"[१८] इस बात पर बेटी का कहना कि "मेरे लिए न सही अपनी बच्ची के लिए तो करेगी - जैसे तुम...."[१९] इस ओर संकेत करता है कि अपनी माँ से ही तो सीखा है उसने अपनी बेटी का खयाल रखना ! इस तरह से दोनों महिलाओं का अपनी-अपनी बेटियों के प्रति प्रेम, वात्सल्य, ममता, सद्भाव पाठक को भावविभोर कर देते हैं ।

आज शहरीकरण बढ़ता जा रहा है । शहरों में थोड़ी भी जगह नहीं बची है जहाँ शांति से बैठा जाए या छोटे बच्चों को खेलने के लिए जगह मिल सके । शहरीकरण की वजह से लोगों के रहन-सहन में भी भारी बदलाव आ रहा है । उन्मुक्त रूप से हँसना, बतियाना, रोना, खेलना भी नहीं हो पाता । लोग अपने में ही सिमटकर रह जाते हैं । प्रस्तुत कहानी

'इस धरती के लिए' में इसी बात को बड़े कलात्मक ढ़ंग से सूर्यबाला ने उभारा है । एक लॉन के माध्यम से खाली जमीन पर विकास के नाम पर किस प्रकार कॉंक्रिट की इमारतें खड़ी होती जा रही हैं इसका वर्णन किया है । डॉ. नगमा जावेद मलिक के अनुसार "युग की यांत्रिकता ने आदमी-आदमी के बीच लगाव और प्यार की गरमाहट को सोख लिया है । बनावटीपन हमें जीवन के सहज आल्हाद और आनंद से वंचित किए दे रहा है । 'इस धरती के लिए' कहानी इसी दर्द को 'लॉन' की जबानी व्यंजित करती है ।"[२०] इस कहानी की विशेषता यह है कि एक लॉन अपने सुखद अनुभवों की स्मृति में आनेवाले परिवर्तन से दुखी हो अपनी व्यथा व्यक्त करता है ।

सूर्यबाला की 'दादी और रिमोट' यह कहानी मिडिया के दुष्प्रभावों को बड़े सशक्त रूप से व्यक्त करती है । दादी के चरित्र के माध्यम से आधुनिक युग में बढ़ती संवेदनहीनता और उसमें मिडिया के योगदान को बड़े प्रभावी ढंग से पाठक के सामने रखा है । गाँव में सभी लोगों के सुख-दुख में शामिल हेने वाली दादी जब शहर में रहने लगती है तो अकेलेपन की शिकार होती है । उसे दूर करने के लिए जब उसके कमरे में टी. वी. रखा जाता है तो संवेदनशील दादी टी. वी. में देखे खून खराबे को वास्तविकता मानने लगती है और दुखी होती है । वह हर दिन इस प्रकार के प्रोग्राम देखने की आदी हो जाती है । जब यथार्थ रूप में उनके इलाके में हिंसा होती है तो वह उसे अर्थहीन लगती है । जो दादी टी. वी. पर होती हिंसा को देखकर भी बड़ी व्याकुल होती थी वही दादी अपने पड़ोस में होनेवाली हिंसा की बात सुनकर निर्विकार रूप से अपने काम करने लगती है । आज टी. वी. समाज में एक प्रभावी माध्यम बन रहा है । उसके अच्छे परिणामों के साथ-साथ बूरे परिणाम भी समाज पर हो रहे हैं । इस कहानी के माध्यम से लेखिका मिडिया के प्रभाव को दिखाते हुए मानवीय संवेदना को जगाती है ।

प्रेम, जीवन का एक अंग है । बिना प्यार के जीवन रूखा-सूखा बन जाता है । सूर्यबाला की 'क्रॉसिंग' इस कहानी में यह प्रेम अनोखे रूप में उभर आया है । कथा-नायक अपनी पत्नी रोहिणी से बहुत प्यार करता है। जब वह बिमार पड़ती है तो उसकी सेवा भी करता है । पत्नी की सेवा और ऑफिस के काम से उसके जीवन में एकरसता आती है । इससे रोहिणी भी उदास होती है । वह निरंतर अपने पति को खुश देखना चाहती है । ऐसे में एक दिन नायक को क्रॉसिंग सिग्नल के लिए रूके हुए स्टॉप पर एक सुंदर लड़की नजर आती है । उस लड़की की सुंदरता उसके मन में यौवन जगाती है । उसमें भारी परिवर्तन आता है । अब उस स्टॉप पर सिग्नल के लिए रूकना और लड़की के सौंदर्य को निहारना उसका रूटीन बन जाता है । कुछ दिनों उपरांत वह लड़की उस स्टॉप पर दिखायी नहीं देती इस बात से नायक नाराज होता है । लेकिन सच बात यह थी कि उस अधेड़ उम्र में उस स्टॉपवाली युवती ने उसे फिर से यौवन प्रदान किया था । केवल उसे ही नहीं बल्कि उसकी पत्नी को भी क्योंकि दोनों नये सिरे से अपनी जिंदगी जीने लगे थे । प्यार का अहसास जिंदगी में किस प्रकार उत्साह भर देता है यह इस कहानी के माध्यम से अनूठे ढंग से व्यक्त हुआ है । भारतीय संस्कृति में संस्कारों का बड़ा महत्व है । बचपन में किए गए संस्कार ही मनुष्य को सही या गलत मार्ग पर ले जाते हैं । वास्तव में मनुष्य एक स्वार्थी प्राणी है । यही स्वार्थ उससे गलत काम भी करवाता है। ऐसे में सच्चे और ईमानदार बनकर जीवन बितानेवाले लोग बहुत कम ही मिलते हैं ।

'पूर्णाहुति' कहानी में शिक्षा से परिवर्तन आएगा इस बात पर विश्वास रखनेवाला कथा-नायक अपनी बेटियों को संस्कारशील बनाता है । बहुत ही ईमानदारी से अपना जीवन जीता है । बेटी की शादी के समय जब दहेज की समस्या खड़ी होती है, तो उसका अपने उसुलों पर से विश्वास उड़ने लगता है । शिक्षा और संस्कार ढोंग नजर आते हैं । अपनी बेटी की अवस्था को देखकर अपने उस यज्ञ में वह अपनी बेटी की पूर्णाहुति नहीं देना चाहता । संस्कारशील

बेटी अपने पिता को टूटने नहीं देती । लड़के के मामा व्दारा पूरा मामला ठीक करने के बाद भी वह अपना निर्णय सुनाते हुए कहती है कि वे बिना किसी के दबाव के मुझे विदा कराने आएँगे तब तक हम बेशक प्रतीक्षा करेंगे उनकी ।

आज के जमाने में जहाँ संस्कार अपना महत्व खो रहे हैं ऐसे समय में सूर्यबाला की यह कहानी अपने आप में बड़ा महत्व रखती है ।

'जश्न' इस कहानी में सूर्यबाला ने वृध्दों की व्यथा को बहुत ही सुंदर ढ़ंग से उभारा है । कहानी में चित्रित दादा-दादी की वंश बेला बहुत फैली है । अपनी संतानों को देखकर वे खुश होते हैं । उन सभी के बीच बने रहने की इच्छा रखते हैं । ऐसे में एक दिन परिवार के सभी लोग एकत्रित होकर जश्न मनाते हैं । उनका पोता अपने नए जन्मे बच्चे के हाथों अपने परदादा और दादी को तोहफे के रूप में सोने की चमचमाती सीढ़ी देता है और उसका मकसद बताते हुए कहता है -"जब वंशबेल सकुशल इतनी लंबी फैल जाए कि बूढ़ा-बूढ़ी की जोड़ी अपनी आँखों से पड़पोते का आगमन भी देख ले तो उन्हें नए जन्मे जातक की ओर से यह सौगात कि आप लोग अब सोने की सीढ़ी लगाकर स्वर्गारोहण करेंगे । आपके स्वर्ग जाने के लिए मामूली नहीं, सोने की सीढ़ी, समूचे कुटुंब की ओर से ..."[२१]

बूढ़ों की मृत्यु की कामना के लिए संपूर्ण परिवारवालों व्दारा जश्न की कल्पना ही कितनी भयावह और घिनौनी लगती है । लेकिन आज परिवारों में वृध्दों का महत्व घटता जा रहा है इस सच को लेखिका ने इस कहानी के माध्यम से हमारे सामने रखा है ।

सूर्यबाला ने प्रस्तुत कहानी 'सजायाफ्ता' में एक अलक्षित विषय को चुना है । इसमें एक सामाजिक समस्या का उद्‌घाटन किया है जिसमें वैवाहिक संबंधों के बाद भी परिवार में सामाजिक और आर्थिक भेद मिट नहीं पाते, बल्कि अनेक संदर्भों में वे ही मानसिक यातना का कारण बनते हैं । निम्न-मध्यवर्गीय शालिनी की शादी किसी अपरिहार्य कारण से उच्च वर्ग के लड़के से होती है । घरवालों की नजर में बनी रहने की जी तोड़ कोशिश में अपने

मैकेवालों से भी वह खुलकर व्यवहार नहीं कर पाती । इसी के परिणामस्वरूप घुटती रहती है। आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में अंतर होने की वजह से शालिनी सब साधन सुविधाओं से परिपूर्ण होने के बावजूद स्थितियों से जूझती रहती है । यह कहानी सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियों के मानवीय संबंधों पर पड़े प्रभाव को दर्शाती है ।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि शालिनी की स्थिति के लिए वह खुद जिम्मेदार है । वह चाहती तो दिखावेपन को त्यागकर अपने घरवाले एवं मैकेवालों के सामने स्थितियों को स्वीकारते हुए सहजता से पेश आ सकती थी । आज के मध्यवर्गीय दिखावेपन पर यह करारी चोट है ।

बचपन की यादें खट्टी-मीठी होती हैं । जीवन में हम उन सारी घटनाओं को संजोए रखते हैं जो हमारे मन को छू जाती हैं । 'क्या मालूम' कहानी में कथा-नायिका एक 'अच्छी लड़की' बनने के उद्देश्य से अपनी पिछली गली में स्थित किसी एक लड़के के प्रति कोमल भावनाओं के मन में रहते हुए भी उससे नहीं मिलती है और न ही उससे बातें करती है । बुढ़ापे में अपने मैके का घर बेचने के लिए गयी हुई कथा-नायिका अपने बचपन की सुखद अनुभूतियों को याद करती हुई अतीत में खो जाती है । वर्तमान समय में एक भरा पूरा परिवार उसके साथ रहने के बावजूद उसे उस लड़के की याद आती है जो उसके अनुसार अपने बचपन में 'अच्छा लड़का' बनने की कोशिश कर रहा था ।

अंत में लेखिका इस बात की ओर संकेत करती है कि कहीं न कहीं वह लड़का ही उसकी हवेली खरीदने के लिए तैयार हुआ होगा जिसने उसकी कीमत अठारह लाख बताने पर बारगेन भी नहीं किया । हम यह अंदाजा लगा सकते हैं कि जिस तरह कथा-नायिका के मन में उस लड़के की छवि बस गयी थी उसी तरह उस लड़के के मन में भी कथा-नायिका से संबंधित कोमल स्मृतियाँ जीवित थीं । सूर्यबाला ने बड़ी कुशलता से इस प्रकार के अनाम मानवीय संबंधों को इस कहानी का विषय बनाया है ।

'मातम' यह सूर्यबाला की अनूठी कहानी है, जो लोगों की मानसिकता को उभारती है । 'गोदान' में होरी की मौत पर पं. नोखेराम अपने स्वार्थ को नहीं छोड़ते वैसे ही लोग आज के समाज में भी मौजूद हैं । जीते जी जिस मनुष्य के पास कोई नहीं जाता, उसकी मौत के उपरांत उसके घर पूरा जमघट बना रहता है । उसकी पत्नी, जो उसके पीछे अकेली रह गयी है, उसके प्रति पूरी तरह से हमदर्दी जताकर, दया दिखाकर मनचाही बातें करते रहते हैं । उसकी मन की बातें समझने की कोशिश भी नहीं करते । वह अकेली होने की वजह से उसकी स्थिति का पूरा फायदा उठाना चाहते हैं । मौत के उपरांत किए जानेवाले दान-धर्म की सूची भी केवल शोहरत बढ़ाने की दृष्टि से की जाती है । खुद के स्वार्थ को पूरा करने के लिए ब्रह्मभोज के लिए सुस्वादु व्यंजनों की सूची बनायी जाती है । मृत व्यक्ति के प्रति तो किसी को दुख है ही नहीं यह देखकर उसकी पत्नी इन सभी लोगों से उत्पन्न घुटन से छुटकारा पाने के उद्देश्य से पिछवाड़े जाती है और देखती है कि उसके घर का नौकर मुंडू भी वहाँ है जो उसके पति को याद कर रहा है । उसने पूरी ईमानदारी से उसके पति की सेवा की थी और उनके घर में दो नौकरों की जरूरत न होने की वजह से मुंडू को निकालने की बात हो रही थी ।

आधुनिक युग में मानव के प्रति संवेदनाएँ मरती जा रही हैं । रीतियाँ और रूढ़ियाँ केवल दिखावा बनने लगी हैं । ऐसे में मृत्यु के उपरांत निभाई जाने वाली रूढ़ियों पर लेखिका ने व्यंग्य किया है । मातम मनाने आए हुए लोगों की प्रवृत्ति पर लेखिका ने प्रहार किया है ।

पारिवारिक समस्याओं के चित्रण में सूर्यबाला सिध्दहस्थ है । 'चिड़िया जैसी माँ' में कथा-नायक का मानना है कि जिस प्रकार पेड़-पौधे, कीट-पतंग और पशु-पक्षी अपने शिशु-शावकों को दाना-चुग्गा दे, उन्हें पंखों पे सहेजकर उड़ा देते हैं और विमोही हो जाते हैं, वैसे ही मानवी माँ को भी होना चाहिए । बड़े होते बच्चों की अपनी कुछ महत्वाकांक्षाएँ होती हैं

जिनका पूरा न होने से उन्हें घुटन महसूस होती है और पारिवारिक संबंधों में दरारें आने लगती हैं ।

प्रस्तुत कहानी में एक बेटे व्दारा अपनी माँ को यही बात समझाने की कोशिश हुई है कि बहु कभी बेटी नहीं बन सकती और सास माँ । इन रिश्तों का महत्व अपनी जगह पर ही बना रहने में है । इसलिए सास को कभी अपनी बहु को बेटी समझने की गलती नहीं करनी चाहिए । जब एक लड़की शादी कर किसी घर में जाती है तब वह उस घर की बहु होने के साथ-साथ एक पत्नी, एक लड़की, एक परिपक्व व्यक्ति और एक माँ की बेटी भी होती है । उसकी अपनी रुचि, अपने शौक, अपनी इच्छा, अपनी स्वाधीनता भी उसके जीवन में महत्व रखती है । इसलिए जब उसकी सास माँ की तरह उसका पूरा खयाल रखने की कोशिश करती है तो उसे वह उसका अपमान प्रतित हो सकता है । इसी बात को कथा-नायक अपनी भोली-भाली माँ को समझाने की कोशिश करते हुए कहता है कि माँ तुम चिड़िया जैसी बन जाओ जिसे बड़े हुए बच्चों से मोह नहीं रहता। इस कहानी में सूर्यबाला ने रिश्तों को अपने स्थान पर बनाए रखने के महत्व को समझाया है । इस कहानी की कोमलता मन को छू जाती है ।

सूर्यबाला की 'भुक्खड़ की औलाद' यह व्यंग्यात्मक कहानी है । यह आर्थिक स्थिति से विपन्न व्यक्ति की कहानी है । सुभाष और उसकी पत्नी गरीबी से पीड़ित बैजनाथ को जब काम के उद्‌देश्य से बंबई लाते हैं तो वह ईमानदारी से अपना काम करता है । पैसे कमाने के लालच में कई बार वह अपने गाँव जाने से रह जाता है लेकिन जब उनके गाँव में बाढ़ आती है तब वह अपने घरवालों से मिलने तुरंत चला जाता है । बाढ़ में उसका सब कुछ बह जाता है । उनकी भैंस को बचाने की कोशिश में उसकी पत्नी भी बह जाती है । कुछ दिनों उपरांत उसकी अपाहिज पत्नी तो वापस आती है लेकिन भैस बह जाती है । बैजनाथ के लिए

भैंस का बचना ज्यादा जरूरी था जो उनकी आर्थिक स्थिति का आधार थी । आर्थिक दुर्दशा से आयी पशुता का चित्रण इस कहानी में किया गया है ।

'और एक सत्यकथा' यह सूर्यबाला का आत्मकथांश है । जिसमें उन्होंने अपनी पारिवारिक जीवन की कथा कही है । आर्थिक कठिनाईयों से जूझते हुए किस प्रकार वे साहित्य के क्षेत्र से जुड़ी रही और अपनी शिक्षा-दीक्षा पूरी की आदि का लेखा-जोखा इस आत्मकथांश में उन्होंने दिया है ।

२.२.१.६ पाँच लंबी कहानियाँ (२००८)

प्रस्तुत कहानी-संग्रह प्रभात प्रकाशन व्दारा सन् २००८ में प्रकाशित हुआ । इसमें 'गृहप्रवेश', 'भुक्खड़ की औलद', 'मानसी, 'मटियाला तीतर', 'अनाम लमहों के नाम' कहानियाँ संग्रहित हैं। इनमें से 'मानसी' और 'मटियाला तीतर' कहानियों के अलावा बाकी सभी कहानियाँ अन्य संग्रहों में संग्रहित हैं जिनका परिचय दिया गया है । इसलिए यहाँ पर केवल दो कहानियों का परिचय दिया जा रहा है ।

युवा मन बड़ा चंचल होता है । 'मानसी' कहानी में छुट्टियों में पड़ोस की हवेली में रहने के लिए आनेवाली कंणा के प्रति कथा-नायक का मन आकर्षित था । उसकी हर हरकत का वह बारीकी से निरीक्षण करता रहता था । छुट्टियाँ खतम होने के बाद जब वे वापस जाती थीं तो नायक उसका खालीपन महसूस करता था। इस बीच कंणा की शादी हो जाती है और कालांतर में नायक की भी । नायक अपने परिवारजनों के साथ सुखी था । वह खगोलशास्त्र का अध्यापक बन गया था । उसके जीवन के गुजरे हुए सालों में वह कंणा को नहीं भूल पाया था । दूसरे सत्रांत में जब वह कक्षा में जाता है तो किरण नाम की नयी लड़की को कक्षा में पाता है जो कंणा की तरह ही दिखती थी । प्रथम सत्रांत में पढ़ाए गए पाठ्यक्रम को पढ़ने के लिए उत्सुक किरण का नायक एवं उसके परिवारवालों से एक रिश्ता सा बन जाता है । एक दिन कंणा जब नायक एवं उनके परिवारजनों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने जाती है

तो नायक की स्मृतियाँ जागृत होती हैं । किरण छोटी होने के बावजूद नायक के प्रति आकर्षित रहती है । यह जब नायक के ध्यान में आता है तो वह उसे समझाने का प्रयास करता है ।

प्रस्तुत कहानी में नायक खुद की ही भावनाओं एवं संवेदनाओं की पुनरावृत्ति किरण में पाता है । जिस प्रकार की भावनाएँ कंणा को लेकर नायक ने सहेजी थीं उसी प्रकार की बेनाम भावनाएँ किरण भी संजोए हुए थी जिन्हें दुखाने का या उन्हें कोई नाम देने का नायक को कोई अधिकार नहीं था । यह अनाम मानवीय संबंधों की कहानी है जो पाठक को आकर्षित करती है ।

बाल-मनोविज्ञान पर लिखी हुई बहुत ही संवेदनशील 'मटियाला तीतर' यह कहानी है । गाँव में रहनेवाले बच्चों को फँसाकर शहर में काम पर लगाए जानेवाले बच्चे की यह कहानी है । देवू को मुंबई घुमाने का लालच दिखाकर मुंबई में एक महिला के घर काम करने के लिए रखा जाता है । गरीब और गँवार देवू उनके घर रहकर धीरे-धीरे काम सीखता है । जब तक देवू काम नहीं करता था तब तक वह महिला देवू को वापस भेजने की बात करती है लेकिन जब वह घर का सारा काम करने लगता है तब वह सोचती है कि ऐसा सस्ता नौकर उसे वापस मिलने वाला नहीं है । वह देवू के मन में वापस उसके गाँव जाने का सपना संजोती है । लेकिन जब देवू को उसकी चाल का पता चलता है वह उस अनजान मुंबई में उस घर से भाग जाता है । उसका भागना पाठक के मन में सहानुभूती जगाता है साथ ही उस महिला के प्रति क्रोध उत्पन्न करता है । इस कहानी का अंत बड़ा मार्मिक ढ़ंग से हुआ है जिसमें लेखिका सोचती है उसने जाते हुए कहा होगा - " मुझे मालूम पड़ गया । नहीं स्वतंत्र करोगी तुम मुझे अब कभी । भरोसा गया तुम पर से । इसलिए स्वयं अपनी मुक्ति का संकल्प लिये, कूदता हूँ विश्व के जीवन समर के इस अथाह महासागर में आज ! ...

सोचना मत, लहरों के थपेड़ों का अभ्यस्त हूँ मैं । अंदाज है मुझे । नहीं था तो सिर्फ तुम्हारे छल का !...”[२२]

२.२.१.१० गौरा गुनवन्ती (२०१०)

‘गौरा गुनवन्ती’ यह कहानी-संग्रह सन् २०१० में भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन से प्रकाशित है । इस संग्रह की बारह कहानियाँ अलग-अलग विषयों पर रची गयी हैं । सूर्यबाला परिवार और समाज के उन प्रश्नों को उठाती हैं जो सामान्य से तो लगते हैं लेकिन बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। इन प्रश्नों को व्याख्यायित करते हुए वह अपने अनुभवों का रचनात्मक उपयोग जरूर करती हैं ।

सूर्यबाला का भारतीय परंपरा एवं संस्कृति में विश्वास रहा है । इसी वजह से बच्चों पर किए जानेवाले संस्कार, लोगों के आशिर्वाद आदि की बात वह ‘गौरा गुनवन्ती’ इस कहानी में करती है । ‘गौरा गुनवंती’ की गौरी अपनी तायी के घर रहने आते ही ताया की मौत होती है । लेकिन तायी बहुत दयालू होने की वजह से ऐसे अंधविश्वासों को महत्व नहीं देती । गौरी जब अपनी माँ के पास जाना नहीं चाहती तब तक ताई उसे पनाह देती है । माँ की मौत के उपरांत वह अपनी ताई और भैया पर बोझ नहीं बनना चाहती । ताई व्दारा कही गयी हर बात का पालन करती है और ताई की सेवा में लगी रहती है । ताई उसे ढेर सारे आशिर्वाद देती रहती है । बड़ी होने पर शायद ताई की ही दुआओं से और संस्कारों के कारण उसकी शादी अमीर घराने में तय होती है । आज की बाजारीकरण की दुनिया में जहाँ केवल पैसों को महत्व दिया जा रहा है, वहाँ गुणों की भी कदर की जाती है, यही लेखिका ने स्पष्ट किया है ।

प्रस्तुत कहानी ‘कपड़े’ में बालमजदूरी की समस्या को लिया गया है । बालमजदूरी का प्रमुख कारण है गरीबी। गरीब लोगों पर आसानी से विश्वास नहीं किया जा सकता । उन्हें समाज में हर समय संदेह की नजरों से ही देखा जाता है । मेहनत कर पैसे कमानेवाले बच्चे भी

इससे अछूते नहीं रह पाते । उन्हें अपमान भरा व्यवहार समाज से मिलता है । उसी को सहते हुए वे जीवन बीताते हैं ।

प्रस्तुत कहानी में चंदन गंदे कपड़े पहनकर काम पर जाता है । उसे देखकर उसकी मालकिन दयावश उसके लिए कपड़े सिलवाती है । उसे वे देने के उपरांत पति और पत्नी में कपड़ों को लेकर काफी बहस होती है । मालकिन देखती है कि वह उसे दिए हुए नए कपड़े ही पहनकर रोज आया करता है । उसे उस पर गुस्सा आता है । एक दिन पति की फैक्ट्री के गोदाम से बोरियाँ चुराता चंदन का पिता पकड़ा जाता है । 'चोर का बेटा चोर' होता है यह समझकर चंदन को काम से हटाने और दिए हुए कपड़े वापस करने को कहा जाता है । कपड़े वापस करने के उपरांत जब चंदन से पता चलता है कि उसने पहलेवाले कपड़े दर्जी से एक हफ्ते के लिए उधार लिए थे तो मालकिन के पैरों तले की जमीन खिसक जाती है और वह उससे सहृदयता से पेश आती है ।

माता-पिता की महत्वाकांक्षाएँ बच्चों पर जब लादी जातीं हैं तो उनके स्वाभाविक स्वभाव के विकास में अवरोध उत्पन्न होता है । अक्सर माता-पिता अपने बच्चों पर संस्कार करते हैं । जब विशेष परिस्थिति में वह बच्चा अपनी अपेक्षा के अनुरूप व्यवहार नहीं करता तो मन दुखी हो जाता है । ऐसे में कई बार बच्चे भी विद्रोह पर उतर आते हैं । इन्हीं स्थितियों को प्रस्तुत कहानी 'अठारह वर्ष बाद' में सूर्यबाला ने चित्रित किया है । अठारह साल बाद अपने बेटे को खुद से दूर होता पाकर माँ का दिल दहल जाता है । अपने उद्‌दण्ड बेटे को ट्रेन से जाते समय रोते देखकर माँ अवाक् खड़ी होती है । उसे उसकी बचपन से लेकर अब तक की सारी बातें याद आतीं हैं और अपने किए गए बर्ताव पर उसे पछतावा होता है।

युवकों की शादी को लेकर सूर्यबाला ने अनेक कहानियाँ लिखीं हैं । उन्हीं में से 'कौमुदी : एक प्रश्न' यह एक है । कौमुदी के विवाह के लिए अनेक प्रस्ताव आते हैं, वह अपनी माँ की एक ही साड़ी पहनकर क्योंकि उसका रंग उस पर फबता है, हर वर का सामना करती

है और वे लोग उसे नापसंद कर चले जते हैं । इसी सिलसिले से वह तंग आकर अपने प्रेमी से भागकर विवाह करने का फैसला लेती है । अंतर्जातीय विवाह की वजह से घरवाले काफी परेशान होते हैं । लड़की और लड़केवालों से इस विवाह को असहमती मिलने की वजह से उन्हें कोई अपने घर रखकर दुश्मनी मोल लेना नहीं चाहता इसलिए दोनों दूसरी जगह जाकर घर बसाने की बात सोचते हैं ।

दहेज देने के लिए अक्षम पिता का घर आए हुए वर को क्षमता से अधिक दहेज देने के लिए तैयार हो जाना, इसके बावजूद लड़केवालों का विरोध सुनना कौमुदी के लिए असह्य बात थी । वह यह भी देखती है कि अपना रंग काला होने के बावजूद उसका प्रेमी उसे अपनाने को तैयार होता है लेकिन पिताजी उनका विरोध करते हैं । इन स्थितियों में उसके पिता को उसके साथ-साथ और दो बेटियों की भी चिंता है जिनका नंबर कौमुदी के बाद ही लग सकता था । यह बात वे कई बार दुहरा चुके थे । इन सारी स्थितियों से परेशान

कौमुदी जब खुद शादी का निर्णय लेती है तो उसपर आरोप लगाए जाते हैं । यह कोई नहीं देखता कि उसके पीछे कारण क्या थे ।

अपनी नौकरी बचाने के लिए कई बार कई काम हमें मन के खिलाफ भी करने पड़ते हैं । प्रस्तुत कहानी 'नीली थैलीवाला पैराशूट' में कौशल्याबाई की नाती वृंदा बुखार से पीड़ित थी लेकिन इसके बावजूद उसकी माँ और दादी को नौकरी बचाने के लिए काम पर जाना पड़ता है । कौशल्याबाई आया का काम करती थी । तान्या को शाम के वक्त उठाकर दूध पिलाकर पार्क में घुमाकर लाना उसकी जिम्मेदारी थी । मन में वृंदा का खयाल और तान्या की जिदों ने उसे काफी परेशान कर रखा था। तान्या के पास कीमती खिलौना होने के बावजूद वह पार्क जाते समय एक बच्चे को थैली का गुबारे के रूप में इस्तेमाल कर खेलता देख तान्या भी उसे पाने का हठ करती है । इसमें तान्या के मनोविज्ञान का चित्रण भी हुआ है । तान्या

का गुबारा पाने में हार होती है और कौशल्याबाई उसके फ्रॉक पर पड़ी धूल झाड़ती हुई आश्वस्त हो जाती है कि उसे घर जल्दी जाने को मिलेगा ।

आज के युग में पर्व, त्योहार, उत्सव मनाते समय दिखावापन बढ़ रहा है । गाँवों में तो खैर अब तक संस्कृति, परंपराओं का पालन होता है साथ ही जिस भावना से ये त्योहार मनाने चाहिए, उसी भाव से मनाए जाते हैं लेकिन बड़े-बड़े शहरों में उनका दिखावेपन की आड़ में विद्रूपीकरण हो रहा है ।

प्रस्तुत कहानी 'गजानन बनाम गणनायक' में गाँवों में और शहरों में गणेश चतुर्थी कैसे मनायी जाती है, उसमें कितना अंतर है यह व्यंग्यात्मक ढ़ंग से लेखिका ने पाठकों के सामने रखा है। विवाहित भारतीय नारी के लिए उसके पति का सही सलामत होना सबसे बड़े सुख की बात होती है क्योंकि वही उसके जीवन का आधार होता है । प्रस्तुत कहानी 'कब्जा' में एक महिला का पति इतना बीमार और कमजोर है कि वह उसे जिंदा लाश ही नजर आता है और उसका मन काँप उठता है । उससे संबंधित सारी आशाएँ नष्ट होने लगती हैं । रात के समय जब वह उसका चेहरा निहारने से लाईट बंद कर छुटकारा पाती है, तब पति का हाथ उस पर पड़ता है जो उसे काफी वजनदार महसूस होता है । बहुत महीनों बाद उस हाथ के माध्यम से उसे आशा की किरण नजर आती है । यह सूर्यबाला की जीवन में आशावादी स्वर भरनेवाली कहानी है ।

स्वार्थ केंद्रित दुनिया में मानवीयता नष्ट होती जा रही है । अपना फायदा देखना, प्रमोशन पाना आदि बातों के लिए दूसरे को मोहरा बनाना जैसी घटनाएँ आए दिन सुनी जाती हैं । दूसरों के प्राणों की चिंता या दूसरों के प्रति संवेदनशीलता का कहीं नामोनिशान नहीं रहता । ऐसे बहुत सारे लोग होते हैं । इसके साथ-साथ ऐसे भी लोग इस दुनिया में हैं जो ठीक इसके विपरित होते हैं । प्रस्तुत कहानी 'ब्यूटीफुल शॉट' में दोनों मानसिकताओं को लेखिका ने उभारा है । रवि अपने प्रमोशन के लिए कंपनी में किसी भी हालत में दंगों की स्थिति में भी

प्रोडक्शन का काम जारी रखना चाहता है जिसके लिए वह रोशन को मोहरा बनाता है । उसकी पत्नी को ये सारी बातें बिल्कुल पसंद नहीं है लेकिन वह मजबूर होती है । ऐसे ही फसादों के समय एक रात को रोशन पर हमला होता है यह बात रवि को पता चलने पर रवि केवल अपने बारे में ही सोचता है । यहाँ तक कि उसकी मौत पर कंडोलंस देने के लिए अपने बेटे को भेजता है खुद नहीं जाता । इन सारी बातों से उसकी पत्नी बहुत दुखी होती है । बेटे के वापस लौटने पर दोनों वहाँ पर घटित घटनाओं के बारे में जानना चाहते हैं लेकिन दोनों की भावनाएँ अलग थीं । वहाँ पर स्थित पिता और पूत्र की संवेदनाएँ मर चुकी हैं जिसका प्रतीक टी.वी पर दिखाए जानेवाले अमेरिकन फिल्म का ट्रेलर है जिसे उसका बेटा ब्युटिफुल शॉट कहता है ।

वृध्द लोगों की समस्या दिन ब दिन बढ़ती जा रही है । घर में, परिवार में समय काटने के नाम पर उनका शोषण किया जाता है । उनसे वे सारे काम करवाये जाते हैं जिनके लिए

उनके बच्चों के पास समय नहीं होता। बच्चों को सँभालने की जिम्मेदारी और वह भी अपनी तबीयत ठीक न रहने पर, क्या होती है यह युवकों को क्या पता ? उन्हें तो लगता है कि उनके बच्चों को सँभालकर उनके माता-पिता अपना समय काटने के साथ-साथ मजा लुटते हैं । प्रस्तुत कहानी 'मौज' में इसी समस्या को लेखिका ने उभारा है ।

'यह क्या सर जी !' यह मध्यवर्गीय व्यक्ति की कहानी है । बृजनंदन किसी हिंदी भाषा के विकास में लगी संस्था में अस्थायी कर्मचारी है जो नायक को अपने लिए स्थायी नौकरी के लिए कहीं सिफारिश करने को कहता है। नायक एक रचनाकार है जो अपनी सीमाओं से परिचित है । बृजनंदन की मेहनत, सरलता पर वह खुश तो है लेकिन नौकरी दिलाने में वह असक्षम है । इसलिए हर बार उसके नौकरी से संबंधित विषय को टालना चाहता है । बृजनंदन नायक के साहित्य एवं व्याख्यानों से प्रभावित है जिसकी वजह से जब भी वह लेखक

के इलाके में जाता है, लेखक को मिले बगैर नहीं लौटता । उनकी सदिच्छाएँ, आशीर्वादों का वह आकांक्षी है ।

बुढ़ापे की ओर बढ़ रहा बृजनंदन जब उन्हें एक दिन मिलने आता है तो वापस जाते समय अपने बेटे का बायोडाटा थमाकर उसकी नौकरी के लिए सिफारिश करने को कहता है । इस संपूर्ण अनुभव को नायक कहानी का रूप देता है जो बृजनंदन पढ़ता है और पत्र के व्दारा उससे कहता है कि आपने तो मेरे पूत्र की जिंदगी और भविष्य ही दाँव पर लगाया, हमें आशाओं के सहारे तो जीने दीजिए । इसे पढ़कर लेखक को एक झटका सा लगता है क्योंकि वह संवेदनशील होने के बावजूद बृजनंदन की संवेदनाओं को नहीं समझ पाया था ।

महिलाओं का एक ऐसा वर्ग होता है जो चाहता है कि उनका पति उनकी भावनाओं को अपने आप समझकर उनसे अच्छा व्यवहार करें । कभी रूठे, मनाए, झगड़े, हँसे, शिकायत करें आदि । लेकिन जब पति के स्वभाव को वह हर समय संतुलित देखती हैं तो उससे ऊब जाती हैं, विद्रोह करती हुई पायी जाती है । प्रस्तुत कहानी 'एक स्त्री के कारनामे' में एक पत्नी अपने पति के संतुलित व्यवहार से क्रोधित होकर उससे विद्रोह करती है लेकिन परिणामस्वरूप ग्लानी का ही सामना करना पड़ता है । किसी मनुष्य के निजी स्वभाव को हम बदल नहीं सकते यही लेखिका ने इस कहानी के माध्यम से कहा है ।

प्रस्तुत कहानी 'तलाश' में एक महिला को युवावस्था में देखे एक व्यक्ति की तलाश है । वह महिला उसे हासिल भी नहीं करना चाहती बस उसकी तलाश जारी रखना चाहती है । युवा मन को भाया हुआ वह लड़का कहाँ, कैसे जी रहा होगा इसके बारे में वह केवल सोचती रहती है ।

२.२.२ उपन्यास साहित्य

सूर्यबाला ने कहानी साहित्य के साथ-साथ उपन्यासों की भी रचना की है । उन्होंने पाँच उपन्यास रचे हैं जिनका परिचय इस प्रकार है-

२.२.२.१ मेरे संधिपत्र (१९७८)

'मेरे संधिपत्र' यह सूर्यबाला का पहला उपन्यास है । इसका प्रकाशन सन् १९७८ में पराग प्रकाशन से हुआ । यह एक नारी केंद्रित उपन्यास है । प्रस्तुत उपन्यास में परिवार के प्रति एक नारी की प्रतिबद्धता को दिखाया है। शिवा नाम की महिला इसकी प्रमुख पात्र है । वह पारंपारिक भारतीय नारी की प्रतीक है । मेधाव, शिक्षित, स्फूर्तिली शिवा निम्न-मध्यवर्गीय परिवार की अत्यंत संवेदनशील लड़की है । परिस्थितियों की वजह से दो बेटियों वाले धनाढ्य विधूर व्यक्ति से शादी करती है और जीवन भर सौतेली बेटियों और पति के बीच सामंजस्य, सौहार्द भाव बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील रहती है । वह इतनी स्वाभिमानी है कि लोगों के सामने यथाशक्ति यह उजागर नहीं होने देती कि उसका आयु में काफी बड़ा समृद्ध पति, बौद्धिकता और संवेदनशीलता तथा प्रखरता की दृष्टि से उससे हीन है । भारतीय परंपरा, संस्कृति एवं संस्कारों से परिपूर्ण शिवा का चित्रण इस उपन्यास में किया है।

पति के साथ वैचारिक भिन्नता होने के बावजूद भी अपने पति से कोई शिकायत नहीं रखती केवल इसलिए कि उसका पति उसे ईमानदारी से प्यार करता है । अपने इसी पति की मृत्यु के उपरांत जीवन में दूसरे पुरुष को आने नहीं देती जबकि रत्नेश और शिवा के मन में एक-दूसरे के प्रति अपनापा है । बेटियों के व्दारा कई बार समझाने के बावजूद भी संपूर्ण जीवन अकेले बिताने का निर्णय लेकर फिर एक बार जीवन से वह विवेक सम्मत समझौता करती है ।

२.२.२.२ सुबह के इंतजार तक (१९८०)

प्रस्तुत उपन्यास का प्रकाशन सन् १९८० में हुआ । इस उपन्यास में सामाजिक समस्या को लिया है । निम्न-मध्यवर्गीय, सफेदपोश लोग भिन्न सामाजिक मजबूरियों के बीच पिसते है । उपन्यास में अपने छोटे भाई बुलू के अंधकारमय जीवन में सुबह आने तक उसकी बहन 'मानो' जी जान से मेहनत करती है और उसी में खुद को मिटा देती है । आज के जमाने

में दिखावा बढ़ गया है । लोगों के पास होता कुछ नहीं लेकिन दिखावा कर बहुत कुछ होने का भ्रम उत्पन्न करते हैं । इसी के प्रति लेखिका ने मानो के माध्यम से विद्रोह किया है। मानो के अनुसार शान, मर्यादा, इज्जत जैसे शब्द पाखंडी हैं । इन्हीं की वजह से निम्न-मध्यवर्गीय परिवार मेहनत की रोटी भी कमा नहीं पाता । इसलिए वह इस छद्म को त्यागकर अपनी परिस्थिति को स्वीकारती हुई जीवन जीना पसंद करती है ।

वह जब देखती है कि उसके माता-पिता बलात्कार से गर्भवती हुई अपनी इस बेटी को लेकर समाज से अत्यंत डरे हुए हैं और निर्णय लेने में असहाय हैं तो वह अपने छोटे भाई बुलू को लेकर एक रात चुपचाप घर छोड़ देती है । सफेदपोश घर को तिलांजली देकर कोई भी काम करने को तैयार होती है और छोटे मेधावी भाई को डॉक्टरी की शिक्षा तक पहुँचाकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करती है ।

२.२.२.३ यामिनी कथा (१९९१)

यह सूर्यबाला का तीसरा उपन्यास है । सन् १९९१ में प्रकाशित यह उपन्यास नारी प्रधान है । डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर के अनुसार 'यामिनी कथा' में यामिनी के मानसिक भँवर की अथाह गहराई, उसकी गंभीरता, उसमें सम्मिलित गोचर-अगोचर अनगिनत मानसिक संवेदना प्रवाहों का विशद रूपायन, आधुनिक नारी के जटिल तनाव, लगातार सूक्ष्म संवेदनात्मक त्रासदी की कभी खत्म न होनेवाली प्रदीर्घता और इसी बीच किसी तरह संतुलन के लिए सफल-असफल प्रयास करने में अभिव्यक्त जिजीविषा के शक्तिपूर्ण और कलात्मक दर्शन होते हैं।"[२३] यामिनी एक माँ और पत्नी की भूमिकाओं में विभक्त नारी है । वह किसी भी भूमिका में संपूर्ण नहीं है, न ही माँ की और न ही पत्नी की । विश्वास के साथ शादी कर पति प्रेम की आकांक्षी यामिनी पुतुल को जन्म देने के उपरांत विश्वास के प्रेम की पात्र बनती है । लेकिन अपना प्राप्य पाने के पहले ही नियती यामिनी से उसका पति छीन लेती है । उसे कैंसर होता है और उसी में उसकी मौत होती है । दुखी और कंगाल यामिनी के सामने निखिल शादी का

प्रस्ताव रखता है और अपने और बेटे के भविष्य से चिंतीत यामिनी वह स्वीकारती है । यामिनी को शादी के उपरांत किशोर बेटे की माँ के साथ नवोढ़ा की भूमिका भी निभानी पड़ती है । निखिल से उसे चुनचुन पैदा होता है । ऐसी स्थितियों में यामिनी का तीनों पुरुषों के प्रति व्यवहार में असहजता निर्माण होती है । यामिनी बहुत भावुक और संवेदनशील है । उसके इसी स्वभाव की वजह से वह खुद के बारे में न सोचकर हमेशा दूसरों के बारे में ही सोचती रहती है और हर दम दुख और घुटन महसूस करती है । पुतुल अपनी माँ की स्थिति को समझता है और उपन्यास के अंत में अपने पिता की तरह मरीन इंजीनियरींग का चुनाव कर घर से दूर हो जाता है ।

२.२.२.४ अग्निपंखी (१९८२)

प्रस्तुत उपन्यास सन् १९८२ में प्रकाशित हुआ । शिक्षित बेरोजगार युवक के जीवन की यह कथा है 'अग्निपंखी'। इस उपन्यास में नौकरी ढुँढने के लिए महानगर जानेवाले उन युवकों की कथा है जो ना ही गाँव के रह जाते हैं और न ही शहर के हो पाते हैं । आज के शिक्षित युवकों को पारंपारिक पेशा अपनाकर जीना शर्मनाक लगता है । वहीं पर नौकरियाँ पाकर वे अपने जीवन में धन्यता महसूस करते हैं । चाहे वह सामान्य से सामान्य नौकरी ही क्यों न हो । उसी के बलबूते पर गाँववालों की नजर में सम्मान पाने के लिए वे सारी डींगे हाँकते हैं लेकिन वास्तविकता यह होती है कि शहर इन्हें नौकरी की चक्की में पिसता रहता है ।

उपन्यास में कथा-नायक जयशंकर, अर्ध-शिक्षित बेरोजगार युवक है जो अपना किसानी पेशा छोड़कर केवल अपने परिवारजनों और गाँववालों की नजरों में ऊँचा बनने के लिए शहर में जाता है । वहाँ सामान्य मजदूर की नौकरी पाकर अपने जीवन में शहर की सारी चुनौतियों का सामना करते हुए वहाँ बसने की कोशिश करता है । गाँव में परिवारजन समझते हैं कि जयशंकर शहर में ऐशो-आराम की जिंदगी बिता रहा है । खुद जयशंकर भी उन्हें अपने बारे

में कुछ नहीं बताता । इसलिए घरवाले चाहते हैं कि वह अपनी विधवा माँ को भी अपने साथ ले जाए । जयशंकर अपनी माँ को शहर में लाता तो है लेकिन अब तक शहर उसे संवेदनहीन बनाता है । अपनी माँ के प्रति वह अत्यंत क्रूर बन जाता है । पारिवारिक जिम्मेदारियों को ढोता जयशंकर न ही शहर में सही ढंग से बस पाता है और न ही अपने गाँव वापस लौट पाता है । उपन्यास के अंत में उसकी माँ को निमोनिया हो जाता है । विक्षिप्त माँ के लिए डॉक्टर का कहना कि " घाबराने की कोई बात नहीं । दिमाग के मरीजों को जल्दी जान का खतरा नहीं होता"[२४] जयशंकर को आशंकित करता है, जबकि उसे पता है कि माँ की मृत्यु से ही सभी को राहत मिल सकती है क्योंकि उसके लिए विक्षिप्तावस्था में महानगर में माँ को रखने की कल्पना ही भयावह है ।

माँ की मौत की राह देखने के लिए लाचार जयशंकर खुद के व्दारा निर्मित परिस्थितियों का ही शिकार है ऐसा हम कह सकते हैं ।

२.२.२.५ दीक्षांत (२००३)

प्रस्तुत उपन्यास का प्रकाशन सन् १९९२ में 'सारिका' में धारावाहिक के रूप में हुआ था । सन् २००३ में नेशनल पब्लिशिंग हाऊस से पुस्तक के रूप में इसका प्रकाशन हुआ । सूर्यबालाजी के इस उपन्यास में शिक्षक के जीवन की त्रासदी की गाथा है । संस्कारी, विव्दान, परिश्रमी, ईमानदार शिक्षक होने के बावजूद कथा-नायक को स्थायी नौकरी प्राप्त नहीं होती । निम्न मध्यवर्ग में जन्म लेने के बावजूद परिश्रम और लगन से पढ़-लिखकर बड़े हुए और उच्च्व शिक्षा प्राप्त कर शिक्षक बने नायक को अपनी उच्च्व शिक्षा की वजह से ही कई बार नौकरी से हाथ धोना पड़ता है ।

इस उपन्यास में भ्रष्टाचार, गरीबी, मूल्यहीनता, शिक्षा का गिरता स्थर, स्वार्थलिप्सा आदि समस्याओं से भरी दुनिया में एक मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन की त्रासद स्थितियों का चित्रण किया गया है । अपने जीवन-मूल्यों के पतन को देखकर एक मध्यमवर्गीय व्यक्ति कैसे टूटता

है, अपने परिवार को सुखी बनाने के लिए कितना परेशान रहता है, इसका चित्र लेखिका ने उभारा है । उपन्यास का अंत बडा मार्मिक ढ़ंग से हुआ है, जो हमें यह बताता है कि शर्मा सर जैसे अन्य लोग भी जीवन मूल्यों की कद्र करनेवाले आज इस दूनिया में हैं । डॉ. उषा यादवजी के अनुसार "दीक्षांत सूर्यबाला का मार्मिक उपन्यास है जो शर्मा सर जैसे पात्र की जीवन-मूल्यों को बचाए रखने की आकांक्षा के शनैः शनैः विलय होते जाने का चित्रण है । ईमानदारी और संस्कार जिनके रक्त में हैं, उन्हें जीवन की विसंगतियों और विद्रुपता ने तोड़ा। पर जीवन से पलायन की शर्त पर भी वे उन मूल्यों से पलायन को तैयार नहीं हैं, जो उनके संस्कारों ने पाले-पोसे हैं ।"[२५]

संक्षेप में कहा जाए तो सूर्यबाला के उपन्यासों में पारिवारिक जीवन में उभरने वाले प्रश्न, परिस्थितियों के शिकार लोग, जीवन-मूल्य, संवेदनशीलता, संवेदनहीनता, भ्रष्टाचार आदि बातें देखी जा सकती हैं ।

२.२.३ सूर्यबाला का अन्य साहित्य

सूर्यबाला ने उपन्यास एवं कहानियों के अलावा व्यंग्य साहित्य की भी रचना की है । एक श्रेष्ठ व्यंग्यकार के रूप में वे प्रसिद्धि पा चुकी है । अन्य व्यंग्यकारों की तरह समाज, राजनीति तथा अन्य बुराईयों पर उन्होंने व्यंग्य के माध्यम से कड़ा प्रहार किया है । उनकी प्रसिद्ध व्यंग्य रचनाएँ हैं – 'अजगर करें न चाकरी', 'धृतराष्ट्र टाइम्स', 'देश सेवा के अखाड़े में' और 'भगवान ने कहा था' ।

२.२.३.१ धृतराष्ट्र टाइम्स

यह सूर्यबाला का अत्यंत प्रभावशाली व्यंग्य-संकलन है । इसके संबंध में बालेंदु शेखर तिवारी ने लिखा है, "सूर्यबाला के व्यंग्यों में कला और साहित्य, फिल्म और संस्कृति, देश-सेवा और जननेता, पत्रकार और बुद्धिजीवी आदि की व्यापक परिक्रमा के आधार पर हिंदी के व्यंग्य लेखन का एक प्रतिमानक जायका उपलब्ध है ।"[२६]

प्रस्तुत कृति में ३८ व्यंग्य रचनाएँ संकलित हैं जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार है – 'परलोक के ऊपरी माले से', 'एक पुरस्कार यात्रा', 'बड़े बाबू', 'बिलॉक साहब बनाम तैयारी महबूब के आने की', 'अगली सदी का शोधपत्र', 'यह देश और सोनिया गांधी', 'रचनात्मक आयामों से बचते-बचते', 'हाय, मैंने क्यों नहीं लिखा सीरियल ?', 'दो शब्दः डूब मरने की बात पर', 'टेपरिकॉर्डर की गागर में सागर बनाम संस्कृति का बारहमासा', 'भारतीय रेल का फलित ज्योतिष अथवा 'हे गाडी ! तू बोल...', 'मेरी आनेवाली फिल्म की रूपरेखा', बोल री कठपुतली', 'सवाल जामचक्कों की दुरुस्ती का' 'देश सेवा की तालमेल किस्तें,' 'संदर्भ बारतेंदु, हिंडी और बाजी का', 'तुर्मेवाली बस', 'दल निर्माण की पूर्व संध्या पर', 'एक खुराफती सपना', 'हिंदी साहित्य की पुरस्कार परंपरा', 'जागो, मोहन प्यारे !', 'मेरा शहर : कुछ नवनिर्मित दर्शनीय स्थल', सिफर हो गयी राजनीति और सूत उवाच', 'सरौता गीत : एक विश्लेषण', 'समस्या मुख्यमंत्री की', 'हिंदी साहित्य और पति', धृतराष्ट्र टाइम्स से साभार', 'महिला दिवस और फ्रेंच टोस्ट', 'मुबारकें पचासवीं सालगिरह की', 'साहित्य में कार और ड्रायवर का योगदान', 'दास्ताने विलेन', 'आत्मव्यंग्य बनाम हकीकत पचपनवीं मॉडल की', 'थोक के भाव हिंदुस्तान', 'राहत कार्यों की तलाश में', 'रांग से राइट नंबर तक', 'एक व्यंग्य वक्तव्य', अँधेरे में चलती कलम और बूँद-बूँद भरती गागर', 'हिंदी चिंतन और चिंता के आयाम', 'वोट-विधेयक और मेरे मुहल्ले की माताएँ' । इन रचनाओं के अंतर्गत सूर्यबालाजी ने पति-पत्नी का रिश्ता, स्त्री अस्मिता, साहित्य पुरस्कार विजेता, रचनाकार, आज का साहित्य, पुरस्कार देनेवाली संस्थाएँ, राजनीतिक क्षेत्रों के अनेक विभागों में काम करनेवाले कर्मचारी एवं उनके नेता, राजनीति, सोनिया गांधी की राजसत्ता, फिल्म इंडस्ट्री, जनता की मानसिकता आदि विषयों पर व्यंग्य की धार से कड़ा प्रहार किया है । इन रचनाओं को पढ़ने से यह महसूस होता है कि लेखिका के एक ही तरह के विचार अनेक बार अनेक रचनाओं के माध्यम से व्यक्त हुए हैं ।

२.२.३.२ भगवान ने कहा था

प्रस्तुत व्यंग्य-संग्रह सन् २०१० में 'ग्रंथ अकादमी', नई दिल्ली से प्रकाशित है, जिसमें २३ व्यंग्य रचनाएँ संग्रहित हैं। प्रस्तुत पुस्तक के माध्यम से लेखिका ने विविध क्षेत्रों में आयी विकृतियों को अपने व्यंग्य लेखन के माध्यम से व्यक्त किया है।

इस पुस्तक में जो रचनाएँ संग्रहित हैं वो इस प्रकार हैं- 'भगवान ने कहा था', 'समकालीन लेखक को पत्रोत्तर', पुरस्कार मेले की उत्तर-आधुनिकता', 'जन आकांक्षा का 'टायटल सॉन्ग'', 'मेरे व्यंग्य लिखने के कारण', 'स्त्री-उन्मुक्ति के उपलक्ष्य में', 'कोटा नाम का शहर', 'जड़ों से जुड़ने का सवाल', 'सब्र का अंत ही व्यंग्य की शुरुआत', 'यात्रा एक सम्मेलन की', 'प्रभुजी, तुम डॉलर हम पानी', 'हिंदी साहित्य और पचास के हुए लेखक', 'साहित्य में शालिनता का अर्थ', 'रिटायरनामा', 'साठ के हुए लेखक', 'वाया अमेरिका', 'शर्मिंदगी के आखिरी पायदान से...', 'ससुराल का स्त्री-विमर्श', 'अध्यक्ष विलाप', 'पाँच सितारा लेखिका सम्मेलन', 'एक दंत-कथा', 'कॉलनी में कुत्ता', 'स्त्री-विमर्श का स्वर्ण युग' आदि।

सूर्यबाला के इस विविध-विषयी व्यंग्य-संग्रह में जीवन के अनेक क्षेत्रों की विसंगतियों और विद्रुपताओं पर करारी चोट की गयी है। एक ओर यह व्यंग्य हास्य निर्मिती करता है तो दूसरी ओर सोचने के लिए बाध्य करता है।

२.२.३.३ झगड़ा निपटारक दफ्तर (२०१२)

प्रस्तुत कहानी-संग्रह सन् २०१२ में 'विद्याविहार प्रकाशन', नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। यह बालपयोगी कहानी-संग्रह है, जिसमें १३ कहानियाँ हैं। इनके नाम कुछ इस प्रकार हैं- 'झगड़ा निपटारक दफ्तर', 'शामू जिंदाबाद', 'ये जो मेरे पापा हैं', 'नाक पर चढ़ा गुस्सा', 'मम्मी की खुफियागीरी', मेरे फ्लॉप शो', 'लच्छू महाराज की जय', 'रानो भाट की बहू', 'खुराफातों की वर्कशॉप', 'लाली पॉप', 'हाय-हाय वे चुगलखोरियाँ मेरी', 'मेहनती तोताराम', 'होली पर एक प्रतियोगिता : मम्मियों की' आदि।

इन कहानियों के माध्यम से लेखिका ने नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों की स्थापना की है और छोटे बच्चों को नई दिशा दिखाने का कार्य किया है। छोटे बच्चों में मूल्य पिरोने का प्रयास ये कहानियाँ करतीं हैं ।

२.२.३.४ अलविदा अन्ना (एक स्मृति कथा)(२०१३)

यह एक स्मृति-कथा है जो प्रतिभा प्रतिष्ठान से सन् २०१३ में प्रकाशित हुई है । खुद लेखिका ने इसे अपनी स्मृति-कथा कहा है । उन्होंने कई देशों की यात्राएँ की हैं वहाँ पर आए हुए अनुभवों को प्रस्तुत रचना में संकलित किया है । इसकी विशेषता यह है कि इसके कुछ भाग डायरी शैली में लिखे गये हैं । वास्तव में यह एक संस्मरण है जो ग्यारह शीर्षकों में विभाजित है जो इस प्रकार हैं- 'देस में रहेंगे, परदेस में रहेंगे, हम रावरे कहाएँगे...', 'आतंक के साढ़े सात घंटे', 'अलविदा अन्ना', 'वन फिफ्टीन से वन फिफ्टी तक', 'स्त्री सबकुछ क्यों नहीं चाह सकती', 'क्या लालसाओं ने हमें अतृप्त और अकेला कर दिया है ?', 'एक घर लिटिल वुमन का', 'हे बॉब ! इज दैट यू...', 'एक छोटी यात्रा : एक नन्हीं सहयात्री', 'त्रिनिनाद : आधी रात के बाद का हादसा', 'त्रिनिनाद की एक शाम हिंदी के नाम' आदि । इन शीर्षकों के अंतर्गत उन्होंने अमेरिका में ठंडी के अनुभव, अपनी पोती अनंदिता उर्फ अन्ना के साथ बिताए क्षण, कोलंबिया विश्वविद्यालय में मिले अनुभव, वहाँ के विद्यार्थियों की समझ, विदेश में अकेलेपन की विभीषिका, विदेश में सामान्य रचनाकार को मिलनेवाला सम्मान, रिश्तों के टूटने; बिखराव से बच्चों के जीवन में आयी त्रासदियाँ, बोस्टन तक की यात्रा के समय छोटी लड़की के साथ बिताया हुआ समय, त्रिनिनाद की यात्रा का अनुभव, वहाँ के भारतीय लोगों का भारत के प्रति लगाव जैसी बातों को लेखिका ने बड़े सुंदर तरीके से पाठक तक पहुँचाया है ।

निष्कर्ष

बहुआयामी व्यक्तित्व की धनी सूर्यबाला के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि वह प्रतिभा संपन्न रचनाकार हैं । साहित्य की अधिकतर विधाओं का लेखन उन्होंने किया है । पारिवारिक दायित्वों को निभाते हुए उनके व्दारा लेखन का कार्य जारी है। उनकी अधिकतर कहानियाँ पारिवारिक संबंधों पर आधारित हैं जो समाज की महत्वपूर्ण इकाई है । सूर्यबाला के व्यक्तित्व और कृतित्व को देखने के बाद यह सत्य उजागर होता है कि उनका साहित्य उनके अनुभवों का लेखाजोखा है । उन्होंने अपनी कई कहानियों की भूमिका में कहानी के उद्भव की बात कही है, जैसे 'थाली भर चाँद' संग्रह में सभी कहानियों की भूमिकाओं में कहानी का उद्भव कैसे हुआ इसका जायजा दिया है । उनकी कहानियों में जो वातावरण निर्मिती हुई है वह उनके घर के आजू-बाजू का ही चित्रण है जहाँ वह रहती थी, यह इस बात से स्पष्ट होता है कि उन्होंने अपने बारे में लिखते हुए अपने घर के वातावरण और उसके आसपास के भौगोलिक प्रारूप को स्पष्ट किया है । इससे ऐसा लगता है कि 'पड़ाव', 'इसके सिवा', 'मानसी', जैसी अनेक कहानियों में इसका वर्णन मिलता है । सूर्यबाला संवेदनशील होने के कारण उनके स्वभाव का प्रभाव उनकी नायिकाओं पर रहा है । अपने गृहिणी रूप को उन्होंने अपनी नायिकाओं पर आरोपित किया है । संक्षेप में उन्होंने अपने जीवन में जो भी देखा, जाना, महसूसा, अनुभव किया वह अपने साहित्य में पिरोया है । अपने अनुभूत सत्य को कभी अपनी कहानियों में, कभी उपन्यासों में, तो कभी व्यंग्य की तीखी धार से पाठक तक पहुँचाने की कोशिश की है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१ डॉ. वृषाली मांद्रेकर(सं) हिन्दी उपन्यास : नारी विमर्श पृ.सं.-१८२

२ डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ (सं) शब्द-शब्द मानुषगंध पृ.सं.-१५

३ डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ (सं) शब्द-शब्द मानुषगंध पृ.सं.-१६

४ डॉ. सूर्यबाला एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम पृ.सं.-६२

५ डॉ. सूर्यबाला एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम पृ.सं.-०६

६ डॉ. सूर्यबाला एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम पृ.सं.-०६

७ डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ (सं) शब्द-शब्द मानुषगंध पृ.सं.-६०

८ डॉ. वसंतकुमार माली सूर्यबालाा के कथा साहित्य में युगबोध पृ.सं.-७०

९ डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ (सं) शब्द-शब्द मानुषगंध पृ.सं.-९२

१० डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ (सं) शब्द-शब्द मानुषगंध पृ.सं.-९४

११ मालती आदवानी लेखिकाओं की नवें दशक की हिंदी कहानियों में पारिवारिक संबंध पृ.सं-२२५

१२ डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ (सं) शब्द-शब्द मानुषगंध पृ.सं.-९७

१३ डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ (सं) शब्द-शब्द मानुषगंध पृ.सं.-१०२

१४ डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ (सं) शब्द-शब्द मानुषगंध पृ.सं.-१००

१५ डॉ. सूर्यबाला साँझवाती पृ.सं.- ५२

१६ डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ (सं) शब्द-शब्द मानुषगंध पृ.सं.-१०७

१७ डॉ. वसंतकुमार माली सूर्यबालाा के कथा साहित्य में युगबोध पृ.सं.-१०३

१८ डॉ. सूर्यबाला मानुष-गंध पृ.सं.-३८

१९ डॉ. सूर्यबाला मानुष-गंध पृ.सं.-३८

२० डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ (सं) शब्द-शब्द मानुषगंध पृ.सं.-१२४

२१ डॉ. सूर्यबाला मानुष-गंध पृ.सं.-८०

२२ डॉ. सूर्यबाला पाँच लंबी कहानियाँ पृ.सं.-११८

२३ डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ (सं) शब्द-शब्द मानुषगंध पृ.सं.-१४७

२४ डॉ. सूर्यबाला अग्निपंखी पृ.सं.-८०

२५ डॉ. उषा यादव हिंदी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना पृ.सं.-१०१

२६ डॉ. वसंतकुमार माली सूर्यबालाा के कथा साहित्य में युगबोध पृ.सं.-१७०

अध्याय-३. सूयबाला की कहानियों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य

मनुष्य कभी अकेला नहीं रह सकता । वह अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए हमेशा दूसरों पर निर्भर रहता है । प्राचीन काल से ही वह अपने विकास के लिए प्रयत्नशील रहा है। अपने विकास के लिए वह दूसरों की मदद लेता रहा है । एक-दूसरे के सहयोग से ही मानव-जीवन संभव है, इसलिए समाज केवल व्यक्तियों का समूह ही नहीं है बल्कि मानवीय संबंधों का ताना-बाना भी है । आधुनिक सामाजिक जीवन बड़ा जटिल रहा है । सूर्यबाला इस समाज की प्रत्यक्षदर्शी रही है । उनकी कहानियों में सामाजिक परिदृश्य किस प्रकार आया है, इसका अध्ययन प्रस्तुत अध्याय में करेंगे ।

३.१ सूर्यबाला की कहानियों में सामाजिक परिदृश्य

प्रथम अध्याय में हमने समाज एवं उसकी अवधारणा की जानकारी प्राप्त की है । सूर्यबाला की कहानियों में समाज को देखने से पहले हम आज के भारतीय समाज को संक्षेप में जानने की कोशिश करेंगे ।

पहले जमाने में भारतीय मान्यता के अनुसार समाज की बुनावट अवयवों के रूप में थी । ब्रह्मा स्वयं समाज का निर्माता है । उसके मुख, भुजा, जंघा और पावों से उत्पन्न क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र - समाज में चार वर्ग थे । जिस प्रकार शरीर के सारे अवयव मिलकर एकत्रित रूप में शरीर का निर्माण करते हैं, उसी प्रकार प्राचीन काल में चारों वर्गों का समूह समाज कहलाता था । कई सालों बाद इन वर्गों की घनिष्ठता टूट गयी और ब्राह्मण वर्ग उच्च और अभिजात वर्ग का अंग बन गया, क्षत्रिय और वैश्य भी अपने-अपने काम करते थे और इन तीनों वर्गों ने शूद्र वर्ग को उपेक्षित रखा । उसे नीच और निकृष्ट माना । समाज एक सक्रिय संगठन है, इसलिए परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण समाज अवयवों के रूप में विद्यमान न रहकर संगठन के रूप में विद्यमान है । एक ही विचार,

जाति, वर्ग, विश्वास और व्यवसाय के लोग संगठित होकर समाज के अवयव बन रहे हैं । प्राचीन काल में भारतीय समाज में वर्ण-व्यवस्था का प्राधान्य था । इसका आधार गुण और कर्म था । इसीलिए ब्राह्मण उच्च वर्ग के अधिकारी थे, क्षत्रिय देश की सेवा के लिए थे, वैश्य व्यापार के लिए, धन अर्जन के लिए और खेती करने के लिए थे और शूद्र इन तीनों वर्गों की सेवा के लिए तथा नौकरी के लिए थे । कालांतर में वर्ण-व्यवस्था का विकृत रूप जाति-व्यवस्था में विकसित हुआ और जन्म के आधार पर वर्ग निश्चित हो गए । १९ वी शताब्दी तक समाज में जाति-प्रथा के बंधन कठोर हो गए थे । २०वी शताब्दी के अंत तक इसमें शिथिलता आने लगी।

आज के सामाज में धन एक महत्वपूर्ण तत्व है । वित्त के आधार पर समाज में कई सारे स्तर हैं जिनको प्रमुख तीन स्तरों पर विभाजित किया जा सकता है - उच्च, मध्य और निम्न। आज धन के आधार पर व्यक्ति की प्रतिष्ठा और सामाजिक स्थिति जानी जाती है । आधुनिक समाज में सामाजिक स्तर पर व्यवसाय निर्भर है । समाज में मुख्यतः तीन प्रकार के

व्यावसायिक स्तर हैं - १) नौकरी पेशा २) उद्योग से संबंधित ३) व्यापार । इनमें भी वर्ग-भेद देखा जा सकता है ।

आधुनिक युग में विज्ञान तथा संचार माध्यमों के क्षेत्र में नये अविष्कारों के प्रभाव से समाज के अर्थ-तंत्र में बहुत अधिक परिवर्तन आया है । औद्योगीकरण व तकनीकी के विकास के फलस्वरूप जीवन मशीन बन गया है । गाँव के गाँव उजड़कर शहर की गंदी बस्तियों में और तंग घरों में परिवर्तित होते जा रहे हैं । आज अर्थ ही व्यक्ति के लिए सब कुछ बन गया है। भौतिक सुख-सुविधाओं को प्राप्त करने की होड़ में मनुष्य अपनी मनुष्यता से दूर जाने लगा है । उसे इतना ही मालूम है कि उसके सुख साधनों की पूर्ति केवल पैसों से ही हो सकती है। पद-प्रतिष्ठा, मान-सम्मान, स्वार्थ, धन, ऐश्वर्य, सुख-समृद्धि सब कुछ अर्थ पर ही निर्भर है ।

आज व्यक्तिगत स्वातंत्र्य, अहमृवादिता, औद्योगीकरण, मशीनीकरण, नयी अर्थव्यवस्था के परिणामस्वरूप संयुक्त परिवारों का विघटन तो हुआ ही है, निजी संबंध भी प्रायः मृतप्रायः हो रहे हैं । माता-पिता, भाई-भाई, पति-पत्नी, भाई-बहन, पिता-पुत्र आदि संबंधों में अनेक दरारें पड़ने लगी हैं । संबंधों में भावना की अपेक्षा धन-संपत्ति महत्वपूर्ण हो गयी है ।

भारत की शासन-व्यवस्था तथा न्याय-व्यवस्था में शोषण की प्रक्रिया में कोई अंतर नहीं आया है । नेता लोग, पुलिस पदाधिकारी, बड़े-बड़े अफसर, शासन के कार्यकर्ता सभी अपने स्वार्थों में रत हैं । मुनाफाखोरी, घूसखोरी, काला-बाजार, तस्करी, भ्रष्टाचार अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुके हैं । राजनीति में दलबदली और दलबंदी तथा सरकार की गलत नीतियों व्दारा प्रगति में बाधा उत्पन्न होती जा रही है । इन सभी परिवर्तनों का प्रभाव रचनाकार पर और कालांतर में उसकी रचनाओं पर भी होता है । इस तरह से साहित्य पर समाज का प्रभाव पड़ता है ।

रचनाकार अपने युग में जीता है और उस युग की अनुभूतियों को कालात्मक ढंग से अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है । रचनाकार अपनी युगीन परिस्थितियों को देखता है, उसकी समस्याओं से परिचित होता है और उनके समाधान के रूप में नए निष्कर्ष निकालता है। सूर्यबाला एक प्रसिध्द रचनाकार है । उनके कथा-साहित्य में उनके जीवन की अनुभूतियाँ बड़े सुंदर रूप में चित्रित हुई हैं । उनके जीवन में समाज का विविध रूप उनके सामने आया और उससे उन्होंने कई सारे अनुभव लिए । इसी की अभिव्यक्ति उनके साहित्य में मिलती है। उन्होंने अपनी कहानियों में समकालीन समाज में स्थित विभिन्न समस्याओं का चित्रण विविध पात्रों के माध्यम से किया है और कई बार उन समस्याओं को कैसे सूलझाया जा सकता है इसकी ओर संकेत भर किया है । समाज की प्रमुख इकाई परिवार इनकी कहानियों का मुख्य आधार रहा है । परिवार में स्थित पुरुष, नारी, बच्चे, युवा, बूढ़े, आदि का चित्रण

इनकी कहानियों में मिलता है । इन्हीं के आधार पर हम उनकी कहानियों में स्थित समाज को देखेंगे।

३.१.१ पुरुष प्रधान समाज

प्राचीन काल से पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था में परिवार में पुरुषों का वर्चस्व पाया जाता है, जहाँ नारियों को दुय्यम दर्जा प्रदान किया जाता है । परिवार में पुरुष प्रधान होने की वजह से प्राचीन काल में नारियों का उसके व्दारा शोषण किया जाता था । आज भी ऐसे कई परिवारों में पुरुषों व्दारा नारियों का शोषण होता हुआ हमें नजर आता है लेकिन सूर्यबाला की कुछ कहानियों में स्त्रियों के सामने पुरुष भी लाचार नजर आते हैं । 'इसके सिवा' कहानी का नायक, गृहिणी-नायिका के कवयित्री बन जाने पर खुद के काम खुद करने के लिए लाचार है । उसके मन में कई सारी बातें हैं जिन्हें वह अपनी पत्नी के साथ बाँटना चाहता है, लेकिन पत्नी के पास समय के अभाव के कारण वह ऐसा नहीं कर पाता । इसलिए नायक जब अकेलापन महसूस करता है, तब उसकी दयनीयता उभर आती है । सूर्यबाला यह मानती है कि हर मनुष्य का व्यवहार परिस्थितियों पर निर्भर रहता है इसलिए उनकी कई कहानियों में बहुत सारे पात्र परस्थितियों के सामने लाचार नजर आते हैं, चाहे वे पुरुष हो या स्त्री । 'योद्धा' कहानी में लेखिका लिखती है - "योद्धा एक विचित्र स्थिति से उपजी शुद्ध मानसिक यंत्रणा की अभिव्यक्ति है । यंत्रणा के दोहरे, तिहरे, चौहरे त्रासद रूप - जिन्हें हम कभी दूसरों के समक्ष उजागर नही कर सकते । एक भाई दंगे में मारा जाकर महान् योद्धा और शहीद मान लिया जाता है । लेकिन दूसरा भाई, जिसने सचमुच अपेक्षाकृत कहीं ज्यादा बहादुरी का कृत्य किया है और जो सही मायने में हकदार है, उसकी ओर किसी का ध्यान ही नहीं जा पाया । किसी कूटनीतिवश नहीं सहज मानव स्वभाव वश ।"[१] ऐसी स्थितियों में पुरुष भी कई सारी यंत्रणाओं से गुजरते हैं । 'योद्धा कहानी का नायक देवेंद्र इन्हीं यंत्रणाओं से गुजरते हुए पाया जाता है । 'खोह' कहानी में लेखिका ने आत्मकेंद्रित

एवं आत्मदंभी जयंत का वर्णन किया है, जो अपनी पत्नी की मृत्यु तक को अप्रत्यक्ष रूप से आत्मप्रशंसा या आत्मदंभ का माध्यम बनाता है । अक्सर मनुष्य स्वार्थी होता है । इसी की वजह से कृतघ्न भी बन जाता है । 'गुफ्तगू' कहानी का नायक अपने कैंसर से पीड़ित मित्र के.के. को मिलने जाना इसलिए टालता है कि जाने और आने में जो खर्चा होगा, उससे उसका नुकसान होगा । सात साल की दोस्ती के दौरान के.के. व्दारा किए गये उपकारों के बदले में उसके अंतिम दिनों में उसे देखने जाने की जगह नायक का कहना "अब हम गए न गए, कौन के.के. जिंदा रहनेवाले हैं यह सब सोचने के लिए । कुल एक महीने बाद जो आदमी दुनिया में रहनेवाला ही नहीं है वह क्या सोचेगा, यह सोचना ही हर दर्जे की बेवकूफी नहीं क्या ? और ऊपर से नुकसान ...हजारों रुपए का अलग ।"[२] उसकी अहसान फरामोश वाली वृत्ति को उजागर करता है । मध्यवर्गीय संकुचित मानसिकता, स्वार्थी मनोवृत्ति, संवेदनशून्यता, अमानवीय अवसरवादिता का उदाहरण यह कहानी है । 'विजेता' में शोषण की प्रक्रिया से गुजरनेवाले व्यक्ति की कहानी है, जिसका अंत में व्यक्तित्वांतरण होता है । एक पुरुष, शोषण की सारी अन्यायपूर्ण सहनशक्ति की सीमा को पार करने के बाद एक सामन्य व्यक्ति नहीं रहता, अपनी क्षमता का सही ज्ञान प्राप्त होने पर स्वयं शोषण का विरोध करता है और विद्रोही बन जाता है।

'गोबर च्चा का किस्सा' में गोबर चाचा के भगवे-वस्त्र में छिपी अहंकारी वृत्ति और अपनी जिम्मेदारियों को त्यागकर भगोड़ेपन पर पल रही मनोवैज्ञानिक ग्रंथी अंत में खुलती है और उसके व्यक्तित्व में पूर्ण परिवर्तन आ जाता है । यह कहानी केवल गोबर चाचा की न रहकर पूरे अहंकारी पुरुष-वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है जो अपने अहंकार की वजह से अपने घरवालों के साथ ऐसा व्यवहार करते हैं । "सूर्यबाला की सार्थक गहरी व्यंग्यात्मकता, जिंदगी की साधारणता से ईमानदार लगाव, मामूली आदमी की संघर्ष - गाथा की पहचान और खोटी देशीपना उनकी कहानी 'गोबर चाचा का किस्सा' प्रकट करती है । गाँव के हालातों, व्यवहारों,

कारनामों और खास गँवई गाँव की भाषा का पुट लिए हुए यह कहानी लगभग अंत में एक ऐसा मोड़ लेती है कि वह महज व्यक्तिरेखा प्रधान न रहकर जिंदगी पर जीवना भाष्य करनेवाली महत्वपूर्ण कहानी बन जाती है।"[३] इसी कहानी में गोबरधन का भाई परिस्थितियों के चक्रव्यूह में पड़कर स्थितियों से जूझता हुआ अभिमन्यू की तरह स्थितियों पर मात करने की कोशिश करता है । लेखिका के अनुसार "भगोड़ों की तरह भागा नहीं वह। जूझता रहा।...... वह तो जुता था इस जुए में, एक सुबह से रात तक, समूचे कुनबे के हर बड़े-छोटे के लिए अन्न उगाहने में ।"[४] आज मिड़ियावाले दूसरों के आँसुओं को अपने कार्यक्रमों का विषय बनाकर प्रसिध्दि पाते हैं । उन्हें दुसरों के दुख का कोई गम नहीं होता उनका लक्ष्य केवल अपने कार्यक्रम की प्रसिध्दि होता है । आज साहित्य भी इस तरह के दाँव-पेचों में फँसा है । आज के रचनाकार अपने साहित्य के लिए सामुग्री की तलाश में ही रहते हैं । वे संवेदनशील होने के बावजूद सामान्य लोगों की निजी घटनाओं को अपनी रचना का आधार बनाते हैं । 'यह क्या सर जी !' कहानी में नायक, उसके आशिर्वादों का अपेक्षी, मध्यम वर्गीय व्यक्ति की मजबूरियों को अपनी रचना का आधार बनाकर प्रसिध्दि पाता है । उसकी कथनी और करनी में बहुत अंतर है । उसका कहना है - 'मनुष्य होने की पहली शर्त, कसौटी ही यह है कि उसकी संवेदनाएँ संपूरित और समृध्द रहें' और वह स्वयं इसके अनुसार बर्ताव नहीं करता । लेखिका ने उसके दोगलेपन को भली-भाँति रोखांकित किया है । सूर्यबाला की कहानियों के पुरुष पात्र आत्मकेंद्रित, आत्मदंभी, स्वार्थी, संवेदनशील, संवेदनहीन एवं परिस्थितियों के सामने लाचार नजर आते हैं । समकालीन स्थितियों ने उन्हें ऐसा बनाया है । आज के युग में कोई समाधानी नहीं है । सभी असंतुष्ट हैं । इसी के प्रभाव स्वरूप लेखिका की कहानियों में ऐसे पात्र मिलते हैं ।

भारतीय समाज में पुरुष की नारी के प्रति एक प्रकार की विशेष मानसिकता रही है । पुरुष को घर का प्रमुख व्यक्ति माना जाने के कारण आर्थिक दृष्टि से घर के सभी दायित्वों का

निर्वाह करने की जिम्मेदारी उसी व्दारा निभायी जाए यह समझ संपूर्ण भारतीय समाज में व्याप्त है । आज जहाँ नारियाँ आर्थिक दृष्टि से परिवार की जिम्मेदारियाँ निभाने में उसकी मदद करना चाहती हैं, ऐसे में भी घर से बाहर जाकर काम करनेवाली महिलाओं के प्रति उनके पतियों को संदेह रहता है । इसी शक की वजह से कई सारे परिवारों की नींव हिल जाती है। सुबह से लेकर शाम तक घर की सारी जिम्मेदारियों को निभाते हुए काम करनेवाली महिलाओं को आज देखा जा सकता है । अपने पति के प्रति ईमानदार पत्नी पर जब उसका पति घर पर देर से आने की वजह से ही दूसरों के कहने पर शक करता है इससे परिवार किस तरह से टूट जाता है इसका उदाहरण हम सूर्यबाला की 'सुनंदा छोकरी का डायरी' कहानी में देख सकते हैं । पाँव टूटने के बाद मजबूरी से घर पर रहनेवाला सुनंदा का पिता अपनी पत्नी को घर के कामों में मदद करने के अलावा शाम के समय घर आनेपर उसी पर गुर्राता है । उसके चरित्र पर शक करता है – "आज माँ काम से लौटी तो शंबू कउशी भूखा सो गिया । माँ, बाप को पूछी तो कित्ता जोर से दहाड़ा – हरामी – तू मेरे कू अपना गुलाम समझती क्या ? मैं तेरा पिल्ला पालने कू बइठा इधर ? मेरा टाँग तोड़ के घर में बिठा दिया और अपना अक्खा दिन मस्ती करती । मेरे को लँगडा, लूला, कुतरा का माफिक समझी ! मैं फोकट में खाता न !..."[५] आज मर्द घर में कितनी भी देर से आए, उसके कितने भी लफड़े हो फिर भी उसे पूछनेवाला कोई नहीं रहता, लेकिन औरत कितनी भी ईमानदार हो उसकी कोई भी गलती न होने पर भी उसे सजा के काबिल समझा जाता है । 'सुमिंतरा की बेटियाँ' कहानी में सुमिंतरा का पति सुमिंतरा और उसकी दो बेटियों को छोड़कर दूसरी औरत से शादी करता है । उसे समाज बहुत आसानी से अपनाता है, लेकिन वही बात अगर सुमिंतरा ने की होती तो शायद वही समाज उसे कड़ी से कड़ी सजा देता । आज भारतीय समाज अपने विकास की ओर बढ़ रहा है । आज के शिक्षित समाज में इस तरह की बातें हो रही हैं यह बहुत लज्जस्पद है, इसलिए इस मानसिकता को बदलना आवश्यक है ।

३.१.२ नारी के विविध रूप

नारी परिवार में अहम् भूमिका निभाती है । सूर्यबाला की कहानियों में नारी के विविध रूप हमें मिलते हैं । नारी-विमर्श के इस दौर में पुरुष-प्रधान समाज के प्रति विद्रोही नारी के रूप को अनेक रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में चित्रित किया है । सूर्यबाला की कहानियों में इस विद्रोह का रूप थोड़ा अलग है । उनकी कथा-नायिकाओं का विद्रोह मुखर न होकर मूक है, जिसका प्रभाव भी कम नहीं होता । 'व्यभिचार' कहानी की लेखिका अपने प्यारे पति के प्रति एकनिष्ठ है, इसीलिए अपने पाठक के पत्र पढ़कर उसके प्रति क्षणभर मोहित होने पर भी उससे मिलने से इन्कार करती है । 'इसके सिवा' की नायिका गृहिणी के रूप में असंतुष्ट है, लेकिन कवयित्री बनने पर आत्मकेंद्रित बन जाती है । तब न ही उसे अपने पति का ध्यान रहता है और न ही बच्चों का । 'न किन्नी न' कहानी की किन्नी स्वाभिमानी एवं आत्मनिर्भर होने पर भी स्थितियों से समझौता करने के लिए बाध्य है । 'रमन की चाची' कहानी में सुंदर होने पर भी नायिका को 'फूहड़' कहकर उसका शोषण किया जाता है । नायिका सब कुछ जानकर भी अपने प्रति तटस्थ रहती है । परिणामस्वरूप अंतिम दिनों में उसकी ओर कोई ध्यान नहीं देता और बिमारी से उसकी मौत हो जाती है । नारी-मुक्ति के इस दौर में जब तक नारी खुद अन्याय से मुक्त होना न चाहे तब तक उसकी स्वतंत्रता का ढिंढोरा पीटने से कोई लाभ नहीं लेखिका इस कहानी के माध्यम से यही कहना चाहती है । 'झील', 'कहाँ तक', 'कहो ना' आदि कहानियों में अहंकारी नारियों का वर्णन आया है, जो उत्तम गृहिणियों की भूमिका निभाने के बावजूद अपने व्यक्तित्व की छाप कहानी पर छोड़ती हैं । 'झील' कहानी के बारे में सूर्यबाला लिखती है - "झील की श्यामली मुझे कई अलग-अलग स्थानों में मिली । ऊपर से सौम्य, शांत, सामंजस्य की एक लुभावनी 'हारमनी' प्रस्तुत करती हुई, लेकिन सतह के अंदर एक उमड़ता-घुमड़ता तूफान समेटे हुए । एकदम नए लोग शायद इसे भी छद्‌म कहें, लेकिन मेरी दृष्टि से यह छद्‌म नहीं है । व्यक्ति की अपनी 'इगो' की

चारदीवारी है । हम क्यों किसी को अपने पास बैठने, हँसने, खिलखिलाने और समय बिताने के लिए मजबूर करें, जब कि 'वह व्यक्ति' अपनी अति व्यस्त दिनचर्या, कर्मठता और महत्वाकांक्षा में सिर से पाँव तक सराबोर है । वह मिलती निरंतर सफलताओं से पूर्ण संतुष्ट, परितृप्त है । उसके पास न इसका अवकाश है, न उसने कभी जानने की जरूरत ही नहीं महसूसी कि एकदम पास बैठी पत्नी अपने चाय के प्याले में कितनी शक्कर घोलती है या बगीचे के फूलों में कब ऋतुएँ सोती-जागती हैं । श्यामली बगावत नहीं कर सकती । स्थितियों का आभिजात्य और चारों तरफ का माहौल । न कहीं आग, न उबाल; सिर्फ ठंडी जमा देनेवाली बर्फ । ऐसे में विद्रोह आसान नहीं ।"[६]

'सिर्फ मैं' की नायिका अपनी महत्वाकांक्षाएँ पति पर थोपती हुई नजर आती है, जो कई महिलाओं की प्रवृत्ति होती है । 'थाली भर चाँद' की नायिका आत्मदंभी एवं ईर्ष्यालु है, जो अपने पड़ोसियों पर जलती रहती है । आज शिक्षा एवं आर्थिक संपन्नता की वजह से कई घरों में बच्चों को कोई काम करने के लिए नहीं कहा जाता क्योंकि घर का काम करने के लिए नौकर होते हैं । परिणामतः बच्चों में स्वावलंबन की कमी रह जाती है । एकाध दिन उन पर काम करने की नौबत आती है, तो उनका सारा समीकरण बिगड़ जाता है । खास तौर से लड़कियाँ अपने सौंदर्य का ध्यान रखती हुई काम करने से कतराती हैं और इसके लिए सर्वस्वी उनकी माँ जिम्मेदार होती है । 'थाली भर चाँद' कहानी इसी का उदाहरण है, जो बच्चों में स्वावलंबन के महत्व को रेखांकित करती है । सूर्यबाला इस कहानी में इस ओर भी संकेत करती है कि आज हम अपने अहं की तुष्टि एवं सुख पाने के लिए बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाते हैं यह करते समय छोटे-छोटे सुखों का खयाल ही नहीं रहता और वे सुख बड़े सुख पाने की लालच में हमारी मुट्ठी से फिसलते जाते हैं । इस कहानी की भूमिका में वह लिखती है - "सहजता में कितना सौंदर्य, कितना शिवत्व समा सकता है, यह मैंने सचमुच उस दोपहर ही जाना। बहुत बड़ी-बड़ी बातें, बड़े ऊँचे-ऊँचे विचार, तर्क और भावनाओं,

संवेदनाओं की बातें करते हैं हम । लेकिन अपने पास के एकदम सहज नन्हीं-नन्हीं बीरबहुटियों से सुख सौंदर्य हमें दीख ही नहीं पड़ते । उन्हें अनजाने कुचलते, सिर्फ आसमान की ओर ताकते चले जाते हैं हम ।"[७] जब कि हमें उन सुखों को सबसे पहले बटोर लेना चाहिए । 'सुम्मी की बात', 'पीले फूलोंवाली फ्रॉक' कहानियाँ नायिकाओं की युवावस्था की स्मृतियों को उजागर करनेवाली कहानियाँ हैं, जिनका उल्लेख आगे किया जाएगा ।

आज की दुनिया में कई सारी नारियाँ शिक्षा प्राप्त कर नौकरियाँ करने लगी हैं । ये नारियाँ कई सारी परेशानियों का सामना करती हुई नौकरी करती हैं । 'गैस' एवं 'सीखचों के आर-पार' कहानियों में नौकरी पेशा नारियाँ हैं, जो अपने पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाते हुए नौकरी करती हैं । 'मुक्तिपर्व' की नारी अपने पति की मृत्यु के उपरांत उसे न्याय दिलाने के लिए निरंतर संघर्षशील है, जो अंत में जीत जाती है। अपनी संवेदनाओं को समेटे भावुकता और कर्तव्य से ओत-प्रोत नारी की यह कहानी है । 'सुनो समित,सुनो सुलभ' की विनी सदियों पुरानी मान्यता की याद दिलाती है । बचपन में पिता, युवावस्था में पति, और वृध्दावस्था में बेटे की छाया में रक्षित नारी के ठीक विपरीत एक-एक कर इस तरह के छूटते आधार के बाद भी घबराती नहीं, बल्कि स्वयं अपने लिए जीने का निर्णय लेती है । सिर्फ अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए जिंदगी जीने का निर्णय लेती है ।

सूर्यबाला की कहानियों में एक विशेष वर्ग अपनी विशेष जीवन पध्दति के साथ उभरा है । बाहरी या भौतिक सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण लोग ! ऊँचा ओहदा, ऊँचा वेतन, फर्निश्ड फ्लॅट, ऊँची लोकेलिटी, हाय-फाय व सोफेस्टीकेटेड लाइफ-स्टाइल, सब कुछ चकाचक, सजा-सजाया, अनुशासित । साथ ही सफलता के ऊँचे स्तर पर विराजमान लोग ! ऐसी जिंदगी जो किसी के भी ईर्ष्या का कारण हो सकती है, ऐसी संपन्नता को देखते हुए जीता निम्न-मध्यवर्ग सदैव निराश, कुंठित, असमाधानी और अवसादमय रहता है । 'बिहिश्त बनाम मौजिराम की झाडू' की नायिका ऐसे ही वातावरण में जीवन जिती है, वह सदैव असमाधानी और दुखी

जीवन बिताने के लिए अभिशप्त है । 'कात्यायनी संवाद' की कात्या आत्म-नियंत्रित है । वह कहीं भी दुर्बल नहीं है लेकिन प्रेम, कर्तव्य और सेवा भाव उसकी प्रकृति में है । उसे पशुवत पति की सेवा करने के लिए किसी ने मजबूर नहीं किया है बल्कि वह स्वयं बँधी रही । उसकी सेवा करना उसने अपना लक्ष्य माना है । ऐसी ही स्त्रियों से यह देश, समाज और हमारी संस्कृति बची हुई है । वह त्याग तो करती है लेकिन अपने त्याग को महिमा-मंडित नहीं करना चाहती । नारी-शोषण एवं नारी-स्वतंत्रता से परे उसकी आत्मा, उसका विश्वास जीवन के खूबसूरत मूल्यों से बँधा हुआ है । डॉ. माधुरी छेड़ा के शब्दों में यह कहानी "पारिवारिक संबंध और मानवीय रिश्ते क्या वाकई निरर्थक हो चूके हैं ? किसी के लिए कष्ट सहना क्या वाकई अप्रासंगिक और कालबाह्य हो चुका है ? जीवन की सुंदरता वस्तुओं में है? व्यक्तिगत स्वार्थसिध्दि में है ? या भावात्मक संबंधों में है ? किसी के लिए कुछ कर जाने की वृत्ति में है ?"[८] आदि प्रश्नों को पाठक के समक्ष रखती है । सूर्यबाला की कहानियों में चित्रित ये कथा-नयिकाएँ स्त्री-विमर्श के स्वरूप को एक सार्थक दिशा देती हैं । चीख-चिल्लाहट और उथली प्रतिक्रिया से दूर सूर्यबाला की ये मानस-कन्याएँ पूरी मर्यादा और आत्मविश्वास के साथ अपने घर और दुनिया में योग्य स्थान बनाने के लिए सतत अग्रसर हैं। सूर्यबाला ने नारी-विमर्श को अपनी नजर से संकुचित नहीं किया । वह पुरुष व्दारा किए जाने वाले नारी के शोषण से पूर्णतः परिचित है । 'सुमिंतरा की बेटियाँ' कहानी में उनका यही दर्द उभरकर आया है । पति व्दारा परित्यक्ता सुमिंतरा का दर्द अपनी दो बेटियों को पालते हुए अपमानित होने का दुख अकेलेपन में मूक होकर सहने में व्यक्त होता है । यह एक तरह से विद्रोह की पहली सीढ़ी है । पति का साथ देनेवाले समाज की दिखावटी और बोथरी संवेदनशीलता पर व्यंग करते हुए सूर्यबाला ने सुमिंतरा की दोनों बेटियों के व्दारा विद्रोह की दूसरी सीढ़ी की ओर संकेत दिया है । 'आदमकद' की मामी कुरूप होने के बावजूद चेतना संपन्न है । वह नकारे मर्द के साथ रहकर भी कभी उसे कुछ कहती नहीं

और न ही किसी को कहने देती है । अपने घर का सारा काम वह स्वयं करती है । उसके स्वाभिमानी चरित्र का अंकन प्रस्तुत कहानी में हुआ है । अपने नकारे पति के साथ जिंदगी गुजारते हुए सारी यातनाएँ सहती है लेकिन कभी हार नहीं मानती । पति की मौत के उपरांत भी न डरते हुए भविष्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण निर्णय लेती है । "'आदमकद' की अनाम नारी की कर्मठता, उसकी जीवट, मूक सहनशीलता और उसका विशाल वात्सल्य उसको एक चिरस्मरणीय चरित्र के रूप में खड़ा करता है ।"[६] जीवन में हर रिश्ते का अपना एक महत्व होता है । हर रिश्ता अपनी जगह सही होता है । अपनेपन के नाम पर जब रिश्ते की मर्यादा को लाँघा जाता है तो रिश्तों में तनाव आता है । सास बहु का रिश्ता ऐसा ही होता है । सास अगर बहु को बेटी समझकर उससे माँ जैसा व्यवहार करने लगती है तो वह अपनी अहमियत खो सकती है क्योंकि बहु कभी किसी सास की बेटी नहीं बन सकती और न ही सास किसी बहु की माँ । जब बहु बेटी की और सास बहु की माँ की जगह लेने की कोशिश करें भी तो वे असफल ही होंगे क्योंकि हर रिश्ता अपनी जगह पर ही सही होता है। 'चिड़िया जैसी माँ' कहानी में यही बात एक माँ को समझायी गयी है जो बहु की माँ बनने की कोशिश करती है ।

कई बार अनाम मानवीय संबंध भी जीवन में उत्साह भर देते हैं । 'अनाम लमहों के नाम' कहानी की नायिका के जीवन में कुछ ऐसा ही होता है । उनका नया पड़ोसी, पड़ोस में गाने का रियाज करता है वे गाने सुनकर नायिका को अपने पुराने दिन याद आते हैं और जीवन में एक प्रकार का आनंद आ जाता है । जीवन की एकरसता में थोड़ा बदलाव आता है । केवल उसके ही जीवन में नहीं बल्कि उसके छोटे बच्चे के जीवन में भी पड़ोसी के बर्ताव से भारी परिवर्तन आता है । पैसों से ही जीवन को सुंदर और आनंदी नहीं बनाया जा सकता बल्कि जीवन को सुंदर बनाने के लिए मनुष्य के पास गुणों की भी आवश्यकता होती है । यह एक प्रौढ़ा के मन में उठे कुछ कोमल भावों की कहानी है । नीरस, चिड़चिड़ा, हर पल

नफा-नुकसान के आंकडों में उलझे हुए पति की इस संवेदनशील पत्नी का जीवन एक तपा हुआ रेगीस्थान है । पड़ोसी के गीतों की मधुर स्वरलहरियाँ उसके मन में बसन्ती बयार सी सुखद अनुभूतियाँ लहरा देती है । इस अपरिचित पड़ोसी व्यक्ति के सद्‌भाव से प्यासा मन स्पंदित हो उठता है, आनंदित हो उठता है ।

नारी वात्सल्य की मूर्ति होती है । 'उत्तरार्द्ध' कहानी में माँ अपने बेटों के प्रति वात्सल्य की वजह से अपने अस्तित्व को भी भूल जाती है । 'सलामत जागीरें' की माँ वात्सल्य भाव से ओत-प्रोत है, जो अपने बेटे से बहुत प्यार करती है । 'संताप' कहानी की माँ का दर्द अनकहा होने पर भी बहुत ही दारुण है । जिस माँ के दो बच्चे पानी में डूबकर मर गए, उस माँ को कोई भी वाक्य सांत्वना नहीं दे पाता । अपाहिज बच्चों की मौत से समाधानी हुए पति के प्रति संताप व्यक्त करती हुई महिला की यह कहानी है । सूर्यबाला की यह कहानी संकूचित मानसिकता को दर्शाती है । कहानी में जब उस माँ के बच्चे बह जाते हैं तब वह भी उस दृश्य की प्रत्यक्षदर्शी होती है, लेकिन वह बार-बार कहती है कि उसके पति को पानी में कुदकर अपने बच्चों को बचाना चाहिए था । इस परिस्थिति में वह खुद भी तो पानी में कुदकर अपने बच्चों को बचाने की कोशिश कर सकती थी । उसका पति अपनी जान को बचाने के लिए पानी में नहीं कुदा था यह बात वह खुद जानती है, लेकिन वह बार-बार उसे दोषी ठहराती है । जब कि जीवन का मोह उसे भी था जिसकी वजह से वह खुद भी नहीं कुद पायी थी । अतः कहा जा सकता है कि यह कहानी केवल नारी का पक्ष लेकर लिखी गयी कहानी है ।

कई लोग जब ऑफिस में ऊँचे ओहदों पर आसीन होते हैं तब उन्हें दूसरों को काम फर्माने की आदत होती है । घर में जब उनकी मर्जी के अनुसार काम नहीं होता तो वे दुखी होते हैं । 'अठारह वर्ष बाद' कहानी में कथा-नायिका ऐसी ही है । अपने बेटे पर अपनी आकांक्षाएँ लादती रहती है । वह सोचती है कि 'प्यार-दुलार अंदर की चीज है, दिखावे की

नहीं', दाद देने वाली माँ बच्चों की सबसे बड़ी दुश्मन होती है' आदि तर्कों से अनुशासित माँ का वात्सल्य कहानी के अंत में उभर आता है । वह अपने बच्चे की मानसिकता को नहीं देखती बल्कि अपने सम्मान के बारे में सोचती है । अपने बच्चे के मन को पहचानने में उसे अठारह साल लगते हैं। जब वह हॉस्टेल जाने के लिए ट्रेन में बैठता है, तब उसकी आँखों में आँसू देखकर उसे अपनी गलती का अहसास होता है । अपने ही रोब में होने की वजह से वह अपने बच्चे के गुणों को देखना भूल जाती है । अठारह साल बाद अपने बच्चे के प्रति उसकी ममता उमड़ आती है, इसीलिए अन्य माहत्वाकांक्षी लोगों को कहना चाहती है कि ऐसे मत बनो - "दिल चाहता है सड़क चौराहों पर जहाँ, जो माँ मिले, उसे झकझोर कर कहूँ देखो अपने बच्चे का बचपन, भर बाँहों, भर आँचल समेट लो ....क्योंकि यह तुम्हें कभी वापस नहीं मिलने वाला ।"[10] साथ ही यह कहने से भी नहीं चूकती कि बच्चों को भावी जीवन जीने के लिए तैयार करने की जिम्मेदारी भी तो माँ की है । वह सोचती है- "लेकिन पछतावे के तेज बहाव में बहते-बहते अचानक जैसे मैं तर्क की चट्टान से टकरा जाती हूँ । मेरा तर्क, मेरी भावना को झकझोरकर पूछता है एक बात बताओ, आज की दुर्दमनीय प्रतिव्दंव्दिता के बीच, बच्चा स्वयं या माँ ही उसके बचपन का निर्बाध, नदी की तरह बहते रहने देने के लिए इतनी स्वतंत्र है क्या ? बच्चे के बेतरतीब व्यक्तित्व को समेट कर सन्तुलन और अनुशासन के फ्रेम में जड़ने की जरूरत नहीं क्या ? अनगढ़ चट्टान को तराश कर एक सुगठित आकार देना है तो कीलें तो चुभेंगी ही....चोट शैशव को भी लगेगी...और माँ की उँगलियाँ भी लहूलुहान होंगी ।"[11] माँ की ममता के साथ-साथ कर्तव्य-भावना भी यहाँ उभरकर आयी है ।

मनुष्य अपना स्वभाव नहीं बदल सकता यह बात सूर्यबाला की 'एक स्त्री के कारनामे' कहानी में उभर आयी है । इस कहानी में विद्रोही स्त्री का वर्णन आया है । पति के संतुलित स्वभाव से क्रोधित होकर उसे गुस्सा दिलाने के प्रयास में भी वह हारती है और

यह स्वीकार करती है कि किसी के मूल स्वभाव को कोई नहीं बदल सकता । 'कब्जा' की नायिका अपने पति की सेवा में रत रहती है । अपने पति के प्रति समर्पित नायिका की यह कहानी है । स्पंदनहीन पति के हाथ के स्पर्श में स्पंदन का अहसास से निराश नायिका को आशा की किरण दिखायी देती है । 'तलाश' कहानी की नायिका अपना एक अनोखा व्यक्तित्व रखती है । युवावस्था में हर रोज घर के सामने दिखायी देनेवाले व्यक्ति की उसे तलाश है । वह उसे पाना भी नहीं चाहती लेकिन उसकी तलाश जारी रखना चाहती है । इस तरह से सूर्यबाला की कहानियों में हमें नारी के विविध रूप दिखायी देते हैं । आज स्त्री-विमर्श पर दुनिया की तमाम भाषाओं में साहित्य रचना हो रही है । हमेशा से सतायी गई स्त्रियाँ अपने अधिकार के लिए लड़ाईयाँ लड़ रही हैं । सूर्यबाला की कहानियों में हम भले ही स्त्रियों के मुखर विद्रोह को न देख पाए लेकिन उनकी कृति के माध्यम से निश्चित ही विद्रोह नजर आता है, जो उनके अहं को भी पुष्ट करता है । सूर्यबाला की कथा-नायिकाएँ इस अर्थ में आज के स्त्री-विमर्श के दौर में कई दूसरे लेखक-लेखिकाओं की मानस कन्याओं से भिन्न हैं, कि वे स्वतंत्रता के नाम पर अराजक नहीं होतीं । वे प्रकृति की तरह उदार, ममत्व भरी तथा सृजनशील हैं । वे तोड़ती नहीं गढ़ती हैं । विनाश उनका स्वभाव नहीं, रचना करना उनका कार्य है । उसका हृदय आसमान की तरह विशाल है । वह अपने घर में संबंधों में ऊष्मा रोपती हैं, स्नेह और करुणा के धागे से अपनों को एकता की माला में पिरोती हैं, सहेजती हैं, सम्हालती हैं । सूर्यबाला की कहानियों के कुछ नारी पात्र आज की दूनिया के प्रतीत नहीं होते । आज महिलाएँ जहाँ पर स्वाभिमान से जीना चाहती हैं, स्वतंत्रता चाहती हैं वहाँ घुटते हुए जीने वाली 'श्यामली', या 'सजायाफ्ता' की नायिका जैसे नारी पात्र बिल्कुल नजर नहीं आएँगे। आज समाज में नौकरी करनेवाली नारी हो या गृहिणी स्त्री हो, गरीब हो या अमीर हो वह अन्याय सहन करने के लिए तैयार ही नहीं रहती ऐसे में 'कात्यायनी' जैसी नारी पात्र का सृजन सूर्यबाला की कल्पना में ही संभव हो सकता है। इस

दृष्टि से देखा जाए तो ऐसा महसूस होता है कि उनके वे नारी पात्र बहुत पुराने काल के हैं जो अन्याय को सहते हुए चुपाचाप जीते हैं और स्थितियों से समझौता करते जाते हैं।

३.१.३ समाज में बच्चों की स्थिति

बच्चे बड़े संवेदनशील होते हैं । उनकी इसी विशेषता को अपनी कहानियों का आधार बनाकर सूर्यबाला ने बड़ी मार्मिक कहानियों का सृजन किया है । 'मेरा विद्रोह' कहानी का बेटा अपने पिता से विद्रोह करता है, लेकिन अपने मजबूर पिता को रोते हुए देखकर रोते हुए निःशब्द कहता है- "पिताजी ! मैं संधि चाहता हूँ ।"[१२] आज के प्रतियोगिता के दौर में माता-पिता चाहते हैं कि उनके बच्चे कहीं पिछड़ न जाए इसलिए बच्चों के मन को न समझकर उनपर केवल अपनी महत्वाकांक्षाएँ लादी जाती हैं । उन्हें पूरा करने के लिए बच्चों पर जब दबाव डाला जाता है तब इस दबाव से पीड़ित बच्चे विद्रोह पर उतर आते हैं । अनुशासन में रहकर, बच्चों की मानसिकता को समझते हुए जब हम उनसे अच्छा व्यवहार करें तो वे हमें समझ सकेंगे । 'सिंड्रेला का स्वप्न' कहानी में एक गरीब लड़की की मौत का कारण सिंड्रेला का स्वप्न बन जाता है । प्रस्तुत कहानी में समकालीन परिवेश में उच्च वर्ग की स्वार्थपरता तथा निर्ममता का मार्मिक चित्रण किया है । इसमें उच्च-वर्ग की महिला व्दारा कम वेतन पर एक लड़की से अधिक काम करवाया जाता है और वह लड़की परियोंवाली सिंड्रेला की कहानी का और उसमें व्याप्त जादू की छड़ी का स्वप्न लिए हुए ही मर जाती है । 'तोहफा' में लालची पिता अपने बदचलन बॉस से हाथ न मिलाने पर उसके जन्मदिवस के अवसर पर स्वार्थी पिता के थप्पड़ का शिकार बन जाता है । 'जेब्रा' कहानी का जेब्रा व्यावहारिक और मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण है । अपने पिता के प्रति उसकी भावनाएँ तटस्थ होती हुई भी उद्दाम हैं । बालमजदूरी का शिकार जेब्रा की कहानी बड़ी मर्मांतक बन गयी है ।

'एक लॉन की जबानी' महानगरीय वातावरण में पल-बढ़ रहे बच्चे एवं उन्हें सँभालनेवाली आयाओं की कहानी है । बच्चों में बचपन में ही उच-नीचता की भावना भर दी जाती है

जिससे बचपन में ही अमीर और गरीबों के बीच खाई पैदा की जाती है । अमीर और गरीब बच्चों को एक-दूसरे के साथ किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए यह बचपन में ही सिखाया जाता है । 'अंतरंग' में बालमजदूरी की शिकार 'वह' बच्ची का उच्च-वर्गीय, शिक्षित कहलानेवाले लोगों व्दारा ही किस प्रकार शोषण होता है, इसकी कहानी है । 'माय नेम इश ताता' में बच्ची का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है । इस कहानी में स्थित बच्ची अपनी माँ तथा घर में स्थित आया के प्रति उदासीन रहती है इसलिए कि उनमें उसे वह अपनापन नजर नहीं आता जो उसकी दादी में नजर आता है । जब उनकी आया घर छोड़कर चली जाती है तो दादी पर पूरा विश्वास रखकर वह बच्ची आश्वस्त होती है । इन सारी कहानियों में बच्चों का मनोवैज्ञानिक चित्रण आया है, जिसकी वजह से ये सारी कहानियाँ मानवीय संवेदनाओं को जगाने में सक्षम हैं ।

'सुनंदा छोकरी की डायरी' संवेदनशील कहानी है । इस कहानी में सुनंदा स्कूल में जानेवाली लड़की है । स्कूल में जाते समय उसने अनेक सपने सँजोए थे लेकिन उसके बाप की नौकरी छूटने के उपरांत उसे घर का खर्चा चलाने के लिए स्कूल छोड़कर काम करना पड़ता है । घर में शराबी पिता जब झगड़े करता है तो उसके व्यवहार से पीड़ित माँ हर दिन दुखी रहती है । अंत में उसकी जली हुई माँ और शराब में बेसुध बाप दोनों को पुलिस पकड़कर ले जाती है । इससे सुनंदा के साथ उनके दो बच्चे भी अनाथ हो जाते हैं । इस तरह की स्थितियाँ ही बच्चों का बचपना छीन लेती हैं और उन्हें असमय ही बड़ा करती हैं ।

'मटियाला तीतर' बहुत ही संवेदनशील कहानी है । शहरों में काम करनेवाले बच्चों की माँग होती है । इसलिए गाँवों से कई सारे बच्चों को शहर में घरों में, हॉटेलों में काम करने के लिए रखा जाता है । सस्ते नौकर उपलब्ध होने की वजह से शहरों में रहनेवाला उच्च वर्ग भी खुश रहता है । बाल संवेदनशील मन बड़ा कोमल होता है । अपने माँ-बाप एवं भाई-बहनों को छोड़कर बचपन में ही उन्हें बड़ा बनाकर काम करने के लिए भेजा जाता है ।

आज बच्चों का बचपन छूट रहा है । मानसिक तौर पर वे जल्दी बड़े बनने लगे हैं । गरीब बच्चों को तो बचपन से ही काम करना पड़ता है । इसका फायदा उच्च वर्ग उठाता है । कम दाम पर घर का सारा काम उनसे करवाया जाता है । सस्ते नौकरों को कोई छोड़ना भी नहीं चाहता । शिक्षित एवं सभ्य कहलाने वाले लोग भी जब अपने फायदे की बात आती है तब अपनी सदाशयता छोड़कर किस प्रकार स्वार्थी बनते हैं इसका पर्दाफाश प्रस्तुत कहानी के माध्यम से लेखिका ने किया है ।

'गौरा गुनवंती' की अनाथ गौरा एक एकत्रित परिवार में परिस्थितिवश अपने लिए जगह तलाशती हुई निरंतर खुदपर थोपे गए चाहे-अनचाहे उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर्तव्यवश करती जाती है । बचपन में ही बड़ी हुई गौरा स्वयं को सबके अहसानों के नीचे दबा हुआ महसूस करती है । वह कहती है "शायद मैं दूसरों से ज्यादा स्वयं पर बोझ बन गयी थी । अहसानों का बोझ और चारों ओर से घेरती, समेटती, बेचारगी भरी निगाहों का बोझ ।"[१३] गरीब और अनाथ होने के कारण गौरा की ऐसी अवस्था होती है । 'कपड़े' कहानी में उच्च, आत्मकेंद्रित सुविधासंपन्न वर्ग की जीवन-पद्धति, सोच और संवेदनहीनता का चित्रण आया है । गरीबी का शिकार 'वह' मजदूरी करने के लिए मजबूर है । 'चोर का बेटा चोर' मानकर उसे दिए गए कपड़े लौटाने को कहना और उसे काम पर से हटा देना उसपर किया गया अन्याय है । उच्च-वर्ग व्दारा छोटे बच्चे का किया गया यह शोषण है । 'नीली थैलीवाला पैराशूट' कहानी में दो वर्गों की मानसिकता का चित्रण किया है । ताकतवर साधन संपन्न मनुष्य चाहे वह बच्चा ही क्यों न हो, जो चीज उसे अच्छी लगती है, वह उसे छीन लेना चाहता है । तान्या उच्च वर्ग की बच्ची है । उसके पास कई खिलौने होने के बावजूद उसे आकर्षित करता है वह साधा सा खिलौना जो एक अधनंगा बच्चा आकाश में उड़ा रहा था । उसे वह खेल बहुत पसंद आता है और वह किसी भी कीमत पर उस खिलौने को पाना चाहती है । वह जोर-जबरदस्ती से उस थैली पर अपने पाँव रख देती है और उस बच्चे का एकमात्र

खिलौना कुचलती है । उससे क्रोधित वह लड़का उसपर रेत उछालकर भाग जाता है । प्रस्तुत कहानी में तान्या का मनोवैज्ञानिक चित्रण लेखिका ने किया है । सूर्यबाला की अधिकांश कहानियों में गरीबी से पीड़ित होने पर उच्च वर्गीय लोगों के शोषण का शिकार बनते बच्चों का मनोवैज्ञानिक चित्रण हमें मिलता है । आज हम देखते हैं कि सरकार व्दारा बाल मजदूरी खतम करने के लिए बहुत सारी योजनाएँ तथा नियम बनाए जा रहे हैं, लेकिन जहाँ गरीब बच्चों के एवं उनके परिवारवालों के उदर निर्वाह की बात आती है, वहाँ ऐसी योजनाएँ और कानून कैसे सफल हो सकते हैं ? इस पर भी कोई उपाय ढुँढना जरूरी है ।

३.१.४ युवा वर्ग की मानसिकता

आज हम देखते हैं कि वैश्विकरण के प्रभावस्वरूप भारत का युवा वर्ग बड़ी मात्रा में शिक्षा प्राप्त करने हेतु या नौकरी प्राप्त करने हेतु विदेश जाना चाहता है । कई सारे लोग तो वहीं पर बसने में अपना सौभाग्य समझते हैं । वे जब भारत में वापस अपने परिवार में रहने के लिए आते हैं तो भी अधिक समय तक नहीं रह पाते। 'गुजरती हदें' कहानी का नायक अपनी विदेशी पत्नी एलिस को तलाक देकर अपने घर भारत वापस आता है। संगठित परिवार में कुछ दिन रहने के उपरांत परिवारवालों के अपनेपन के बीच भी अकेलापन महसूस करता है । वह घर की परेशानियों से उब जाता है और वापस विदेश जाने की ठान लेता है । यह प्रवृत्ति आज युवाओं में बढ़ रही है । आज विदेश की अनेक कंपनियाँ भारतीय युवकों को नौकरियों का लालच दिखाकर अपनी ओर खींच रही हैं । सभी उच्च शिक्षित लोगों को उनकी शिक्षा के अनुसार नौकरियाँ प्रदान करने में भारत असक्षम है इसीलिए वे लोग विदेश चले जाते हैं । वहाँ के वातावरण के आदी होने पर उन्हें अपने देशे में वापस लौटना अच्छा नहीं लगता इसलिए वे वहीं बसना चाहते हैं । कुछ युवक अपने घर की जिम्मेदारियों से भागते हुए नजर आते हैं । घर की परेशानियों, समस्याओं का सामना न कर सकने की वजह से घर से विदेश में ऐशोआराम की जिंदगी जीने के लिए चले जाते हैं । 'गुजरती हदें'

का नायक अपनी व्दिधा मानसिकता को उजागर करते हुए कहता है – "प्लेन ने उड़ान भरी – और एक तेज उड़ान के साथ आसमान में टँग गया । मुझे लगा, मैं एकदम असहाय होता चला जा रहा हूँ । नहीं जानता, किधर जाना है । बस प्लेन ऐसे ही आकाश के बीचोबीच टँगा रहे – न मेरे घर की ढही मुँडेरों की तरफ लौटे, न बेतहाशा भागती एवं चकाचौंध भरी तेज रफ्तार जिंदगी की ओर बढ़े । आह, मैं न आगे बढ़ सकता हूँ, न पीछे लौट सकता हूँ और न वहीं रह पा रहा हूँ जहाँ हूँ ।"[१७] आज के दिशाहीन हो रहे युवक का यह वक्तव्य है । इनमें से कुछ युवा ऐसे भी होते हैं जो अपने देश में रहकर देश के लिए कुछ करना चाहते हैं लेकिन कई बार उन्हें देशवालों से ही उपेक्षा का सामना करना पड़ता है । इससे नाराज होकर उन्हें विदेश में ही आश्रय लेना पड़ता है । आज विदेश में जानेवाले युवकों पर अप्रतिबध्दता का आरोप लगाया जाता है लेकिन उन लोगों को कितनी प्रताड़नाओं से गुजरना पड़ता है वह वे ही जाने । इसी बात को लेखिका ने 'मानुष-गंध' कहानी के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाया है । प्रस्तुत कहानी का युवा विदेश में डॉक्टर की शिक्षा प्राप्त कर भारत आता है लेकिन भारत में उसकी शिक्षा के अनुकूल नौकरी मिलना उसके लिए बड़ा मुश्किल होता है इससे निराश होकर वह वापस चला जाता है । सूर्यबाला ने विदेश से जुड़े युवकों की दोनों स्थितियों का वर्णन किया है । कुछ लोग न चाहते हुए भी विदेश से जुड़ने के लिए बाध्य हैं और कुछ लोग अपने कर्तव्यों से भागकर साधन सुविधाओं से संपन्न विदेश में रहना पसंद करते हैं ।

'दिशाहीन' कहानी में पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण के परिणामस्वरूप भारतीय युवक कैसे दिशाहीन होते जा रहे हैं इस पर व्यंग किया है । आज का युवक विदेशी पहनावा, विदेशी विचार, खान-पान, रखरखाव जैसी छोटी-बड़ी बातों का अंधाअनुकरण करता जा रहा है । क्या सही है या क्या गलत है इन बातों पर विचार किए बिना केवल दूसरों का अंधानुकरण करना उसकी प्रवृत्ति बन गयी है । ऐसा करते समय वह अपनी औकात भूल जाता है ।

गरीब व्यक्ति अगर इस प्रकार का व्यवहार करें तो धन पाने के लिए वह अन्य बुराईयों का शिकार हो सकता है । कोई भी कार्य करने के लिए आचार एवं विचारों से विदेशी बनना आवश्यक नहीं है । कार्य में कामयाबी पाने के लिए लगन एवं मेहनत की जरूरत होती है दूसरों का अनुकरण करने की नहीं। यही संदेश इस कहानी के माध्यम से लेखिका देती है । आज हम देखते हैं कि कॉलेज जाने वाले लड़के-लड़कियाँ अपना पहनावा छोड़कर दूसरों का अनुकरण कर मॉर्डन बनना चाहते हैं । इसलिए उस प्रकार के कपड़े एवं अन्य वस्तुएँ खरीदने के लिए अपने परिवारवालों से पैसों की माँग करते हैं । गरीब लोग कहीं से पैसों का इंतजाम करते हैं केवल इसलिए कि वे चाहते हैं कि उनके बच्चे पढ़े । लेकिन उन बच्चों का ध्यान अन्य चीजों पर होने की वजह से पढ़ाई में वे पीछे रह जाते हैं । इस कहानी के माध्यम से लेखिका आज के युवाओं को सही दिशा दिखाने का दायित्व निभाती है ।

आज के जमाने में जो काम करता है उसे कोई नहीं पूछता लेकिन जो काम नहीं करता उसकी वाहवाही होती है । 'योध्दा' कहानी में छोटे भाई की मृत्यु उसे महान बनाती है । बड़ा भाई जिन यातनाओं से गुजरता है, उसकी परवाह कोई नहीं करता । खुद उसके माता-पिता उसे समझ नहीं पाते । मनुष्य के बचपन और यौवन की यादें बड़ी खट्टी-मिठी होती हैं। 'सुम्मी की बात', 'पीले फूलों वाली फ्रॉक' आदि कहानियों में युवावस्था की स्मृतियों को उजागर करती हुई नायिकाओं की कहानी है । ये नायिकाएँ अपने जीवन में उत्तम गृहिणी की भूमिकाएँ निभाती हैं । वे अपने जीवन में खुश भी हैं लेकिन अपने यौवन की स्मृतियों को नहीं भूल पायी हैं । 'सुम्मी की बात' की सुम्मी पूरे परिवारवालों के साथ होने पर भी जब अकेलापन महसूस करती है तब युवावस्था की स्मृतियों का रम्मन उसके अकेलेपन को दूर करता है । 'पीले फूलोंवाली फ्रॉक' की नायिका शादी-शूदा है लेकिन उसे ढुंढता हुआ नायक उसके घर जाता है और बाईस साल पहले की याद दिलाता है। उसके व्दारा किए जाने वाले

वर्णन से नायिका अपने जीवन के बाईस साल पहले की सफर कर आती है । युवाओं से जुड़े प्रेम संबंध और बेरोजगारी जैसे मुद्दों पर आगे विस्तार से चर्चा की जाएगी ।

३.१.५ भारतीय समाज में वृद्ध-जीवन

परिवार में वृद्धों का महत्वपूर्ण स्थान होता है । सम्मिलित परिवार में वृध्द जनों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था लेकिन आज विघटित परिवार में उन्हें उपयोगिता की कसौटी पर कसा जाता है। सूर्यबाला की 'निर्वासित' कहानी में आर्थिक दृष्टि से अक्षमता का कारण बताकर दो बेटे अपने माता-पिता का बँटवारा करते है, जिससे दोनों वृध्द दुखी हो जाते हैं । 'पड़ाव' कहानी में रिश्तेदार, रिश्तेदारी के नाम पर वृध्दों का शोषण करते हुए दिखायी देते है। 'सौगात' कहानी में ससुर की नियति बहू की ताबेदारी निभाने की रह जाती है । बिना सहानुभूति और प्रेम के एक सूखी जिंदगी काटना कितना कठिन होता है यह केवल भोगनेवाला व्यक्ति ही जानता है । 'बाऊजी और बंदर' कहानी के बूढ़े बाऊजी को बेटे, बहु और बच्चों के बीच से उपेक्षित होने के बाद हारकर बन्दरों से मैत्री-भाव जोड़ने के लिये बाध्य होना पड़ता है । मनुष्यों के बीच प्रेम और संवेदना न मिल पाने पर भी बाऊजी हताश, निराश नहीं होते, पशुओं और प्रकृति के सामने अपनी झोली फैला देते हैं, और वे उन्हें निराश भी नहीं करते ।

आज जीवन में व्यस्तता उतना बड़ा कारण नहीं है, जितना कि लोगों के आत्मकेंद्रित होते जाने की त्रासदी । सच तो यह है कि आज सभी विडंबनाओं के पीछे स्वकेंद्रित होने की प्रक्रिया ही कार्य करती है । यही कारण है कि 'समापन' के मता-पिता को अपेक्षित सहानुभूति नहीं मिल पाती और उन्हें अलगाया जाता है। 'माय नेम इश ताता' कहानी में माँ को वात्सल्य और दया, माया, ममता की मूर्ति के रूप में न देखा जाकर उपयोगिता के मानदंड पर कसा जाता है । उसे नौकरानी की तुलना में भी नीच या उपेक्षित साबित किया जाता है । लेकिन नौकरानी न आने पर वही माँ अपनी पोती की देखभाल करने को पहुँच जाती है ।

'साँझवाती' कहानी में सिक्ख परिवार का वर्णन किया है । इसमें स्थित वृद्ध माता-पिता का दोनों बेटों ने बँटवारा किया है । बेटे बड़े होने पर अपने माता-पिता को सँभालना उनके लिए बोझ बन जाता है । इसलिए वे अपने ही माँ-बाप का बँटवारा करते है । बुढ़ापे में सुख-दुख के साथी पति-पत्नी को अलगाया जाता है । इतना ही नहीं उन्हें परिवार में उपेक्षा से देखा जाता है । इतना कुछ सहकर भी ये माँ-बाप अपने बच्चों को दुआएँ ही देते हैं । उनसे कोई अपेक्षा न रखते हुए खुश रहने का प्रयास करते हैं । प्रस्तुत कहानी में चित्रित सिक्ख दम्पति बुढ़ापे में अलग रहते हैं । उसमें स्थित बुढ़ा अपनी पत्नी से मिलने लंबा सफर तय कर जाता है । दोनों मिलकर अपने बच्चों का बचपन याद करते हैं । साथ ही वर्तमान समय में उनके जीवन में आये बदलावों को भी एक-दूसरे को बताते हैं । अंत में दोनों मिलकर अपने बच्चों के सुख की कामना करते हैं । बच्चों से वृद्ध माता-पिता को किसी भी प्रकार का व्यवहार मिलने पर भी माता-पिता अपने दायित्व को कभी नहीं भूलते । ये सारी कहानियाँ आज के समाज में उपभोक्तावादी मूल्यों की संवेदन शून्यता की कहानियाँ हैं ।

'दादी और रिमोट' कहानी की दादी पर मनोरंजन के नाम पर टी. वी. का प्रभाव अभिलक्षित होता है । गाँव में रहनेवाली दादी और शहर में आने पर उसमें आए हुए बदलाव का चित्रण लेखिका ने किया है । संवेदनशील व्यक्ति टी. वी. के जरिए आसानी से कैसे संवेदनहीन बन जाता है, इसकी यह कहानी है । आज टी. वी. पर मनोरंजन के नाम पर तमाम अच्छाईयों के साथ-साथ बहुत सारे खून-खराबे, छल-कपट, दुर्व्यवहार, जैसी अनेक बुराईयाँ भी दिखायी जाती हैं । यह देखनेवाले लोग अनपेक्षित रूप से उसे अपने व्यवहार में लाते हैं । आज हम समाचारों में कई सारे अपघात, खून, मारा-मारी आदि की जानकारी पाते हैं इसका प्रभाव समाज के हर व्यक्ति पर कम-अधिक मात्रा में होता है । बच्चों के साथ-साथ बूढ़े भी इसके प्रभाव से नहीं बच पाए हैं। गाँव में रहनेवाली दादी जब पहली बार मारामारी वाले प्रोग्राम देखती है, तो खुद उस दर्द को महसूस कर रोती है लेकिन यह सब

देखने की आदत होने पर उनके बिल्डिंग के नीचे खून होने पर भी कोई दुख व्यक्त नहीं करती ।

'जश्न' कहानी में जश्न के नाम पर बच्चे अपने ही माता-पिता की मौत की कामना करते हुए नजर आते हैं। यह तो मानवीय संवेदनहीनता की हद है जहाँ पर वृद्ध माता-पिता उनके व्दारा निर्मित बहुत बड़े परिवार के बीच सबके साथ बने रहने की कामना करते हैं वहाँ उनके बच्चे उन्हें स्वर्गारोहण की सलाह देते हैं । आज दो पीढ़ियों के विचारों में कितना अंतर आ रहा है । अपने बच्चों की भलाई चाहने वाले माता-पिता के बच्चे ही उनकी मृत्यु की कामना करते हैं । 'क्या मालूम' कहानी में एक वृद्ध महिला अपने यौवन को याद करती हुई नजर आती है । अपनी हवेली को बेचने के लिए बच्चों के साथ गाँव गयी हुई वृद्धा को अपनी युवावस्था की याद आती है । अपने पोता पोतियों के साथ अपनी यादें बाँटते हुए सुखी वृद्धा का वर्णन कहानी में आया है । एकत्रित परिवार में जब बेटे-बहुएँ काम पर जाते हैं तो सारे घर की जिम्मेदारी घर में स्थित वृद्धों के ऊपर आ जाती है । खासकर उनके बच्चों की जिम्मेदारी को निभाना बड़ा चुनौती भरा काम होता है । इन जिम्मेदारियों को निभाते हुए जीने वाले वृद्धों का जीवन बड़ा कठिन होता है । लेकिन देखनेवाले लोगों को लगता है कि वे बच्चों के साथ घर की जिम्मेदारियों को निभाते हुए वृद्ध लोग मजा लुट रहे हैं । 'मौज' कहानी का यही प्रतिपाद्य विषय रहा है ।

आज हम देखते हैं कि समाज में वृद्धों के प्रति आदर नहीं रहा है । पहले जमाने में घर में बुजुर्गों का दबदबा रहता था । इसलिए वे जो कहते थे वही होता था । आज शिक्षा एवं औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप तथा स्थितियों में आमूल परिवर्तन के कारण परिवार में वैचारिक अंतराल के कारण वृद्धों की स्थिति में भी परिवर्तन आया है । कुछ परिवारों में उन्हें आज भी वह सम्मान प्राप्त है लेकिन अधिकतर परिवारों में उन्हें उपयोगिता की दृष्टि से ही देखा जाता है । इसी की वजह से आज वृद्धाश्रमों का जन्म हुआ है । वृद्धों का उपयोग

नजर न आने पर उन्हें वृद्धाश्रमों में रखा जाता है । हालाँकि वृद्धाश्रमों के निर्माण के अन्य अनेक कारण हैं। लेकिन परिवार में वृद्धों के महत्व का घटना यह हम मुख्य कारण मान सकते हैं ।

सूर्यबाला ने समाज में स्थित अनेक समस्याओं का चित्रण भी अपनी कहानियों में किया है जैसे अर्थ से संबंधित समस्याएँ, विवाह से संबंधित समस्याएँ, शोषण, भ्रष्टाचार, शहरीकरण, स्वार्थांधता, आदि ।

३.१.६ अर्थ से संबंधित समस्याएँ

आजादी के उपरांत गरीबी की समस्या को सुलझाने के लिए भारत की सरकार ने कई सारे प्रयास किए । कई सारी योजनाएँ बनायी लेकिन कई कारणों की वजह से समाज से गरीबी का उर्मूलन सफल न हो सका । इसलिए आज भी समाज में गरीबी की समस्या बनी हुई है। समाज में स्थितियाँ बदलती रहती हैं । इसका परिणाम निश्चित रूप से परिवार पर होता है । ऐसे में आर्थिक दृष्टि से कब कोई अमीर और कब गरीब बन जाए कहा नहीं जा सकता। 'समान सतहें' कहानी में इन्हीं स्थितियों में आए हुए बदलाओं का रेखांकन हुआ है । 'एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम' कहानी में कई सालों बाद अपने पिता से मिलने आनेवाली बेटी के लिए सुख-सुविधाओं का जुगाड़ करने में असफल पिता का वर्णन आया है । गरीबी की वजह से वह अपनी बेटी की खातिरदारी नहीं कर सकेगा इस बात से दुखी पिता का मार्मिक चित्रण लेखिका ने किया है । नौकरी छूटने के बाद गरीबी की वजह से अपने परिवारवालों की जरूरतों को पूरा न करने की लाचारी से दुखी पिता की दयनीय स्थिति का वर्णन 'घटनाहीन' कहानी में आया है ।

'वे जरी के फूल' कहानी उन हजारों गरीब रुक्कियों की कहानी है, जो गरीबी की वजह से अपना संसार बसाने में नाकामयाब हो जाती हैं । हजार गुणों के बावजूद गरीबी वाला दुर्गुण इन रुक्कियों की शादी में बाधा बनता है इस वजह से कि ये लड़कियाँ दहेज नहीं दे

सकतीं । डॉ. शशिप्रभा शास्त्री के अनुसार “यह कहानी उन हजारों रुक्कियों की कहानी है, जो प्यारी-सी एक अलमस्त जिंदगी जीने के बाद सामाजिक रस्मों और कुप्रथाओं के चलते जीवन भर के लिए एक कठोर सात्विक जिंदगी जीने के लिए मजबूर कर दी जाती है ।”[१५] ‘जेब्रा’ कहानी का जेब्रा गरीबी की वजह से बालमजदूर बनने के लिए मजबूर है । सारे लोगों से उपेक्षित होने पर भी उसे लोगों के घर काम माँगने जाना पड़ता है । ‘सुखांतकी’ का ‘वह’ दो हजार रुपयों का कर्जदार अपने घर वापस जाने के लिए लेखिका से दस रुपये पाता है तो खुश होता है । लेखिका के शब्दों में “उन रुपयों को थामकर मुन्नी को कंधे से चिपकाए जब वह जा रहा था तो इतना खुश नजर आर हा था कि कोई नहीं कह सकता था कि यह आदमी ठीक डेढ़ दिन पहले अपनी बीवी का क्रिया-कर्म करके आ रहा है ।”[१६] आज गरीबी इतनी भीषण समस्या बन गयी है कि लोग अपनी मानवीयता भूलकर वहशी बनने के लिए आगे पीछे नहीं देखते । इससे समाज में अनेक समस्याएँ जन्म लेती हैं । ‘भुक्खड़ की औलाद’ कहानी अर्थ के सामने मनुष्य की अर्थहीनता की बात को उजागर करती है । गाँव में रहने वाला सामान्य व्यक्ति भी गरीबी की वजह से पैसे को प्राधान्य देता है । बाढ़ से पीड़ित अपने परिवार में उसे अपनी पत्नी नहीं बल्कि उनकी भैंस महत्वपूर्ण लगती है जो उनकी आर्थिक स्थिति का आधार थी । पैसों के आगे आज मनुष्य की कोई कीमत नहीं है यह स्थिति गरीबी की वजह से उपस्थित हुई है । ‘कपड़े’ कहानी के अब्दुल को इसलिए काम करना पड़ता है कि वे गरीब है । उसका बाप चोरी इसलिए करता है कारण वे गरीब हैं । यही गरीबी की समस्या लोगों से उनकी मासूमियत छीन लेती है और उन्हें अन्य समस्याओं के शिकार बनने के लिए मजबूर करती है। अजादी के पहले समाज में साम्यवाद की कल्पना की थी लेकिन आज हम देखें तो गरीब और अमीरों के बीच की खायी गहराती जा रही है । दुष्यंत कुमार कहते हैं -“कहाँ तो तय था चिरागाँ हर एक घर के लिए, कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए”[१७] यह स्थिति आज भी है ।

आज हम हर जगह देखते हैं कि मनुष्य बहुत स्वार्थी बन गया है । यही स्वार्थ उसके चरित्र के पतन का कारण बनता है । सूर्यबाला की कई कहानियों में स्वार्थांधता से उत्पन्न समस्याओं का चित्रण मिलता है । स्वार्थ की वजह से आज का मनुष्य नैतिक पतन की ओर बढ़ रहा है । वह संवेदनशून्य बनता जा रहा है । स्वार्थ की वजह से वह अपनी खुशियों को भी भूल गया है । अपने छोटे-छाटे सुख किसमें हैं इसका विचार करने की क्षमता भी उसमें नहीं है । सबकुछ पाने की हवस में उसके हाथ से सब कुछ फिसलता जाता रहा है । इसके उदाहरण के रूप में सूर्यबाला की कई कहानियों को देखा जा सकता है । 'उत्सव' इसी प्रकार की कहानी है । विकास की ओर बड़ी तेज गति से अग्रसर होते हुए विश्व में मानवीय-मूल्य धीरे-धीरे अप्रासंगिक होते जा रहे हैं । हमारी जीवन आस्थाओं, पारिवारिक संबंधों, सहज मानवीय वृत्तियों को इस आधुनिकता तथा भौतिकता ने मिलकर अर्थहीन कर दिया है । जीवन की प्राथमिकताएँ बदल गयी हैं । मनुष्य स्वार्थ में अंधा बनकर निरंतर दुख की ओर बढ़ता जा रहा है । आज दीपावली जैसे अनेक पर्व मनुष्य को दुख से उबारकर खुशियों की ओर जाने से रह जाते हैं । वे खुशियों के पर्व न रहकर कुछ लोगों के लिए उपहारों की प्रतीक्षा के पर्व बन गए हैं । 'उत्सव' कहानी का प्रतिपाद्य विषय यही है । 'ब्यूटीफुल शॉट' कहानी के रवि को दंगे में कई जानें, जले हुए झोपड़ों की कोई परवाह नहीं है बल्कि उसे तकलीफ है कि उत्पादन रुक जाएगा और उसका असर उसके करियर पर पड़ेगा । मध्यवर्गीय रोशन का पूरा फायदा उठानेवाला रवि दंगों में उसकी मौत पर कंडोलेंस करने भी नहीं जाता । अपने पद को बनाए रखने के लिए दूसरों की जान की परवाह न करनेवाले लोग कितने निर्दयी होते हैं उसका वर्णन लेखिका ने किया है और ऐसे लोगों के प्रति पाठकों के मन में घृणा उत्पन्न की है । ऐसे लोगों के बारे में सोचने के लिए लेखिका पाठकों को प्रवृत्त करती है और ऐसे स्वार्थी लोगों से दूर रहने का संदेश देती है । आज स्वार्थ की वजह से ही विश्व में दौड़ जारी है जहाँ हर कोई दौड़ रहा है । ऊँचे से ऊँचे

पद पर आसीन होकर भी समाधानी नहीं बन पा रहा है । सूर्यबाला इसके कारण को समझाती हुई 'पूर्णाहुति' कहानी में लिखती है - "वजह शायद रोटी नहीं, बहुतसारी रोटियों की हवस है। हम बहुत सारी रोटियों पर बहुत सारा घी चुपड़कर, सबके हिस्से की रोटियाँ खुद हजम कर जाना चाहते हैं। पूरी जिंदगी सिर्फ रोटियाँ जमा करने की, बदहवास अफरातफरी में खो जाती है । तब जिंदगी का जश्न मने कैसे ? नहीं तो सोचो, जिंदगी की जरूरतें हैं ही कितनी ?"[१८] इन बातों को भूलते हुए मनुष्य अपनी जरूरतों से बहुत ज्यादा पाना चाहता है और अपना सुख-समाधान खो बैठता है ।

आज बेरोजगारी की समस्या भारत में इतनी जटिल है कि जिसकी तुलना अन्य किसी समस्या से नहीं की जा सकती । वर्तमान समय में शिक्षित युवकों में बेरोजगारी की समस्या दिनों दिन बढ़ रही है । आज के युवा के पास प्रमाण-पत्रों का सहारा है जिसे अक्सर निरर्थक साबित कर दिया जाता है और जिससे सार्थकता मिलनेवाली होती है वह सोने की छड़ी उसके पास नहीं होती, इसलिए वह बेकार होता है । छोटी-मोटी नौकरी भी बिना किसी सिफारिश के नहीं मिलती । परिवार में शिक्षित बेरोजगार युवक का जीवन कितना लाचार होता है, इसकी अभिव्यक्ति 'कंगाल' कहानी में हुई है । कथा-नायक के अनुसार बेरोजगारी एक लाचारी है । "बारी-बारी से सबके व्दारा हमेशा दुहराए जानेवाले सांत्वना, सहानुभूति भरे शब्द....बस जैसे लखावरी ईंटें हों, जिनके अंदर मैं अनचाहे चुनता चला जा रहा हूँ । आखिर कैसे मैं इतना असहाय, लाचार होता चला गया? सबके अपने-अपने ढंग हैं । किसी ने साग-भाजी मँगाने के बाद हिसाब नहीं लिया (मैं जबरदस्ती दे भी नहीं पाया हिसाब), किसी ने टेरालीन की मजबूत शर्ट ला दी, किसी ने इंटरव्यू के लिए जाते समय जबरदस्ती बीस रुपये थमा दिए । यह बेरोजगारी क्या, बस आर्थिक तंगहाली है ? नहीं, शायद एक ऐसी लाचारी, जिसने मेरे समूचे व्यक्तित्व का रस चूसकर मेरी पूरी-की-पूरी मानसिकता को पंगु बना बीच रास्ते में फेंक दिया है । मैं अब 'मैं' रह ही कहाँ गया ? फिर से दम घुटता

है और ऐसे क्षणों में यही जी चाहता है कि एक बार जोर से चीखकर अपने खोए हुए वजूद को पुकारकर देखूँ तो !”[१९] यह लाचारी आज के हर शिक्षित बेरोजगार व्यक्ति के जीवन में हम पाते हैं ।

विदेश में पढ़नेवाले और वहीं बसकर नौकरी करनेवाले लोगों के प्रति भारतीयों का एक विशेष दृष्टिकोण होता है । इसलिए अखबारों में इनकी आलोचनाएँ देखी जाती हैं । लेखिका के शब्दों में – “अखबारों में देश की ज्वलंत समस्या पर हेड लाइनें, संपादकीय या फिर विशेष रपटें...जिनका सारांश होता कि ‘यह अपने देश का दुर्भाग्य है कि इस मिट्टी में उपजे, पले और शिक्षाप्राप्त उच्च्व तकनीकी संस्थानों के मेधावी छात्र अपने देश में रहना ही नहीं चाहते । चिकित्सा-प्रबंधन और टेक्नोलॉजी के प्रायः सभी नामी-गिरामी संस्थानों में तो ये छात्र प्रवेश ही इसलिए लेते हैं कि जिससे विदेशी विश्वविद्यालयों में इनका एडमीशन सुनिश्चत हो जाए । काश! अपने देश की प्रगति और समृध्दि की दिशा में हमारे युवा सोच पाते ! ...”[२०] ‘मानुष-गंध’ के वैभव के माध्यम से लेखिका ने आज के उच्चशिक्षित युवाओं की त्रासदी को रेखांकित किया है, जो उच्चशिक्षित होकर अपने देश में रहना चाहते हुए भी भारत में उसके योग्य नौकरी एवं अनुकूल स्थितियाँ न होने की वजह से भारत छोड़ विदेश में जाने के लिए विवश हैं ।

नौकरी पाने वाले युवकों के लिए वह बचाकर रखने की समस्या होती है, ‘सुलह’ कहानी का कथ्य यही है। नायक अपनी नौकरी बचाए रखने के लिए अपने साहब का मन जितने की लाख कोशिश करता है लेकिन इसके बावजूद जब उसके सामने नौकरी पर रखे जानेवालों की लिस्ट लग जाती है तो अपना नाम नहीं है यह देखकर उसे विश्वास ही नहीं होता । “रख जानेवालों की लिस्ट लगाकर तीन बार पढ़ने के बाद भी उसे यही लगा कि उससे कोई गलती हुई है – उसका नाम लिस्ट में अवश्य होगा ...अवश्य होना चाहिए । एक बार तो मन में आया, किसी और से पढ़वाकर पूछे, पर हँसी उड़ाने की बात होगी । हालाँकि

छँटनीवालों की संख्या रखे जानेवालों से तीन गुनी अधिक थी पर उन पच्चीस तीस नामों को ही बार-बार पढ़ते-पढ़ते गरदन दुख गई तो वह आकर अपनी मेज पर बैठ गया । लिस्ट नोटिस-बोर्ड से उतरकर उसके दिमाग में टँगी थी अब; पर कोशिश करके भी वह उसमें अपना नाम नहीं ला पा रहा था ।"[२१] कई बार नौकरियाँ तो मिलती हैं लेकिन कब वह हाथ से निकाल जाए यह कहना मुश्किल होता है । कई बार कई कारणों से कंपनियाँ बंद पड़ जाती हैं या घाटे में जाने लगती हैं इसका सबसे बड़ा झटका मजदूर वर्ग को लगता है । जैसे ही ऐसा कुछ होता है, मजदूरों को काम से निकाल दिया जाता है । ऐसे में मजदूर अपनी नौकरी बचाने के लिए कुछ भी करने को तैयार होते हैं । 'खुशहाल' कहानी में कई मजदूरों को कारखाने से निकाला जाता है और बचे हुए मजदूर अपनी बारी की राह देखते हैं । कथा-नायक वर्मा को उनका सुपरवाइजर बेबात ही चाँटा मारता है । वर्मा का असल में यह अपमान है लेकिन वह उस अपमान को झेलने के लिए लाचार है क्योंकि उसकी नौकरी सुपरवाइजर के हाथों में थी । अपमान का बदला लेने से उसकी नौकरी हाथ से जाने का डर उसे था । ऐसी स्थितियाँ कहीं न कहीं हर नीजि कार्यालय में होती हैं । मालिक की नजर में बने रहना हर नौकरीपेशा व्यक्ति की त्रासदी है ।

अपनी नौकरी की जगह प्रमोशन पाने के लिए लोगों की होड़ तो लगी ही रहती है । प्रमोशन पाने के लिए लोग चापलूसी करते हैं। सामान्य ईमानदार आदमी अपने काम के बलबुते पर प्रमोशन पाना भी चाहे तो आज की होड़ में वह वही का वही रह जाता है । 'इसके सिवा' कहानी में सूर्यबाला ने इसी सत्य की ओर संकेत किया है । प्रस्तुत कहानी का नायक ईमानदारी से काम करता है और प्रमोशन की राह देखता है - "मिस्टर गुप्ता की जानलेवा विमान दुर्घटना के साथ ही पापा को सारा माहौल धुँधलाता नजर आने लगा था । चारों ओर मैनेजर की कुरसी को लपककर हथिया लेने की होड़ लग गई थी । हर कोई हर किसी का सुराग ले रहा था । हर किसी पर घात लगा रहा था । सब अपनी-अपनी दूरदृष्टि आजमाने

में व्यस्त थे और पापा इन सबसे अलग सिर्फ काम किए जा रहे थे ।"[२२] 'संताप' कहानी में चापलूसी करके ही हेमंत प्रमोशन पर प्रमोशन हासिल करता जाता है । अपने साहब के ऑफिस के साथ-साथ उसके घर के भी सारे काम वह करता है - "साहब के घर बाथरूम ठीक कराते हुए । साहब के घर होनेवाले डिनर का इंतजाम कराते हुए। इम्तहान के दिनों में साहब के बच्चों की मैथ ठीक कराते हुए । मैडम के लिए सिरदर्द की गोलियाँ लाते हुए...और उन्हीं के हाथों से एक दिन वे क्लर्की से अफसरी में तबदील हो जाने का ऑर्डर भी ले आए थे । उसे हाथों में लिये-लिये झूमकर तानाशाह की तरह बोले थे - 'इसे कहते हैं जीवट और लगन । आज तक किसी को इस ऑफिस में क्लर्की से अफसरी का दर्जा नहीं दिया गया ।"[२३] प्रमोशन पाने के चक्कर में कई लोग अपने चरित्र से इतने गिर जाते हैं कि अपनी मानवीयता भी खो बैठते हैं ।

अभिजात लोग शोषित वर्ग का पहला निशाना रहा है । पर कहीं न कहीं यह वर्ग भी अपने मैनेजमेंट के हाथों की कठपुतली होता है, वह इतना दयनीय और लाचार होता है कि उसका अनुमान केवल वही लगा सकता है । 'दरारें' कहानी इसी का उदाहरण है । स्वयं सूर्यबाला के शब्दों में "फैक्टरियों, मिलों में कोई अपनी इच्छा से नहीं लड़ रहा, पर कहीं सब लड़ने के लिए मजबूर हैं । इसलिए दरारें बढ़ रहीं हैं- कहीं व्यक्ति के स्वार्थ लड़ रहे हैं, कहीं वर्ग के ।"[२४] समय बड़ी क्रूरता से मानवीय संवेदनाओं को बंजर बनाता जा रहा है । लोग अपने कार्यालयों में प्रमोशन पाने के लिए जी जान से कोशिशें करते हैं । एक दूसरे का पैर खिंचते हुए ऊँचे पद पर पहुँचना चाहते हैं । ऐसा करते हुए ना ही वे अपना, अपने परिवारवालों का खयाल रख पाते हैं और ना ही दूसरों का । 'रेस' कहानी में इसी बात का रेखांकन हुआ है । इस कहानी में सफलता की सीढ़ियाँ लाँघते हुए दौड़ने वाले नायक को अपनी मौत का सामना करना पड़ता है। अपने कैरियर की होड़ में आज का मनुष्य अपने जीवन के छोटे-छोटे सुखों से दूर जा रहा है और अपना लक्ष्य पाने तक वह भूल भी जाता

है कि छोटे से छोटे सुख कहाँ से पाए जा सकते हैं, क्योंकि तब तक वह सफलता की इतनी सीढियाँ चढ़ चुका होता है कि वहाँ से उतरकर नीचे आना उसके लिए आसान नहीं होता जहाँ छोटे-छोटे सुख फैले होते हैं । 'चोर दरवाजे' कहानी इसी बात को अभिव्यक्त करती है। ऑफिस में सीढियाँ चढ़ते जानेवाले लोगों के अहसासों को अभिव्यक्त करती हुई लेखिका लिखती है - "ऑफिस में ढेर सारी चुनौतियाँ। चुनौतियों की बल्लियाँ और इन बल्लियों की सीढ़ियाँ बनाकर चढ़ते चले जाना । ऊपर, बहुत ऊपर । हर बार लगता था, यह आखिरी सीढ़ी है । बस यह वाली - लेकिन ऊपर पहुँचकर दिखता कि अरे अभी तो एक-दो और हैं । जब उतनी चढ़े तो एकदम आखिर की एकाध क्यों छोड़ी जाए ? लो भई, जोर लगाके हइश्शा.....लेकिन उनपर पहुँचकर अभी उखड़ी साँसें भी न समेट पाते कि आँखें फटी-की-फटी रह जातीं यह देखकर कि अरे यह किस माया-मंतर से दो सीढ़ियाँ और जुड़ गईं।"[२५] इतना सहकर उपलब्धियों के अंबार जुटाती चले जानेवाले लोग भी क्या समाधानी हो सकते हैं? सुखी हो सकते हैं ? 'चोर दरवाजे' की नायिका कहती है -"धीरे-धीरे भीड़ छँटकर तितर-बितर होती चली गई थी । फिर एक सन्नाटा-सा । सिर्फ हम और हमारी सीढ़ियाँ । या कहें कि अलग-अलग, अपनी-अपनी सीढ़ियों पर हम दोनों । बहुत ऊपर से नीचे का कुछ साफ, स्पष्ट दीखता भी नहीं । हम ऊपर चढ़ते गए, नीचे का सब कुछ धुँधलाता गया। खट्टे-मीठे, रूठते-मनाते, खीजते-इठलाते, सारे के सारे सच भी ।"[२६] जीवन में केवल धन से सुख प्राप्ती नहीं होती उसके लिए अन्य बहुत सारी चीजों की आवश्यकता भी होती है, जो धन से प्राप्त नहीं हो सकती, इसकी ओर लेखिका संकेत करती है ।

अपनी नौकरियों की जगह पर प्रमोशन पाने के लिए अपने बॉस की चापलूसी करने वाले लोग कितने अमानवीय बन सकते हैं, इसका बयान सूर्यबाला की 'तोहफा', 'पराजित' एवं 'संताप' कहानियाँ करती हैं।

पाने की वजह से अविवाहित रह जाती है । अपने अविवाहित जीवन को स्वीकारने के बाद भी उस पर शादी करने के लिए घरवालों द्वारा दबाव ड़ाला जाता है क्योंकि उस की छोटी बहन की शादी रूकी हुई है । सामाजिक मर्यादाओं की वजह से उसके पिता चाहते हैं कि उसकी शादी छोटी लड़की की शादी से पहले हो । उसके पिता कहते हैं –"बड़ी बहन ऐसी ही रहे और छोटी बहन की शादी हो, यह सब जरा कुछ....मेरा मतलब है, मेरे और तुम्हारी माँ के गले से ही न उतर पा रहा । वैसे भी लोग कुछ–का–कुछ उड़ाते ही..."[२७] इस तरह से उसकी शादी के लिए उसके माँ–बाप विधूर लड़के का प्रस्ताव लेकर जाते है । ऐसी घटनाओं से लगता है कि आज विवाह करना एक सामाजिक औपचारिकता बनकर रह गयी है और अविवाहित लड़की एवं उसके परिवारवालों को भारतीय समाज चैन से जीने नहीं देता ।

समाज में अमीर और गरीबों के बीच खाई की वजह से मन में होते हुए भी विवाह में बाधा उत्पन्न होती है। आज विवाह से पहले लोग वर और वधू के गुणों को देखने से पहले उनकी

आर्थिक स्थिति को देखते हैं । 'वे जरी के फूल' की रुक्की का विवाह इसलिए नहीं हो पाता कि वह अनाथ है और शादी के लिए दहेज जुटाने में अक्षम है । ऊपरी तौर पर बहुत सहानुभूती दिखाने पर भी आज का शिक्षित समाज गरीब लड़कियों को पत्नी या बहु के रूप में स्वीकार करने में हिचकिचाता हैं । आजादी के उपरांत समाज में बहुत सारे बदलाव आए हैं लेकिन जो सामाजिक कुरीतियाँ थीं वह कम मात्रा में ही सही लेकिन आज भी हमारे समाज में उपस्थित हैं । दहेज प्रथा का सारे लोग ऊपरी तौर पर विरोध करते हैं लेकिन जब उनकी बारी आती है तब शिक्षित एवं सभ्य कहलानेवाले लोग भी शादी में दहेज लेने से पीछे नहीं हटते । 'पूर्णाहुती' कहानी में दहेज की समस्या की वजह से सभ्य, शिक्षित एवं संस्कारशील लड़की की विदाई होने से रूक जाती है । उसके पिता का विश्वास था कि किसी सुसंस्कृत घराने में उसकी बेटियाँ सतत काम्य और अभिनंदित होंगी । अपनी पत्नी को विश्वास दिलाते हुए वह कहता है – "गुणों की खान और शुभ संकल्पों की पिटारियों-सी मेरी बच्चियाँ बड़े आदर-मान से ले जाई जाएँगी ।... और फिर जब तक ये बड़ी होंगी, देख लेना, सभ्य समाज में 'दहेज' शब्द ही वर्जित बल्कि निषिद्ध हो जाएगा ।....इतने उद्बोधन, जागरण और ज्ञान-विज्ञान के आलोक में ओछी प्रवृत्तियाँ खुद ब खुद भस्मीभूत हो जाएँगी।"[२८] इसी विचारों के सपने बुनता हुआ वह अपनी बेटियों को सुशील बनाता है, लेकिन समाज में ऐसा कोई बदलाव नहीं आता तब वह हताश हो जाता है । लेखिका लिखती है – "सचमुच सिर्फ कुछ वर्षों बाद ही मित्रों, हितैषियों के बताए जिन-जिन संभ्रांत, सुसंस्कृत कहे जाने वाले परिवारों में वह अपनी बेटी के विवाह का प्रस्ताव लेकर गया, वहाँ के लोग बेटी की शिक्षा-दीक्षा, गुण और सौंदर्य से पहले सीधे उसकी हैसियत के बारे में पूछते । उसकी जमीन-जायदाद और चल-अचल संपत्ति का पूरा ब्योरा चाहते । 'हैसियत' शब्द बहुत जल्दी उसकी औकात में तब्दील हो उसे निरुपाय कर जाता और वह वापस हो लेता ।"[२९] एक स्वाभिमानी लड़की का पिता अपने उसुलों के यज्ञ में अपनी बेटी की पूर्णाहुती नहीं देना

चाहता । इसके लिए वह बारातियों के सामने झुक जाता है, लेकिन उसकी बेटी अपने पिता को टूटने नहीं देती । शुक्लाजी व्दारा मामला सुलझ जाने की बात जानने पर अपनी बेटी को समझाने वाले अपने पिता से कहती है –" ऐसे नहीं, मुझे, मेरे उन्नत शिर, सीधी आँखों वाले पिता का आदेश चाहिए ।....मुझे डर है, कहीं मैं कुछ प्राप्तियों के ऐवज में अपना पिता ही न खो दूँ....विश्वास दिलाइए, नहीं खो रही न !...देखिए, एक बात मैं आपसे साफ–साफ कहे देती हूँ, मैं सारे नुकसान बरदाश्त कर सकती हूँ लेकिन इतने वर्ष साथ रहा वह पिता नहीं खोना चाहती, किसी कीमत, किसी शर्त पर...उलटे अपना सब कुछ दाँव पर लगाकर भी यह बेटी अपना पिता अपने पास सुरक्षित रखना चाहती है....समझे आप !"[३०] और बीच बचाव कर समझौता करानेवाले शुक्लाजी से यह कहने को कहती है कि "उन लोगों से जाकर कह दें... हमारी भूल या गलतियों के लिए क्षमा... उन्हें जरा भी जल्दबाजी की जरूरत नहीं – वे लोग अपने आप को मुक्त समझें । बेशक हम प्रतीक्षा करेंगे उनकी, जब तक वे चाहें... और यह भी कि हमारे मन में कोई रंज नहीं।.."[३१] इस तरह की स्वाभिमानी लड़कियाँ आज हमारे समाज में हैं जो अपने माता-पिता के दर्द को समझती हैं और उनके स्वाभिमान को ठेस न पहुँचाते हुए कई बार अकेले रहने का निर्णय लेती हैं।

आज समाज और परिवार अपने जातीय मूल्यों और मान्यताओं से मुक्त नहीं हो पाया है । उसके लिए सबसे बड़ी बात यही होती है भले ही उसमें किसी का जीवन नष्ट हो जाए । 'कौमुदी : एक प्रश्न' में कौमुदी इन्हीं परंपराओं और रूढ़ियों का विरोध करती है और उनके खिलाफ जाती है । कौमुदी के पिता दहेज देने के लिए तैयार थे लेकिन उस लड़के को स्वीकारने को तैयार नहीं थे जिसने कौमुदी का हाथ खुद माँगा था । इसलिए देखने आने वाले लड़कों से उपेक्षित कौमुदी अपने प्रिय का हाथ थामती है और अपने ही लोगों की दुश्मन बन जाती है । आज भी समाज में दहेज-प्रथा, अनमेल विवाह की समस्या बनी हुई है। प्राचीन काल में अपनी बेटी को अपना घर बसाने के लिए विवाह के दौरान आवश्यक

चीजें बड़ी आत्मीयता से उसके घरवाले देते थे। धीरे-धीरे वर पक्ष वधू पक्ष पर दबाव डालकर वह चीजें या पैसे उनसे हड़पने लगा और इस तरह से बड़े प्रेम से दी जाने वाली चीजें दहेज के रूप में देने की प्रथा शुरू हो गयी । आगे जाकर यह प्रथा वधुओं के विवाह के लिए बोझ बन गयी और इसके विरोध में अनेक कानून बन गए लेकिन आज भी कई लोग विवाह के पहले दहेज की माँग करते हैं । इसकी वजह से जिन लोगों के पास वर पक्ष को देने के लिए दहेज न हो तो उसका विवाह कई बार होने से रह जाता है । आज के समाज में यह भी देखने को मिलता है कि दहेज प्रथा का रूप बदल रहा है । पहले केवल पैसे तथा सोने की माँग की जाती थी लेकिन आज अनेक वस्तुओं तथा अपने करियर के विकास को दृष्टि में रखकर अनेक संभावनाओं को देखा-परखा जाता है और वधू पक्ष के परिवारवालों से संभावनाओं की पूर्ति की आशंका से विवाह तय हो रहे हैं । इस ओर भी सूर्यबाला ने अपनी 'पुल टूटते हुए' तथा 'न किन्नी न' जैसी कहानियों के माध्यम से संकेत किया है ।

आज भी भारतीय समाज में अंतर्जातीय विवाह करने में बाधाएँ उपस्थित होती हैं । जो प्रेमी

युगल भागकर शादियाँ करते हैं उन्हें उनके घरवालों का विरोध सहना पड़ता है । आज कुछ उच्चशिक्षित युवक भी इन समस्याओं को सुलझाने में लाचारी महसूस करते हैं क्योंकि उनके माता-पिता के सामने उनका कुछ नहीं चलता।

प्रेम मानव को मानव से जोड़कर रखनेवाला भाव है । प्रेम मनुष्यता को बचाने वाला भाव है। मानव के जीवन में प्रेम के अनेक रूप देखने को मिलते हैं । परिवार में अनेक संबंधों के बीच का प्रेम ही परिवारवालों को एक-दूसरों के साथ बाँधकर रखता है । इस प्रेम के अभाव में पारिवारिक संबंध चिरस्थायी नहीं रह पाते। प्रेम का एक अन्य रूप भी भारतीय समाज में दिखायी देता है । प्राचीन काल से भारतीय साहित्य में विवाह पूर्व प्रेम की कहानियाँ पढ़ने को मिलतीं हैं । हिंदी साहित्य में तो आदिकाल से समकालीन दौर तक के साहित्य में इस प्रकार की प्रेम कहानियाँ बहुत सारी मिलती हैं। समाज में कई सारे प्रेम विवाह होते हैं । कुछ

सफल होते हैं तो कुछ असफल । बहुत बार पारिवारिक बाधाओं के कारण प्रेमियों के विवाह नहीं हो पाते ऐसे समय में उन प्रेमियों के जीवन पर इसका गहरा प्रभाव होता है । कई बार प्रेमी युगल में से कोई एक, दूसरे को जब धोखा देता है तब भी उस व्यक्ति के जीवन पर इसका प्रभाव पड़ता है । आज की दुनिया में इस प्रकार की बातें बहुत बड़ी मात्रा में हो रही हैं । इसका असर व्यक्ति, उसका परिवार और फिर समाज पर निश्चित रूप से होता है, इससे गंभीर समस्याएँ उभर रहीं हैं । आज हम देखते हैं कि कई सारे लोग प्रेम में धोखा खाकर आत्महत्याएँ करते हैं । कई प्रेमी युगलों के जब विवाह नहीं हो पाते तब वे एक तो आजन्म अविवाहित रहने का निर्णय लेते हैं या अन्य किसी से विवाह करने के बाद भी अपने पहले प्रेम को कभी भूला नहीं पाते। इससे अन्य समस्याओं का जन्म होता है । ऐसे में प्रेम जैसा पवित्र भाव सामाजिक समस्याओं का कारण बनने लगा है ।

यौवनावस्था में उपजा हुआ प्रेम जब असफल होता है तो उससे उभरने के लिए कई सारे प्रयास करने पड़ते हैं । सूर्यबाला की कई कहानियों में असफल प्रेम का चित्रण आया है तो कई में प्रेम का आभास मात्र दिखायी देता है । 'अविभाज्य' कहानी में यौवनावस्था में उपजा हुआ प्रेम दाम्पत्य जीवन पर किस तरह प्रभाव डालता है, इसका चित्रण आया है । 'कतारबंद स्वीकृतियाँ' असफल प्रेम की कहानी है । इसमें स्थित नायिका और उसका प्रेमी एक-दूसरे के साथ विवाह करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हो जाते हैं और प्रमी के चले जाने के बाद नायिका उसकी राह में जिंदगी गुजारती है । एक दिन नायक विश्वम् एक विनयी, शिष्ट और विवेकी युवक बनकर लौटता है और नायिका को कहता है - "वह सब भूल जाओ उस उम्र में मुझको समझ ही कहाँ थी ! अब हमें अपने माँ-बाप की बात मानकर चलना चाहिए, मुझे तो अभी बहुत आगे बढ़ना है ।.........अब तुम्हें और अधिक मेरी प्रतीक्षा करने की जरूरत नहीं, बहुत नासमझी की तुमने !"[३२] इस तरह से असफल प्रेम की शिकार ईसाई धर्म में दीक्षित सिस्टर एंसी के मन में शादी कर घर बसाने की मंशा अब भी है, लेकिन अब वह

ऐसा नहीं कर सकती । उसके मन में सिंधु के पिता के प्रति लगाव उत्पन्न होता है, लेकिन अब वह अपने धर्म के प्रति प्रतिबध्द है । कहानी में लेखिका ने उसकी दोलायमान स्थिति का वर्णन किया है । 'मानसी', 'मुँडेर पर', 'पीले फूलों वाली फ्रॉक', 'कागज की नावें,चाँदी के बाल', आदि कहानियों में प्रेम का सात्विक रूप सामने आया है । वहाँ नायक और नायिका के मन में एक-दूसरे से कोई अपेक्षाएँ नहीं है । बस अपनी यौवनावस्था की प्यारी स्मृतियों को उजागर करती हुई ये कहानियाँ हैं । 'बिन रोई लड़की', 'उजास' एक तरफा असफल प्रेम की कहानियाँ हैं । 'बिन रोई लड़की' सुंदर, सुशील होने के बावजूद अपना प्रेम पाने में असफल हो जाती है । 'उजास' की मारिया अपने असफल प्रेम की वजह से संवेदनशून्य हो जाती है । इतनी कि अपने माता-पिता के साथ निष्ठुरता से पेश आती है । जीवन की छोटी-छोटी खुशियाँ भी उसे अर्थहीन महसूस होती हैं । अपने प्रेमी से धोखा खाने पर मारिया का जीवन नीरस बन जाता है । उसे उन सारी जगहों से नफरत होती है जहाँ बैठकर उन्होंने सपने देखे थे । उसे वे सारे कार्य अर्थहीन लगते हैं जिनमें सामान्य मनुष्य को सुख नजर आता है । वह एकदम कठोर हो जाती है । यह कठोरता असफल प्रेम का ही परिणाम है । कहानी के अंत में इस कठोरता को एक बच्ची की कोमलता ही तोड़ने में सफल होती है । इस प्रकार से प्रेम मनुष्य के जीवन को सुखी भी बनाता है और दुखी भी बना सकता है। मारिया की मनोवैज्ञानिक स्थिति का लेखिका ने मार्मिक वर्णन किया है । 'कागज की नावें, चाँदी के बाल' कहानी में स्थित बच्चों को इसलिए एक-दूसरे के साथ खेलने नहीं दिया जाता कि वे अर्थ की दृष्टि से अलग-अलग वर्ग से हैं । कहानी की नायिका शादी के बाद भी अपने उस बचपन के साथी को नहीं भुला सकी जिसके साथ खेलने को भी उसके घर से मनाही थी । 'मानसी' सूर्यबाला की एक लंबी कहानी है जिसमें एकतरफा प्रेम जैसी बेनाम भावनाओं का वर्णन आया है । नायक का कंणा से और आगे जाकर कंणा की बेटी किरण का नायक के प्रति लगाव जैसी अनाम भावनाओं का त्रिकोन

कहानी में बना है । सूर्यबाला के अनुसार ये अनाम भावनाएँ ही हैं जो उन्हें एक-दूसरे के करीब लाती हैं । लेकिन कहानी पढ़ते समय ऐसा महसूस होता है कि ये अनाम भावनाएँ वास्तव में एक-दूसरे के प्रति आकर्षण है । पहले नायक का कंणा के सौंदर्य के प्रति आकर्षण है और बाद में किरण का नायक के प्रति । आकर्षण की वजह से बनी ये स्थितियाँ किरण एवं नायक के व्यक्तित्व को निश्चित रूप से प्रभावित करती हैं । 'क्रॉसिंग' कहानी भी नायक एवं एक महिला के बीच आकर्षण की कहानी है । महिला का सिग्नल क्रॉसिंग पर हररोज दिखना, उसके सौंदर्य पर नायक का मोहित होना और कहीं मन में उसके प्रति कोमल भावनाओं का जगना आदि का वर्णन लेखिका ने बड़ा सुंदर किया है । उस महिला का सिग्नल क्रॉसिंग पर न दिखना नायक को दुखी तो करता है लेकिन उसके दम्पति जीवन में नयी उमंग भर देता है । यह उसका किसी अन्य महिला के सौंदर्य के प्रति प्रेम है इसलिए इससे किसी का नुकसान नहीं होता बल्कि इससे निराश नायक और नायिका के जीवन में फिर से उल्हास निर्माण होता है । सूर्यबाला का मानना है कि उनकी "प्रेम कहानियाँ परिभाषित प्रेम कहानियों की श्रेणी में पूरी खरी नहीं उतरती । ऐसी अधिकांश कहानियों में प्रेम की जगह प्रेम का आभास मात्र है और शेष जीवन के लिए एक स्मृति भर। यह स्मृति किंचित अवसादी होने के बावजूद तृप्तिकर और सात्विक दोनों है । साथ ही जीवन को रीतती नहीं बल्कि पूरती है, समृध्द करती है अपनी अनुभूति से ।"[२२]

सूर्यबाला ने अपनी कहानियों में अंतर्जातीय विवाहों से लोगों की मानसिकता में आनेवाले बदलाओं की ओर भी संकेत किया है । 'गुजरती हदें' कहानी में विदेशी लड़की से विवाहित बेटे को न स्वीकारने वाली माँ उसके घर आने पर उसे कहती है - "तू ले तो आ, मैं उसे आँखों की पुतली सी सहेजकर रखूँगी । यहाँ भी तो जमाना बदल गया । रोशनलाल के बेटे ने भी तो जात-बाहर शादी की है । इधर से ही तो निकलता है फटफटी (स्कूटर)

पर अपनी बीवी बिठाए । तुझे काहे की सरम !"[३४] आज समाज में अगर देखा जाए तो अनेक प्रेम विवाह अंतर्जातीय विवाह ही होते हैं ।

आज विवाह में आनेवाली अनेक समस्याओं की वजह से अधिकतर युवा वर्ग अविवाहित रहना पसंद करता है । उपर्युक्त अनेक समस्याओं की वजह से कई लोगों की शादी होने से रह जाती है और कई युवक-युवतियाँ शादी के साथ आनेवाले अनेक बंधनों से मुक्त होकर जीना पसंद करते हैं । 'पुल टूटते हुए' की नायिका अकेली रहकर अन्य लोगों से, जिम्मेदारियों से मुक्ति का अनुभव करती है - "इसी तरह अब सीधे-सीधे सबकुछ झाड़ देने की आदत सी पड़ गई है । झाड़-झूड़कर निश्चिंत हो जाती हूँ - एक बोल्ड व बेबाक लड़की की तरह, जिसे तकिए पर सिसकती, अँसुआती, पालतू सी जिंदगी से चिढ़ है । जिसे न दाल में नमक कम या सब्जी में रसा ज्यादा हो जाने का अंदेशा रखना पड़ता है, न गई रात तक ओवरटाइम कर थककर आए किसी के लिए जमकर खाना गरम करना पड़ता है । एकदम अपनी मरजी की सुलझी, सपाट जिंदगी, खाने-पीने, सोने-जागने किसी भी बात के लिए कोई बंदिश ही नहीं ।"[३५]

३.१.८ शोषण से संबंधित समस्याएँ

आज का मनुष्य बहुत स्वार्थी बन गया है । अपने स्वार्थ के सामने उसे दूसरों की तकलीफ दिखायी नहीं देती। शोषक वर्ग आदि काल से निम्न वर्ग का शोषण करता आया है । आज अपने समाज में इतने सारे सुधारों के बावजूद निम्न वर्ग की स्थिति वैसे की वैसे ही है । उच्च वर्ग के व्दारा निम्न वर्ग का शोषण कार्य जारी है। 'फरिश्ते' कहानी इसी का उदाहरण है । 'सिंड्रेला का स्वप्न', 'अंतरंग', 'जेब्रा' जैसी कहानियाँ बालमजदूरों के शोषण की समस्या को उजागर तो करती ही हैं साथ ही उनकी मजबूरी का फायदा उठानेवाले उच्च-वर्ग की शोषक मानसिकता का चित्रण भी करती है । 'गीता चौधरी का आखिरी सवाल' कहानी में तो गीता का उसके घरवालों व्दारा ही शोषण होते हुए हम देख सकते हैं । शिक्षा के क्षेत्र में

उसके प्रचार-प्रसार के लिए इतने सारे आंदोलन हुए लेकिन आज भी उसकी ओर संकुचित नजरों से देखा जाता है यह आज के समाज की विड़ंबना है । लड़कों को शिक्षित करना और लड़कियों को शिक्षा से वंचित रखना यह उनपर किया गया अन्याय है । ऐसा अन्याय न होने देना हर एक माता-पिता का कर्तव्य है । आज एक ओर लड़कियाँ पढ़-लिखकर ऊँचे ओहदों पर आसीन हैं और दूसरी ओर उन्हें केवल इसलिए थोड़ी बहुत शिक्षा दी जाती है कि वे उन डीग्रियों का उपयोग शादी तय करने के लिए कर सकें । यह स्थिति बदलनी आवश्यक है । 'विजेता' कहानी एक ओर से शोषित और शोषकों के संबंधों की वास्तविकता प्रकट करते हुए सभी लोगों को अपने आप में झाँकने को विवश करती है, क्योंकि शोषण की प्रक्रिया में कहीं न कहीं सूक्ष्म रूप से हम भी शामिल हैं ।

आज हम देखते हैं कि भारतीय समाज में बच्चों के साथ-सथ बड़े लोगों का भी शोषण हो रहा है । पुरुष हो या स्त्री कोई भी शोषण की प्रक्रिया से नहीं छूट पाया है । सूर्यबाला की 'खुशहाल' कहानी कंपनी में होनेवाला कर्मचारियों के शोषण की प्रक्रिया का पर्दाफाश करती है। कथा-नायक कंपनी में होनेवाली छँटनी से डरकर शोषण के खिलाफ आवाज उठाने से रह जाता है । अपने सुपरवाइजर से चाँटा खाकर भी खामोश रहता है तो केवल इसलिए कि कंपनी की छँटनी की लिस्ट में उसका नाम शामिल न हो । इसके अलावा कंपनियों में अपनी नौकरियों को बचाने के लिए की जाने वाली कोशिश के बारे में लेखिका लिखती है- "इधर के, नये बने, अलिखित नियम-निर्देशों में तो और भी बहुत कुछ । मसलन, अपना पेट काटकर, नौकरी पर बने रहने के लिए वेतन का एक निश्चित हिस्सा, निश्चित साझीदारों को पकड़ाते चले जाना । वे जितने पर दस्तखत लें, जो, जितनी रकम काटें, पकडाएँ, चुपचाप थामते चले जाना । तकाजा होने पर और भी जो चीजें थमायी, सौंपी जा सकती हैं, थमाओ, सौंपो । जल्दी करो । मियाद बहुत थोड़ी मिलती है । इसलिए धन, जन, अस्मत, आत्मा, असूल, गैरत सब सजाकर रख दो, जो भी तुम्हारे ऊपर का अफसर हो, उसके सामने । तब

कहीं एक ठीक-ठाक जिंदगी जी ले जाने का परमिट हासिल किया जा सकता है ।"[३६] गरीब, अज्ञानी लोगों का होता हुआ शोषण तो आए दिन की बात होती है । 'विजेता', 'रहमदिल' जैसी कहानियों से सूर्यबाला ने इसका पर्दाफाश किया है । 'रहमदिल में रेल यातायात के दौरान टी.सी व्दारा किया जानेवाला शोषण और इससे अनजान, बेखबर अपने शोषकों को दुआएँ देनेवाले गरीब, अज्ञानी जनता का बड़ा मार्मिक चित्रण सूर्यबाला ने अपनी इस कहानी में किया है । रहमत अली के माध्यम से लेखिका लिखती है - "एक बार आठ घंटे लाइन में खड़े होकर रिजर्व टिकट लिया था, फिर भी ट्रेन में जाने क्यों वापस टिकट बना । वैसे टिकट बाबू नेकदिल था, जो बीस-बीस रुपये में सीट पक्की कर दी । असगरी (बेटी) के दस लिये । यों असगरी को सीट कहाँ, लेकिन टिकट बाबू ने समझाया कि भाई मेरे, डिब्बे में सफर तो कर ही रही है न ! और बच्चों का बस नाम ही होता है, सब कुछ तो बड़ों जैसा ही बरतते हैं बच्चे ! यह सब कायदे-कानून की बातें एक किनारे कोने में उसे ले जाकर समझाया टिकट बाबू ने और पचास की नोट सरकाकर कहा कि भइए, वह टिकट कच्चा था, अब ये पक्का बना ।

खैर, यह तो सभी कह रहे थे कि टिकट बाबू रहमदिल तो है । सबसे एक रेट, बीस-बीस रुपये ही लिये, नहीं तो पिछले के पिछले बरसवाला ऐसा जालिम कि सोच के झुरझुरी चढ़ आवे; तीस-तीस, चालीस-चालीस से नीचे बात ही नहीं, ऊपर से जवाब-तलब करो तो एक मुँह हजार गाली । साले-हरामखोर करता एक-एक को धकियाता, डिब्बे से नीचे फेंकता जाता, जैसे इनसान नहीं, गाजर-मूली की बाल्टियाँ हों । एकदम अगिया बैंताल की तरह एक दरवाजे से चढ़ा और कुहराम मचाता दूसरे दरवाजे से उतर गया ।"[३७] कहानी में रहमत को रेल का टी. सी. उसका टिकट लेकर पुलिस के साथ मिल जाता है और टिकट नकली है कहकर, पुलिस को पकड़वा देता है । पुलिस उसे डरा-धमकाकर उससे ढेर सारे रुपये ऐंठते हैं । छुटा हुआ रहमत अपनी बीवी-बच्ची के साथ आकर ट्रैन में बैठकर कहता है -

"अल्लाताला की बड़ी मेहरबानी....कि बेदाग बच आया, नहीं तो फँसा बड़ी बुरी तरह था कानून के सिकंजे में....वो तो पुलिसवाला रहमदिल निकला, जो छुड़वा दिया बेचारे ने - अल्ला भला करे उसका ।[३८] अज्ञानी जनता शोषकों के शिकंजे में कैसे फँस जाती है यह लेखिका ने स्पष्ट किया है । इस कहानी में गरीब का होनेवाला शोषण, आज की यातायात की व्यवस्था में शोषण प्रक्रिया को अभिव्यक्त करता है ।

नौकरियों की जगह या घरों में भी कहीं न कहीं महिलाओं का शोषण होता रहा है । आज महलाओं के शोषण के विरोध में कई सारे कानून बने हैं लेकिन क्या सभी महिलाएँ अपने अधिकारों का उपयोग कर पाती हैं ? जहाँ पर घर में शोषण का सवाल है, वह तो अप्रत्यक्ष रूप में भी होता है । उसके लिए सबूत कहाँ से जुटाए वह ? और उससे फायदा ? लोगों को खिल्लियाँ उड़ाने के लिए मसालों का एक जुगाड़ ! कई सारी महिलाएँ नहीं आवाज उठा सकती अपने शोषण के खिलाफ । सूर्यबाला की लेखनी से चित्रित पारंपारिक महिलाएँ तो निश्चित ही नहीं । 'सीखचों के आर-पार' कहानी में ऐसी ही महिलाओं के अनुभवों का चित्रण आया है। नौकरी करनेवाली महिला का घर से निकलकर बस से जाते हुए बस में, नौकरी की जगह, घर में हर कहीं शोषण होता है जबकि नौकरी न करने वाली महिला का घर में ही शोषण होता है । आज महिलाओं के शोषण की प्रक्रिया हर कहीं जारी है । विद्रोह करनेवाली या आवाज उठानेवाली महिलाओं के शोषण का पता चलता है लेकिन चुप रहकर सहनेवाली महिलाओं की कठिनाईयों को कौन जाने !

३.१.६ भ्रष्टाचार से संबंधित समस्याएँ

आज समाज का ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं बचा है जहाँ तक भ्रष्टाचार न पहुँचा हो । हर जगह उसने अपने पैर फैलाए हैं । आज जो भी उसका विरोध करता है, समाज उसी को बहिष्कृत करता है । 'मुक्ति-पर्व', 'होगी जय, होगी जय....हे पुरुषोत्तम नवीन !' एवं 'हाँ लाल पलाश के फूल नहीं ला सकूँगा' जैसी कहानियाँ इसी का उदाहरण हैं । 'मुक्ति-पर्व' में

एस.के. को ईमानदारी से काम करने और दूसरों को भी पैसे न खाने देने की वजह से उन पर कई आरोप किए जाते हैं, जैसे– "वे इंस्टिट्यूट का पैसा अपने व्यक्तिगत प्रयोगों पर लगा रहे हैं । वे प्रयोगों के नाम पर अपना घर विदेशी उपकरणों से भर रहे हैं । वे मनमानी नियुक्तियाँ कर इंस्टिट्यूट को राजनीति का अखाड़ा बना रहे हैं । वे अन्य वैज्ञानिकों व्दारा किये गये प्रयोगों और शोधों पर अपने लेबल लगा रहे हैं । उनके श्रम पर ख्याति और यश अर्जित कर रहे हैं ।"[३६] इन्हीं आरोपों के आधार पर उन्हें सस्पेंड किया जाता है । कहानी में स्थित एम.डी. मनचंदा जैसे कई सारे लोग हमारे समाज में आज मौजूद हैं जो बिना काम किए प्रसिध्दि पाना चाहते हैं । जो दूसरों के श्रमों से ख्याती अर्जित कर अमर होना चाहते हैं, जिनकी वज़ह से एस.के. जैसे लोग 'सफर' करते हैं । 'होगी जय, होगी जय....हे पुरुषोत्तम नवीन !' में फॉरेस्ट में काम करनेवाले अरुण वर्मा को एम.एल.ए. के भतीजे का लकड़ियों का ट्रक पकड़ने और मामला रफा-दफा न करने की वजह से सस्पेंड किया जाता है। अरुण वर्मा का परिचय देते हुए लेखिका लिखती है– "उत्तेजना की लपटें तो फैलती हैं

जब अरुण वर्मा कोई ट्रक पकड़ते हैं ! क्योंकि पकड़ते हैं तो किसी हालत में छोड़ते नहीं । दूसरे उनके ट्रक पकड़ने पर न मटन-पुलाव बन पाता है, न चिकन-बिरयानी; उल्टे फफ्तों, पखवारों सनसनी, हलचल, इंक्वायरी, बैठकें ! कुल मिलाकर मौसम में ठंड़क पड़ते-पड़ते महीनों लग जाते हैं।"[४०] अरुण वर्मा चाहता है कि लोग उसके साथ गलत कामों का विरोध करें लेकिन वह देखता है कि लोग उसे ही गलत काम करने के लिए कह रहे हैं । ऊपर से वे कहते हैं – "इतना समझ लो, आदमी सिर्फ शगल के लिए नहीं करता यह सब । चाहता कोई नहीं, लेकिन बस करना पड़ता है ।"[४१] ये सुनने पर अरुण वर्मा सोचता है "हाँ, यही तो....चाहते हम कुछ और हैं, करते कुछ और, जैसे गलत पाठ को गलत समझते हुए भी रटते चले जाने की आदत सी पड़ गयी है ।"[४२] गलत बात को गलत कहने की हिंमत भी जुटाने में आज के लोग असफल हैं । अगर सही में सारे लोग अगर गलत काम का विरोध

करने के लिए जुट जाए तो दुनिया कितनी सुंदर होगी ! सत्य, शिवम् और सुंदरता से परिपूर्ण! जैसे कथा नायक के पिताजी के काल में थी । कोई भी गलती न रहने पर भी जब उसके पिता को सस्पेंड किया गया था, तब उसके पिता ने विना वजह किसी की माफी माँगने से इंकार किया था । समाज ने भी इस बात की कदर की थी "शहर के प्रमुख अखबार के पहले पृष्ठ पर ही पिताजी की मुअत्तली की खुलेआम भत्सना की गई थी । उनकी कार्य-कुशलता और निष्ठा के प्रतिदान-स्वरूप मिले इस नौकरशाही कोष को शहर के सारे बुद्धिजीवियों, प्रमुख नागरिकों और सहयोगियों ने घोर अत्याचारपूर्ण और अन्यायपूर्ण ठहराया था । ...दूसरे दिन ऑफिस जाने पर पता चला, विभाग के आधे से ज्यादा कर्मचारियों ने अपने इस्तीफे तैयार कर रखे हैं भेजने के लिए ...फिर डायरेक्टर को क्षमा-याचना के साथ अपना ऑर्डर वापस लेना पड़ा था ।"[४३] कथा-नायक अपने पिताजी तथा बुजुर्गों के इन्हीं मूल्यों की विरासत सँभाले हुए है और अपने जमाने के लोगों को भी जागृत करना चाहता है साथ ही यही पूँजी अपने बच्चों को भी सौंपना चाहता है । इसी वजह से ईमानदारी के काम के बदले में कई बार ट्रांसफर करने के बावजूद वह अपनी मूल्यों की पूँजी सँजोए रखता है । समाज से पाई हताशा और थकान के बाद अपने पिता की कहानी को वह दोहराता है जिससे भ्रष्टाचारी समाज से जुझने के लिए फिर से उसे टॉनिक मिलता है । 'हाँ लाल पलाश के फूल नहीं ला सकूँगा' कहानी में भी ईमानदार व्यक्ति को ईमानदारी की सजा के रूप में पुलिस पकड़कर ले जाती है और उन्हें जेल की सजा होती है । ऐसे में ऐसा लगता है कि भ्रष्टाचार की जड़े इतनी फैल गयी हैं कि उन्हें नष्ट करना मुश्किल काम है । लेकिन इस भ्रष्टाचार के जमाने में भी ईमानदारी से काम करनेवाले लोग हैं जिससे आगे आनेवाले समाज में इस समस्या से मुक्ति की संभावनाएँ नजर आती हैं । अपने पात्रों के माध्यम से ईमानदारी जैसे मूल्य को स्थापित कर भ्रष्टाचारी समाज में लेखिका भ्रष्टाचार से मुक्ति की आशा करती है ।

३.१.१० दंगों से संबंधित समस्याएँ

आतंकवाद, नक्सलवाद, दंगे-फसाद, खून, लुट-पाट जैसी वारदातें आए दिन समाचार-पत्रों में पढ़ने को मिलती हैं । संचार माध्यमों से इसकी जानकारी बड़ी तेज गति से लोगों तक पहुँचती है । आज समाज में यह स्थिति है कि कब किस की मौत हो जाए यह कहा नहीं जा सकता । महानगरों में तो मृत्यु का भय हर समय बना रहता है । आज तो हर जगह भयानक और दहशत का वातावरण है, केवल महानगरों में ही नहीं भारत के हर शहर और गाँव में भी । 'शहर की सबसे दर्दनाक खबर', 'गृहप्रवेश', 'उजास', आदि कहानियाँ इसी का उदाहरण हैं । 'गृहप्रवेश' कहानी में दंगों की आशंका से निर्मित वातावरण का वर्णन करती हुई लेखिका लिखती है- "पूरे चौक एरिया में जबरदस्त सनसनी है । दुकानों के शटर खटाखट बंद हो रहे हैं । नई सड़क तक जिसे देखो, दुकान-डलिया समेटे जल्दी-जल्दी घर भागने की फिराक में रिक्शा-ऑटो तलाश रहा था - अजब बदहवासी का आलम - बाजार, सड़क देखते-देखते वीरान । गश्ती पुलिस के सिपाही बेरहमी से डंडे ठकठकाते घूम रहे हैं।"[४४] आज के समाज में नक्सलवादी दंगे हो, आतंकवादी हमले हो या सांप्रदायिक दंगे हो ऐसी भयानकता हर शहर या गाँव में फैली रहती है । आए दिन चोरी, खून, एक्सीडेंट, मारामारी, आत्मघाती हमले की वारदातों से मन में एक तरह की भयानकता व्यापती जाती है। ऐसे में किस पर विश्वास रखे और किस पर नहीं यह निर्णय लेना कठिन होने लगा है । 'गृहप्रवेश' कहानी में मनोज कथा-नायक से पूछता है - "क्यों नहीं कहते कि इस एरिया में तो अँधेरा घिरने के बाद लोग अकेले-दुकेले निकलने से भी कतराते हैं ! आजकल तो सिविल लाइंस के आगे-पीछे तक चोरी-चकोरी, लुटपाट की वारदातें एकदम आम हो गई हैं ।"[४५] आज भारत में यही स्थिति है । लोग दूसरों को लुटने के लिए, अपने अपमान का बदला चुकाने के लिए, अपने रास्ते का काँटा निकालने के लिए, संपत्ति हड़पने के लिए एक-दूसरे की जान लेने से भी पीछे नहीं हटते । सांप्रदायिक कट्टरता के परिणाम स्वरूप आज कितने

आत्मघाती हल्ले होने लगे हैं, जिसमें कई लोगों की जानें जा रही हैं । आज ट्रेनें जलायी जाती हैं, नक्सलवादी अपना बदला लेने के लिए अपहरण करते हैं या मासूम लोगों की जान लेते हैं इसलिए हर कहीं दहशत फैली रहती है । कब कहाँ क्या हो जाए यह कहा नहीं जा सकता । आज केवल भरत में ही नहीं बल्कि विश्व के हर देश में यही भयानकता छायी हुई है ।

आज समाज में इतने सारे दंगे-फसाद होने पर भी अनेकता में एकता वाले इस देश में सांप्रदायिक सद्भाव पाया जाता है । समाज में धार्मिक कट्टरता के कारण दंगे फैलानेवाले आपमतलबी लोगों का 'सौदागर दुआओं के' कहानी में लेखिका ने पर्दाफाश किया है । भारत में कई सालों से हिंदू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई तथा अन्य कई धर्मों के लोग रहते हैं । ये सारे अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं और मिलजुलकर रहते हैं । 'सौदागर दुआओं के' कहानी में पीर सैयद, जैक्सन से कहते हैं - "हिंदुस्तान की कौम में अपना-पराया, हमारा-

तुम्हारा जैसी बातें ओछी किस्म की समझी जाती हैं । हम हिंदुस्तानी बँटने-बिखरने से बेहद घबराते हैं। अब एक ही घर के बर्तन हैं तो खटकेंगे तो जरूर साहब; लेकिन इसी बिना पर थाली, रकाबी, बटलोही, कड़ाही को अलग-अलग ताखों में तो नहीं रखा जा सकता न ।"[४६] इसी का मतलब है भारत में सभी धर्मों-संप्रदायों के लोग आपस में मिलजुलकर रहते हैं । वे तो कुछ ही आप मतलबी लोग होते हैं जो अपने स्वार्थ के लिए लोगों को भड़काकर दंगे करवाते हैं । इस कहानी के सांस्कृतिक पक्ष का विस्तृत अध्ययन इसी अध्याय के अगले भाग में किया जाएगा ।

३.१.११ शहरीकरण से संबंधित समस्याएँ

आज हम देखते हैं कि शहरों का विकास बड़ी तेजी से हो रहा है । यातायात एवं संचार के क्षेत्र में तेज गति से विकास हो गया है जिसकी वजह से शहरों के विकास में भी गति आयी है । आज गाँव के गाँव शहरों में परिवर्तित होते नजर आते हैं । शहरों में आज छोटा सा

ज़मीन का टुकड़ा भी खाली नहीं छोड़ा जाता । हर कहीं कॉंक्रिट के जंगल खड़े किए जा रहे हैं । इन शहरों में लोग भी संवेदनहीन बनने लगे हैं जहाँ किसी को किसी की नहीं पड़ी रहती । सारे लोग अपने में ही व्यस्त रहते हैं । वहाँ एक प्रकार से शहरी संस्कृति का निर्माण हो रहा है जहाँ सारे लोग फ्लैटों में रहकर संकुचित मानसिकतावाले हो गए हैं । इस दृष्टि से सूर्यबाला की 'एक लॉन की जबानी' कहानी देख सकते हैं । इस कहानी में लॉन का मानवीकरण किया गया है । उसके माध्यम से लेखिका अपने विचारों को अभिव्यक्त करती है । मानव की सहज प्रवृत्तियाँ नष्ट होती जा रही हैं, जैसे जोर-जोर से हँसना, बोलना, मजा-ठिठौली करना, चिल्लाना, झगड़ना, रूठना, मनाना, बच्चों का शोरगुल करते हुए खेलना, दौड़ना ये शहरों से गायब होता नजर आता है । कहानी में अमीर लोगों की कॉलनी में बसा हुआ, सभी सुविधाओं से परिपूर्ण लॉन कहता है - "फिर भी, कुछ है जो मैं तलाशता रहता हूँ पड़े-पड़े अपने चारों ओर - जैसे जब भी कभी शाम को घंटे-आधे घंटे के लिए देशी-विदेशी साहबों की आयाएँ अपने-अपने गोलमटोल बाबाओं, बेबियों को हवाखोरी के

लिए लेकर आती हैं, मैं एक अनाम सुख से भर उठता हूँ । मेरा मन करता है, मैं बच्चों से कहूँ, आओ ! मेरे पेट पर खूब उछलो-कूदो, कलामंडियाँ खाओ । गुत्थमगुत्थी, कुश्तमकुश्ती हो....आयाओं ! चटखारेदार खबरें सुनाओ, अपने साहबों और मैडमों की.....लेकिन इस कॉम्प्लेक्स की आयाएँ और बच्चे सब आम बच्चों, आम आयाओं से पूरी तरह अलग हैं । मुझे विस्मय होता है, ये बच्चे, बच्चों की तरह आखिर हँस क्यों नहीं पाते! एक दुधिया मुक्त हँसी, एक चहकती किलकारी सुनने का मेरी शिराओं में भरता रोमांच अचानक फुस्स हो जाता है ।"[४७] लॉन के माध्यम से उच्च वर्ग के एटीकेट्स का अनुकरण करते हुए लोग यहाँ तक कि बच्चे तक मानवीय जीवन की छोटी-छोटी खुशियाँ खो रहे हैं । 'इस धरती के लिए' कहानी में जमीन का एक छोटा सा टुकड़ा अपने अतीत को याद करता हुआ कहता है "इन लड़कियों, इन नन्ही बच्चियों ने मुझ पर एक पूरा संसार, एक पूरी

सभ्यता बसा रखी थी । वे मेरी मिट्ठी खोदकर चुल्हे बनाती थीं- उस मिट्ठी का आटा गूँध, रोटियाँ थोपती थीं । जामुन की पत्तियों को पान की गिलौरियों की श्क्ल दे, एक-दूसरे को थमाकर अधबुढ़ियों की तरह चबाती थीं। शिवाले की घंटियों की तरह खिलखिलाकर हँसती थीं और शाम के झुटपुटे में माँ-बाप को आते देख छुटके भाई-बहनों से लदी-फँदी दौड़ पड़ती थीं । उस बचपन की भरी-पूरी सभ्यता क्रमशः ध्वस्त होती जा रही थी।"[४८] वहाँ एक अलग ही संस्कृति पनप रही है जहाँ बच्चों से लेकर बडों तक के अलग-अलग एटीकेट्स होते हैं । अनेक नियमों में बँधे शहर के लोगों की जिंदगी को देखकर वहाँ पर स्थित जमीन का टुकड़ा कहता है - "जानता हूँ । सारे कायदे-कानूनों से वाकिफ हूँ । बल्कि एकदम सचमुच कहूँ तो इन्हीं कायदे-कानूनों में घुटते-घुटते आज तक, 'आदमी' की आवाज सुनने को तरस गया हूँ । सालों-साल हो गए, किसी को हँसते देखे । बरसों हो गए, कलेजा फाड़ देनेवाले किसी क्रंदन, किसी विलाप से अंदर जमी बर्फ को पिघले । भूल गया हूँ, आदमी कैसे हँसता है, कैसे रोता है, कैसे खुशी से पागल होकर चीखता है, कैसे हिचकियों के बाँध तोड़कर बहता है ।"[४९] अपने चारों ओर एक अलग ही किस्म की सभ्यता को देखकर वह चकित होता है । सूर्यबाला लिखती है - "एक चकाचौंध भरी आलीशान सभ्यता बस गयी थी मेरे चारों तरफ । विस्मित, विस्फारित - मैं अपने चारों ओर आसमानों तक अकड़ी, सितारों को ढाँपती इमारतों को देखता ही रह गया। खुद मेरे ईर्द-गिर्द शोख रंगों वाले फूलों की मदमाती क्यारियाँ थीं । एक तरफ टेनिस कोर्ट । बाकी के गोल घेरे में मुझे समेटकर, घास की एक मखमली दबीज तह से पूरी तरह ढाँक दिया गया था । मेरे साथ-साथ हमेशा लगी रहनेवाली गीली, सौंधी मिट्ठी तक का कहीं पता नहीं था । उसे पूरी तरह ढाँक, चारों तरफ सुर्ख लाल ईंटों का एक गोलाकार ट्रैक बना दिया गया था । लोग सुबह शाम कमर में वाकमैन बाँध आते, जॉगिंग-वॉकिंग करते और चले जाते । या फिर टेनिस कोर्ट में रैकेट्स झुलाते जाते और खेल के दौरान भी बड़ी सतर्कता से एकाध हिश-हुश के

बाद, छोटी नैपकिनों से पसीना सुखाते लौट जाते । बहुत हुआ तो पास पड़ी बेंचों पर दो-चार मिनट सुस्ता लिए, क्यारियों पर एकाध प्रशंसा-भरी नजरें फेंक दी – लेकिन बोलना, बतियाना एकदम नहीं ।

बच्चे ? हाँ, बच्चे भी 'साइलेंट' जोन की मियाद बीतने के बाद ही आते और नकचढ़ी आयाओं, गवर्नेसों की सख्त नाकेबंदी में थोड़ा-बहुत लुदक-फुदक वापस हो लेते । न हँसते, न खिलखिलाते । कोई आवाज ही नहीं निकल पाती उनके मुँह से । ठीक अपनी आयाओं, गवर्नेसों और संरक्षकों की तरह । जीवन रहते हुए जीवन के हर स्पंदन से दूर ।"[४०] आज के समाज में सहजता मिटती जा रही है । बहुत ही अनैसर्गिक रूप में बच्चों तक के व्यवहार में बदलाव लाए जा रहे हैं । शहारों में सभ्य बनने और सुशीलता के नाम पर आज सहज और नैसर्गिक जीवन पद्धति मिटती जा रही है इस ओर लेखिका संकेत करती है ।

गाँव में रहनेवाले लोगों को शहरों में रहने की कठिनाई आती है । गाँव का वातावरण अलग होता है और शहरों का अलग । 'दादी और रिमोट' कहानी में स्थित दादी शहर में आती है तो देखती है कि शहर में खुले आसमान का दर्शन भी दुभर हो गया है । वह कहती है – "नीचे झाँको तो झाँई आए और ऊपर देखो तो एक पे एक, डब्बा पे डब्बा-से धरे, आसमान पे लटके घर । इतने कि आसमान नजर आता ही नहीं । पूरब वाली खिड़की से दिखता सिर्फ बलिश्त-भर आसमान का नुचा-सा टुकड़ा । उसी में रात-बिरात झाँक जाते, कुल जमा चार-छह तारे ।"[४१] शहर की आपाधापी का वर्णन करती हुई लेखिका लिखती है – "और सवेरा ? जैसे जंग छिडी हो कहीं । भोर हुई नहीं कि भागम-भाग चालू। अदाक-फड़ाक खुलते, बंद होते दरवाजे । जूते-चप्पल, कंघी, इस्त्री, अफड़ा-तफड़ी । और अपने-अपने थैले, बकसियाँ लटकाए सऽब दरवाजे से बाहर ।"[४२] इस तरह से दंगों के दौरान भयानक वातावरण का निर्माण होता है, जिसका वर्णन सूर्यबाला की कहानियों में आया है ।

इस तरह से सूर्यबाला की कहानियों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से परिवार के अनेक पात्रों व्दारा समाज में स्थित लोगों की मानसिकता, विविध स्वभाव, पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं का वर्णन किया है ।

३.२ सूर्यबाला की कहानियों में सांस्कृतिक परिदृश्य

भारतीय संस्कृति को धर्मशास्त्रियों ने सामाजिक रूढ़ियों व्दारा नियंत्रित किया था । पहले इस लोक की अपेक्षा स्वर्गलोक, भाग्यवाद, मोक्ष प्राप्ति, पुनर्जन्म एवं कर्मवाद को अधिक महत्व था। समाज परंपराओं एवं रूढ़ियों से पूरी तरह से ग्रस्त था। शिक्षा के प्रचार-प्रसार एवं विज्ञान के प्रभाव स्वरूप समाज में सभी क्षेत्रों में बदलाव आया। समाज में बदलाव से संस्कृति में बदलाव भी आवश्यक बन गया। भारत-अंग्रेजों के संपर्क के कारण पूर्वी तथा पश्चिमी देशों की संस्कृतियों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गयी। इसी तरह बीसवीं शती में अनेक विचारधाराओं एवं मान्यताओं का प्रवेश हुआ जिसका प्रभाव हमारी संस्कृति पर निश्चय ही पड़ा। आदिकाल से भारतीय संस्कृति सर्वसमावेशक रही है इसलिए भारतीय संस्कृति में अनेक संस्कृतियों के तत्व आकर मिल गए हैं ।

भारतीय समाज में अनेक परिवर्तनों के साथ भारतीय सस्कृति में भी परिवर्तन आ रहा है । उसमें बौध्दिकता का समावेश होने लगा है । जिसका आधार परंपराएँ थीं, वह टूट गयीं हैं और उनकी जगह नयी आस्थाएँ जन्म ले रही हैं । व्यक्तिनिष्ठता के परिणामस्वरूप आज सर्वत्र कुण्ठा, निराशा और दिशाहीनता का वातावरण व्याप्त है। आज कहीं किसी भी क्षेत्र में हमारा जीवन स्थिर, सुनिश्चित और सुरक्षित नहीं है । हर क्षेत्र में हम बीच में खड़े हैं और किसी भी रास्ते के प्रति जरा भी आश्वस्त नहीं है । आज सांस्कृतिक मूल्यों को बुद्धि, तर्क और उपयोगिता की कसौटी पर परखा जा रहा है । भारतीय परंपराओं का निरंतर ऱ्हास हो रहा है । पाश्चात्य संस्कृति का समाज पर व्यापक रूप से प्रभाव पड़ रहा है । संचार साधनों एवं यातायात के साधनों के प्रभाव स्वरूप आज भारतीय हर क्षेत्र में पाश्चात्य संस्कृति का

अंधानुकरण कर रहे हैं । इससे भारतीय संस्कृति में स्थित बुराईयों के साथ-साथ अच्छाईयाँ भी धूल धूसरित होती जा रहीं हैं ।

आधुनिक शिक्षा, तकनीकी व औद्योगिक विकास ने समाज के अर्थतंत्र पर बहुत प्रभाव डाला है । औद्योगीकरण ने आज समाज में वर्ग-संघर्ष को अधिक बढ़ावा दिया है। अमीर और अधिक अमीर बना तो गरीब और गरीब । इन स्थितियों में सबसे अधिक मध्यवर्ग पिसा । अतः समाज में आज मध्यवर्ग ही खोखले आदर्शों का भार वहन करता हुआ मुखौटा पहन परंपराओं का बोझ ढोता हुआ अर्थ-तंत्र के साँचे में पिसता जा रहा है । इसी समाज में जीनेवाली सूर्यबाला अपनी संस्कृतिक विरासत को संजोए हुए उसमें आनेवाले परिवर्तनों के प्रति सतर्कता से संकेत करते हुए क्षरित होनेवाले सांस्कृतिक मूल्यों को अपनी लेखनी के माध्यम से बचाने की कोशिश करती है ।

३.२.१ भारतीय नारी

भारतीय नारी की महिमा विश्व में प्राचीन काल से चली आ रही है । संपूर्ण रूप से आदर्श महिला की छवि 'भारतीय नारी' कहने से मन में उभरती है। सूर्यबाला की कई कहानियों में यह छवि उभरकर आयी है, लेकिन बदलते परिवेश को ध्यान में रखकर उन्होंने अपनी कहानियों में उसमें आए हुए बदलावों को भी दर्शाया है । उनकी कहानियों की नायिकाओं को इस प्रकार देखा जा सकता है - 'व्यभिचार' कहानी की नयिका शिखा परंपरागत भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है। अपनी शादी के उपरांत दूसरे पुरुष के बारे में सोचना भी भारतीय संस्कृति में पाप माना जाता है। हालाँकि आज भारतीय नारी पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में आने लगी है और इसकी वजह से वैवाहिक जीवन से संबंधित अनेक बातों में परिवर्तन आने लगा है। लेकिन हम सूर्यबाला की कहानियों में चित्रित नारियों को देखें तो हमें पारंपारिक भारतीय नारी की प्रतिमा ही नजर आएगी। शिखा अपने पाठक व्दारा भेजे हुए पत्रों को पढ़कर उसके प्रति आकर्षित होती है । साथ ही अपने भोले और प्यारे पति के प्रति

भी ईमानदार है । इसी ईमानदारी की वजह से वह अपने पाठक को मिलने से इंकार करती हुई कहती ह, “हाँ, शिखा जो हवा के साथ भभकती हुई बहकने लगी थी, अब दीये में जितना तेल है, उसी के साथ चुपचाप जलेगी !”[५३] पुरुष प्रधान भारतीय संस्कृति में पति को परमेश्वर माना जाता है, इसलिए वह किसी के प्रति आकर्षित भी हो तो भी वह इस बात को स्वीकार करने से कतराती है और अपने ही पति के खुँटे से गाय की तरह बँधी रहती है। ‘अनाम लमहों के नाम’ की नायिका अपने नए पड़ोसी के व्यवहार से प्रभावित होती है। बहुत पैसा न होने पर भी नायिका के बच्चे को लेमनचूस और गुब्बारा देने वाले व्यक्ति की उदारता और अपने खड़ूस पति की तुलना करने के बाद उसे अपने पति का व्यवहार ही ठीक नजर आता है, क्योंकि उसके अनुसार आज के जमाने में जीने के लिए कंजूस बनना आवश्यक है। वह अपने कंजूस पति को हर बात पर समझदार कहती हुई अपनी गृहस्थी में रमी रहती है। ‘आदमकद’ की मामी अनपढ़ होते हुए भी चेतना संपन्न है। नकारे पति के साथ शादी करके

कभी उससे किसी बात की अपेक्षा नहीं रखती। हर जिम्मेदारियों को निभाती हुई अपने बच्चे के भविष्य की दृष्टि से सदैव कार्यरत रहती है। आज भारतीय गाँवों में ऐसी ही कई महिलाएँ मिलती हैं जो केवल अपने बलबूते पर परिवार का पालन-पोषण करती हैं । इन्हीं महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती है इस कहानी की 'मामी'। वह अपने पति से पूरी तरह से निर्लिप्त है । कहानी में लाजवंती व्दारा अपने पति को नकारा कहने पर कहती है - "तुम लोग सिर्फ अपना-अपना ही क्यों नहीं देखते ? क्यों बैठे-बिठाये पूरी तरह ढँपी राख में से चिनगारी कुरेदने की कोशिश करते रहते हो ? यह समझने में तुम्हें कितना समय और लगेगा कि इस राख के नीचे भी राख ही है, कहीं कोई चिनगारी, गर्माहट तक नहीं । तुम्हारी जिंदगी क्या हमारे जिक्र के बिना नहीं चल सकती ?"[५४] 'सुमिंतरा की बेटियाँ' कहानी की सुमिंतरा भी अपने पति व्दारा परित्यक्ता होने पर भी स्वाभिमान से अपनी दो बेटियों के साथ जीवन गुजारने के लिए पूरी तरह से तैयार होती है। उसकी बेटियाँ और वह अपने पति की दूसरी

शादी होते देख रोती नहीं, ना ही अपने भविष्य की चिंता करते हुए बैठतीं हैं । उसकी बेटियाँ अपने बाप को मरा हुआ घोषित करके उसकी कब्र बनाकर अपनी माँ के साथ चेतना से परिपूर्ण वापस लौटतीं हैं । समाज में आज तलाक की घटनाएँ दिन-ब-दिन बढ़ रही हैं । तलाक शुदा महिलाएँ फिर से शादी करने से रह जाती हैं, या असफल प्रेम की शिकार महिलाएँ जब शादी नहीं करतीं तब अपने अकेले दम पर पूरे घर की जिम्मेदारियाँ उठाते हुए आज हम देख सकते हैं । यह चेतना केवल शिक्षित महिलाओं में ही नहीं बल्कि अशिक्षित महिलाओं में भी हम देख सकते हैं । भारतीय नारी अगर चाहे तो अपने अकेले दम पर कुछ भी करने की ताकद रखती है, यह हम इन कहानियों के माध्यम से देख सकते हैं ।

आज समाज में काफी बदलाव आ गया है । अर्थ को महत्व प्राप्त होने से लोगों की मानसिकता बदल गयी है। पहले जमाने में जहाँ शरीफ घर की औरत को नौकरी पर जाने से रोका जाता था वहाँ आज उन महिलाओं को उनके पतियों के व्दारा ही नौकरी करने के लिए प्रोत्साहन दिया जा रहा है । 'झील' कहानी में श्यामली का पति श्यामली की ईच्छाएँ जानता है तो आश्चर्यचकित हो जाता है क्योंकि उसके अनुसार पढ़ी-लिखी श्यामली और एक आम औसत बुद्धि की लड़की के सपनों में कोई अंतर ही नहीं था । वह चाहता है कि श्यामली नौकरी करें लेकिन श्यामली गृहिणी बनी रहना चाहती है। आज भारतीय नारी ने समाज के हर क्षेत्र में स्थान पाया है । कई सारी महिलाएँ पढ़-लिखकर नौकरियाँ कर रहीं हैं । पुरुष के साथ-साथ वह खुद भी परिवार में आर्थिक दृष्टि से अपनी जिम्मेदारियाँ निभा रही हैं । भारत के पुरुष प्रधान समाज में परिवारों में नारी को हर समय दुय्यम स्थान प्रदान किया जाता रहा है । लोग कितने भी पुरुष-नारी की समानता के नारे लगाए लेकिन परिवारों में उसका स्थान परंपरा ने ही तय किया हुआ है । नारी को नौकरी करते हुए घर की सारी जिम्मेदारियों को निभाना होता है । ऑफिस में काम करने के बाद घर लौटकर घर का भी काम करना पड़ता है । वैसा किसी पुरुष को शायद ही करना पड़े । यह भी झुटलाया नहीं

जा सकता कि कुछ पति और पत्नियाँ आपस में घर का आधा-आधा काम बाँट लेते हैं और समझदारी से काम करते हैं। लेकिन यह भी उतना ही सच है कि ऐसा कुछ ही घरों में होता है। 'सीखचों के आर पार' कहानी में नौकरी पेशा स्त्री और गृहस्थी सँभालने वाली नारी का वर्णन आया है । दोनों अपनी-अपनी भूमिकाओं में खुश नहीं हैं । दोनो घर के अंदर और बाहर पुरुषों के वर्चस्व से नाराज हैं । दोनों स्वतंत्रता की आकांक्षी हैं । इस कहानी में लेखिका की नारी की ओर देखने की दृष्टि स्पष्ट होती है । इसमें दो भिन्न स्थितियों में रहनेवाली नारियों की समान नियति को व्यक्त किया है । सीखचों के भीतर आर्थिक दृष्टि से पति पर आश्रित एक महिला और सीखचों के बाहर नौकरीपेशा नारी दोनों के जीवन की बराबर परिणति को उद्‌घाटित किया है। दोनों अपने आप को सीमाओं में बँधा महसूस कर मुक्ति के लिए छटपटाती हैं ।

वास्तव में ईश्वर ने नारी को माँ बनने का वरदान दिया है । आज उस माँ के वात्सल्य की परिभाषाएँ बदलने लगीं हैं । आज पैसे कमाते-कमाते माँओं की ममता बेची जाने लगी है । अपने बच्चों को 'क्रश' में छोड़कर नौकरियाँ करनेवाली नारियों की संख्या में निरंतर वृद्धि होने लगी है। आज के इस बाजारवादी युग ने बच्चों से उनकी माँ को भी अलग किया है। सूर्यबाला की एक अनोखी कहानी 'एक लॉन की जबानी' में आया बनी माताओं का चित्रण आया है जहाँ आया बनी हुई माताएँ अपने बच्चों से ज्यादा अपने मालिक के बच्चों का खयाल रखतीं हैं और अपने बच्चों को उनके हुक्म का पालन करने को कहती हैं । मालिक के बच्चों के प्रति प्यार से पेश आना और अपने बच्चों को हुड़कना यह कैसी ममता है ? यह सवाल बार-बार परेशान करता है । सूर्यबाला की दूसरी एक कहानी 'तिलिस्म' वात्सल्य से ओत-प्रोत महिलाओं का चित्रण करती है । माँ व्दारा पायी हुई ममता के फलस्वरूप अपनी बेटी को भी उस ममत्व की कमी न खलने देने वाली नायिका के वात्सल्य का चित्रण इस कहानी में हुआ है। अपनी बेटी से भविष्य से संबंधित कोई भी आशा न रखते हुए उसे

लाड़-प्यार करती हुई माँ की ममता का वर्णन लेखिका ने किया है । अपने बच्चे को अनुशासित करने का हर माँ का प्रयास रहता है। अपना बच्चा समाज में सुसंस्कृत कहलाए यह हर माँ चाहती है। लेकिन अपने बच्चे को समझकर, उस पर संस्कार करने के लिए आज की माँओं के पास समय की कमी होती है जिसके परिणामस्वरूप माँ अपने बच्चे को समझ नहीं पाती और उस पर थोपे हुए संस्कार उसे बिगाड़ते हैं । यह देखकर दुखी होती माँ का चित्रण लेखिका ने 'अठारह वर्ष बाद' कहानी में किया है । प्रस्तुत कहानी में लेखिका ने आधुनिक महिलाओं को अपने बच्चों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करे इसके बारे में दिशा निर्देश किया है ।

आज समय बदला है । समय के अनुसार रिश्तों में भी बदलाव आ रहे हैं । सभी तरह के रिश्तों में सास-बहु का रिश्ता भी अपना महत्व रखता है । पहले जमाने में सास को बहु की दुश्मन की नजर से देखा जाता था क्योंकि दिन-रात वह उसका शोषण करती थी। शिक्षा के प्रचार-प्रसार एवं सामाजिक बदलावों से धीरे-धीरे उसमें बदलाव आया । सास, बहु को समझने लगी और अपनी बेटी की तरह उसके साथ व्यवहार करने लगी। लेकिन सास किसी बहु की माँ नहीं बन सकती यह वह भूल गयी । आज भी अपवादस्वरूप ही सास-बहु में बनती है, अधिकतर घरों में उनके बीच झगड़े ही नजर आते हैं । कुछ सासें जो अपनी बहु से बेटी का रिश्ता जोड़ना चाहती हैं, वे यह भूल जाती हैं कि वे ऐसा नहीं कर सकतीं । वैसे सास बनकर ही अपनी बहु से प्यार से पेश आए तो उनकी अहमियत परिवार में बढ़ने की गुंजाइश ज्यादा होती है । इसी रिश्ते पर आधारित सूर्यबाला ने 'चिड़िया जैसी माँ' कहानी लिखी है जिसमें यह कहने की कोशिश की है कि आज रिश्तों में सामंजस्य स्थापित करने की आवश्यकता है ।

आज की बाजारवादी दुनिया में रिश्ते भी निभाते समय अपने लाभ-हानी को देखा जाता है । कोई भी रिश्ता हानी सहने के लिए तैयार नहीं होता चाहे वह बाप-बेटे का हो या पति-पत्नी

का । ऐसे दौर में भी सूर्यबाला की 'कात्यायनी संवाद' की कात्या निरंतर अठारह सालों से अपने अपाहिज पति की सेवा, अपना कर्तव्य समझकर करती है । अपने खडूस पति का क्रोध सहते हुए उसकी दिन-रात सेवा करती है । हालाँकि उसके पास पति से अलग होकर रहने का विकल्प है लेकिन अपने स्वार्थ को त्यागकर वह परंपरागत भारतीय नारी की भाँति अपने पति की सेवा करती है । सूर्यबाला की 'कब्जा' कहानी भी इसी तरह की है जिसमें पत्नी अपने बिमार पति की सेवा में रत है और उसके ठीक होने की प्रतिक्षा करती है।

प्राचीन काल से हम नारी को घर की चौहद्दी में ही देखते आए हैं । आधुनिक काल में आज भी गाँवों में महिलाओं की स्थिति कुछ ज्यादा नहीं बदली है । जहाँ शिक्षा का प्रचार-प्रसार हुआ, समाज सुधार के आंदोलन हुए, गाँव शहर से जुड़ गए वहाँ नारी-जीवन में परिवर्तन आया हुआ हम पाते हैं लेकिन जो इलाके बहुत पीछड़े रहे वहाँ आज भी महिलाओं की स्थिति वैसी की वैसी ही है । आज शिक्षित महिला ने अपना अस्तित्व पहचाना है । घर की चार दीवारों में बंद रहकर केवल घर के कामों में व्यस्त रहना अब उसे पसंद नहीं है। भले ही खाता - पिता परिवार हो लेकिन वह घर के बाहर जाकर खुद को सिद्ध करने की आकांक्षी होती है। 'इसके सिवा' कहानी की नायिका गृहिणी होने के बावजूद यह सोचती है कि- "यह भी क्या जिंदगी है हम लोगों की ! सुबह से रात तक - झाडू लगाना, कपड़े धोना, खाना बनाना, खिलाना, बच्चे पालना और सो जाना । एक-एक दिन जैसे भाड़ में झोंकते चले जाना ।"[५५] वह कविताएँ लिखती है । मौका पाकर अपना विकास कर वह बहुत प्रसिद्ध कवयित्री बन जाती है । प्रस्तुत कहानी में महिलाओं के जीवन में आया हुआ बदलाव हमें नजर आता है । आज की नौकरी पेशा महिलाओं का जीवन इससे अधिक अलग नहीं होगा ।

सूर्यबाला वास्तव में महिला के गृहिणी रूप को अधिक महत्व देती है । नौकरीपेशा महिलाएँ उन्हें नहीं भाती। हो सकता है इसलिए कि नौकरीपेशा महिलाएँ अपने परिवार का संपूर्ण रूप

से खयाल नहीं रख पाती हो। पहले जमाने में महिलाओं को घर के कामों में व्यस्त रखा जाता था । उनके लिए शिक्षा की कोई सुविधा नहीं थी। भारत में कृषि प्रमुख व्यवसाय था तो महिलाएँ अपने पति को खेती के व्यवसाय में मदद करती थी। जब जमाना बदल गया तब महिलाओं के आचार-विचारों में भी परिवर्तन आने लगा। आज भारतीय नारियाँ नौकरियाँ करने लगी हैं। इन महिलाओं पर यह आरोप लगाया जाता है कि वे अपनी पारिवारिक जिम्मेदारी को नहीं निभा पातीं। कई महिलाएँ नौकरी करके भी अपने परिवारवालों को संपूर्ण रूप से सुख दे पाती हैं लेकिन कुछ महिलाएँ घर के कामों से भागने के चक्कर में अपने परिवारवालों को सुख देने में असफल हो जाती हैं । 'दूज का टीका' कहानी में लेखिका ने ऐसी महिलाओं का पर्दाफाश किया है ।

भारतीय समाज कितना भी विकसित कहलाए लेकिन महिलाओं के बारे में वह संकुचित मानसिकता ही रखे हुए है । आज भी हमारे समाज में किसी कारण से घर में रहनेवाला पति साशंक नजरों से देखता है । घर पर रहकर भी घर के काम करने से कतराता है, शरमाता है । लोगों के बहकावे में आकर देर से लौटनेवाली अपनी पत्नी को गालियाँ देता है, मारता है ।

३.२.२ पूजा

प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद में पूजा का बड़ी मात्रा में विरोध हुआ था । अनेक विचारधाराओं के प्रभावस्वरूप पूजा को कायरता का प्रतीक माना जाने लगा है । लेकिन भारतीय संस्कृति की जड़ें इतनी गहरी हैं कि आज भी लोग भगवान पर बड़ी श्रद्धा रखते हैं और प्रतिदिन उसकी पूजा करते हैं । वही हमारी मनोकामनाओं की पूर्ति करता है ऐसी हमारी श्रद्धा है । इसलिए 'सुलह' कहानी की मन्नो अपने पति की नौकरी न छूटे इसलिए भगवान की पूजा करती हुई प्रार्थना करती है और पति को काम के लिए जाते समय वह पूजा की रोलीवाला टीका लगा देती है ।

कोई अच्छी घटना घटने पर भगवान के लिए भोग चढ़ाने की प्रथा या भगवान की मूर्ति के सामने शक्कर रखने की प्रथा भी अपनी संस्कृति में हमें मिलती है। 'क्या मालूम' कहानी में जब एक लड़का कक्षा में प्रथम स्थान पर आता है तो उसके माता-पिता प्रसाद चढ़वाते हैं । प्रसाद चढ़ने से पहले भगवान की पूजा की जाती है और आरती होने के बाद प्रसाद चढ़ाया जाता है । लेखिका मंदिर में होनेवाली आरती का वर्णन करते हुए लिखती है - "पुजारी जी घंटी की टुन-टुन के साथ हनुमान जी के चारों तरफ आरती घुमाते जाते, घुमाते जाते। प्रकाश के बनते वलय, जगमगाती जोत। उस जोत में झलमलाते ढेर-ढेर सारे चेहरे । आरती पूरी होने के बाद पुजारी जी हर किसी की तरफ आरती की थाली बढ़ाते हुए लगातार उचारते जाते.."[५६] आज जहाँ पर मानव विज्ञान एवं तकनीक के माध्यम से विश्व पर विजय पाने की बात करता है वहाँ पूजा करने की बात को नकारा जाना चाहिए था लेकिन अपनी सांस्कृतिक विरासत की वजह से और उसकी 'निरंतरता' की प्रवृत्ति की वजह से आज भी हम ईश्वर पर श्रद्धा एवं विश्वास रखते हुए उसकी पूजा करते हैं ।

३.२.३ विवाह

यह एक सामाजिक एवं सांस्कृतिक बंधन है । इसके बारे में पहले भाग में चर्चा हुई है लेकिन वहाँ पर सामाजिक दृष्टि से विवाह की चर्चा हुई है । इसके सांस्कृतिक पक्ष को देखें तो हम देख सकते हैं कि आज भी शिक्षित समाज में विवाह करते समय कुल, गोत्र, कुटुंब और संस्कार देखे जाते हैं । जात-पात देखी जाती है, धर्म देखा जाता है । 'हाँ, लाल पलाश के फूल नहीं ला सकूँगा' कहानी में जब नायक अपने चाचा के विचार सुनता है तो वह बंगाली वृंदा से शादी करने से पीछे हट जाता है ।

आज के जमाने में अंतर्जातीय विवाहों का प्रचलन बढ़ गया है । अधिकांश युवक-युवतियाँ आपसी प्रेम या आकर्षण के कारण जातीय एवं धर्म के बंधन को तोड़कर अंतर्जातीय विवाह कर रहें हैं । कुछ लोग अपनी जाति या धर्म में जब अपने अनुकूल युवक और युवती नहीं

पाते तब अन्य जाती एवं धर्म के युवक या युवती से शादी करने के लिए तैयार हो जाते हैं । लोगों में समानता की भावना, उच्च-शिक्षा, विदेशी प्रभाव, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा जाति संबंधी मान्यताओं में परिवर्तन आदि के परिणामस्वरूप भी अंतर्जातीय विवाहों में वृद्धि हो रही है । 'कौमुदीः एक प्रश्न' कहानी भी इसी धरातल पर लिखी हुई है । अपने साँवले रंग को विवाह में बाधा बनते हुए देख जब कौमुदी अपने मनपसंद लड़के से शादी कर लेती है तब उसका संपूर्ण परिवार उसके विरोध में हो जाता है। कितना भी दहेज देकर अपनी जात के वर को शादी को राजी करने के लिए प्रयत्नरत उसके पिता को यह नहीं भाता कि उनकी बेटी किसी अन्य जात वाले लड़के के साथ बिना किसी शर्त के ब्याह कर सुखी हो जाए। कौमुदी सोचती है - "समझ में नहीं आता, उन मोलभाव करने वाले परिवारों को लाखों के दान-दहेज में संतुष्ट कर मुझे सौंप देने के लिए पापा तैयार थे, लेकिन मात्र उनकी बेटी का हाथ माँगने वाले उदय के मामले में एक रूढ़ और संकीर्ण समाज उनके विवेक के सामने अभेद्य दीवार बनकर खड़ा हो गया । मेरे इतने समझदार, मुझे इतना प्यार करने वाले मम्मी-पापा एक विवेक सम्मत विरोध के, न्यायसंगत निर्णय के पक्ष में क्यों नहीं खड़े हो पाये?"[५७] इतना पढ़-लिखकर विकसित कहलाने वाला हमारा समाज ऐसी बातों से आज भी अपनी अविकसितता दर्शाता है क्योंकि आज भी हमारे समाज में हमारी परंपराएँ हमें ऐसा करने के लिए उकसातीं हैं । उसके पालन न करने से समाज में लड़की के परिवारवाले मुँह दिखाने लायक नहीं रह जाते । भारतीय संस्कृति में दुल्हन को विशेष रूप से सजाया जाता है। सुहागन कौमुदी का वर्णन करती हुई लेखिका लिखती है -"भरी-भरी सिन्दूरी माँग, मंगलसूत्र, बिछुये और महावर रचे पैरें वाली सद्यः ब्याहता..."[५८] ये सारी एक सुहागन की निशानियाँ समझी जाती हैं ।

भारतीय लोगों के जीवन में विवाह त्योहार के समान है। विवाह दो लोगों को ही नहीं बल्कि दो परिवारों के बीच का बंधन होता है। इसलिए दोनों परिवारों को जोड़ने का काम विवाह

करता है । भारत में विवाह के शुभ अवसर पर अपना आनंद व्यक्त करने के लिए लोकगीत गाने की प्रथा है । पड़ोसी या रिश्तेदार औरतें ढोलक, मजीरे लेकर बैठती हैं और लोकगीतों की धूनों पर नृत्य करती हैं । सूर्यबाला की 'वे जरी के फूल' कहानी में इस तरह के गीतों के उदाहरण मिलते हैं जैसे -

१) 'किसने गूंथी रे सुहाग भरी चोटी -

बाबा जो लाये हजार भरी मुहरें-

दादी ने गूंथी रे, सुहाग भरी चोटी-

अम्मा ने गूंथी रे, सुहाग भरी चोटी ।'[५६]

२) किसने मंडप छवाये हरियाली बन्नी के -

किसने बिंदिया संवारी हरियाली बन्नी की

बाबा मंडप छवायें हरियाली बन्नी के -

अम्मा बिंदिया संवारे हरियाली बन्नी की...'[६०]

बहु-विवाह की प्रथा भारत में प्राचीन काल से चली आ रही है । आधुनिक युग में भी इसका प्रचलन जारी है । 'सुमिंतरा की बेटियाँ' कहानी में सुमिंतरा का पति पहले उसे छोड़कर गाँव के बाहर काम के वास्ते जाता है और अपने साथ अन्य किसी औरत को लेकर वापस आता है और उससे शादी करने के लिए बहाने बनाता है । आज वैसे अकेली बेसहारा पत्नी को असहाय छोड़ना बूरा माना जाता है इसलिए झूठे बहाने बनाकर लोगों को अपने पक्ष में कर लेता है और सुमिंतरा को छोड़कर दूसरी औरत से ब्याह करता है । कहानी में सुमिंतरा का पति ढोढ़े कंठी पर हाथ धर सच्चाई बताते हुए दूसरी औरत के साथ शादी करने का कारण बताता है । भारतीय संस्कृति में पुरुष व्दारा अकेली औरत के साथ रात बिताना गलत कार्य माना जाता है । ऐसे समय में उस पुरुष से उस औरत का संबंध जोड़ा जाता है और समाज में ऐसी औरत से शादी करने के लिए कोई तैयार नहीं होता ।

ढोढ़े के साथ भी यही होता है । रात के समय वह औरत रोती हुई उसकी कोठरी में घुसती है और वहीं रात बिताती है । दूसरे दिन उसकी बिरादरीवाले ढोढ़े को पीटने आते हैं तो ढोढ़े उसके साथ शादी करने के लिए तैयार हो जाता है ।

अनमेल विवाह यह हमारी विवाह पद्धति का एक बड़ा दोष है । आर्थिक, सामाजिक या अन्य कारणों से तथा माता-पिता एवं परिवारवालों की जबरदस्ती से युवक-युवतियों को उनकी इच्छा के विरुद्ध विवाह करना पड़ता है। कभी-कभी युवा नारी को उम्र से बड़े, बूढ़े या विधूर पति के गले में वरमाला डालनी पड़ती है । ऐसी स्थिति में वह घुट-घुटकर जीती है या अन्य पुरुष के प्रति आकर्षित होती है । सूर्यबाला की 'आदमकद', 'गोबर च्चा का किस्सा', 'रमन की चाची' जैसी कहानियों में ये समस्या उभरी है। समकालीन दौर में जागृत लोगों को भी इस समस्या ने नहीं छोड़ा । दहेज की समस्या का इस समस्या से गहरा संबंध है । दहेज न दे सकने के कारण किसी भी उम्र के पुरुष से लड़कियों का विवाह किया जाता है । ऐसे विवाह करते समय लड़की के सुख-दुख का खयाल नहीं रखा जाता । 'गोबर च्चा का किस्सा' कहानी में गोबरधन की बहन की शादी अधेड़ उम्र के पहलवान से की जाती है । शादी में नगाड़े और तुरहियाँ बजायी जाती हैं । हवन किया जाता है, भाँवरे ली जातीं है और धुम धाम से उसे ब्याहा जाता है । इस कहानी में 'जनवासे' का भी उल्लेख हुआ है। यह वह जगह है जहाँ बराती शादी से पहले आकर रूकते हैं।

भारत में शादियाँ बड़े धुम-धाम से मनायी जातीं हैं। उसमें नाच-गाने होते हैं कई तरह के पारंपारिक वाद्य होते हैं । लोग नए-नए कपड़े पहन कर ढ़ोल के ताल पर नाचते हैं । 'क्या मालुम' कहानी में ऐसा ही चित्रण आया है । कहानी की नायिका

'कलंगी के छैयाँ-छैयाँ नदिया के तीरे-तीरे,
अपनी नगरिया हमें ले चल बन्ने धीरे-धीरे ।'[६१]

इस गाने पर घूमर लेकर नाचती है । इसी तरह 'गौरा गुनवंती' कहानी में गौरी के विवाह के पहले दिन गौरी हल्दी-रंगी पीली साड़ी, कलाई में सुपारी की गाँठ और दूब के कंगन बँधे, हाथ-पैरों में हल्दी के उबटन लगाए हुई थी । उसके आँगन में सुहागभरे गीत गाए जा रहे थे- 'गौरा लेके उड़बौं

'अरे गौरा लेके पड़बौं

गौरा लेके चढ़बौं अका..स

अइसने तपसिया के नाहीं गौरा बिआहब

बरु गौरा रहिहैं कुआँ....र..'[६२]

उस रात गौरी के आँगन में औरतें मंडप जगा रहीं थीं और सुहागनें आशिष गा रहीं थीं । ये सारी हमारी सांस्कृतिक विरासतें हैं जो विवाह के समय वधु-वर को उनके भावी जीवन के लिए शुभकामनाएँ देते हुए उपयोग में लायी जातीं हैं ।

आज बहुत अधिक मात्रा में लड़के एवं लड़कियाँ कुँआरा रहना पसंद करते हैं। पारिवारिक मोहजाल में न फँसकर अपने करियर को अधिक महत्व देकर समाज में ऊँचा स्थान पाने में वे विश्वास करते हैं । इनके व्दारा विवाह न करने के अनेक कारण हैं । आज कुछ युवक-युवतियाँ विवाह की इच्छा रखते हुए भी कुछ असंभव परिस्थितियों के कारण अविवाहित रहने के लिए बाध्य हैं । आर्थिक अभाव, असफल प्रेम, अपना रंग-रूप, शारीरिक विकृति, निराश्रयता, चारित्रिक दोष, पारिवारिक कलंक, जातीय एवं धार्मिक बंधन आदि के कारण न चाहते हुए भी उन्हें अविवाहित रहना पड़ता है ।

३.२.४ रहन-सहन

आज हम संगणक के युग में जी रहे हैं । मल्टिनेशनल कंपनियों में काम करनेवाले लोगों की ओर हम देखें तो उनकी जिंदगी की सामान्य सी बातें भी वे खोते जा रहे हैं । सामने वाले को मुस्कुराकर अभिवादन करना, अपने व्यवहार में शालिनता बरतना, पड़ोसियों के साथ

हँसी-मजाक करना, अपनी पत्नी एवं बच्चों को समय देना, उनके साथ खुश रहना आदि बातें धीरे-धीरे मनुष्य भूलता जा रहा है । वह इतना व्यस्त हो गया है कि अपने स्वास्थ्य का खयाल भी उसे नहीं रहता । सूर्यबाला की 'रेस' कहानी भी कुछ इसी तरह की है । कथा-नायक सुधीर शुक्ला पहले ऐसा नहीं था । उसकी पत्नी राशी ने जब पहली बार उसे देखा था तब उसे लगा था "सुधीर शालीनता, गंभीरता और अनुराग से झुकी हुई एक डाल है, जिस पर हमेशा मुसकान की एक नाजुक सी कली खिली रहती है"[६३] लेकिन आज वह काम की व्यस्तता में मुस्कुराना भी भूल गया है । वह सीखानेवाली तमाम पुस्तकें उसके घर में मौजुद हैं । उसकी पत्नी राशी कतार में सजी पुस्तकों के नाम पढ़ती है, जिसमें हँसने-बोलने, उठने-बैठने से लेकर बॉस, असिस्टेंट और बीवी-बच्चों तक से पेश आने, हैंडिल करने और प्यार करने के तरीके लिखे होते हैं । बहुत कुछ पाने के लालच में क्या हम सब कुछ गँवा नहीं रहे हैं? सबको रौंदकर, कुचलकर आगे बढ़ने का रास्ता अपनी संस्कृति तो नहीं

दिखाती। सबको साथ लेकर चलने की हमारी संस्कृति है, लेकिन आज उसमें निश्चित रूप से बदलाव आया है । इसी की वजह से बहुत कुछ पाने पर भी आज लोग सुखी और समाधानी नहीं बन पा रहे हैं। उच्च्व वर्ग के लोगों का वर्णन सूर्यबाला की कई कहानियों में हमें मिलता है । उनका रहन-सहन एक परिपाटी से बँधा हुआ होता है। बहुत धीरे बोलना, सीमित हँसना, अंग्रेजी में आपस में बातें करना, आदि। उनके बच्चे भी इसी के अनुसार ट्रेन किए जाते हैं। उनकी परवरिश करने के लिए उनके घरवालों के पास समय नहीं रहता इसलिए उनके लिए आयाओं का इंतजाम किया जाता है । ये आयाएँ शाम को बच्चों को लेकर घुमने चली जाती हैं। लेखिका के शब्दों में वे "बच्चे चलने के नाम पर बमुश्किल थोड़ा-बहुत लुढ़क-पड़क लेते हैं बस । आवाज उनकी बहुत धीमी गुनगुनाती-सी । एकदम बैटरी खत्म हो गए म्यूजिकल खिलौनों जैसी । हँसते भी हैं तो बस जैसे होंठ थोड़े से खिसककर वापस अपनी जगह ।"[६४] इन्हीं बच्चों के उतरनों एवं खिलौनों पर आयाओं के

बच्चे भी पलते हैं, इसीलिए ये आयाएँ अपने बच्चों को उनके साथ खेलने के लिए लाती हैं और अपने साहबों के बच्चों का हर कहा मानने को कहती है । यहीं पर वे अपने बच्चों में शोषित होने की नींव डालती हैं ।

'कतारबंद स्वीकृतियाँ' कहानी में लेखिका ने ईसाई धर्म में दीक्षित सिस्टर के जीवन एवं रहन-सहन पर प्रकाश डाला है। इन सिस्टर बनी लड़कियों को मिशन के आदेशों का पालन करना पड़ता है। अपनी ईच्छाओं का दमन करते हुए, त्याग करते हुए दूसरों की भलायी के लिए काम करना पड़ता है। सिस्टर लिटीशिया ने एंसी को कहा था- "सिस्टर एंसी ! देखो, मैं जा रही हूँ, पर तुम्हें बिलकुल भी बूरा नहीं लगना चाहिए । क्यों? क्योंकि हमारी वेशभूषा, रहन-सहन सबकुछ बिलकुल एक तरह का होता है, जो भी दूसरी सिस्टर आएगी, उसके पास भी ऐसी माला होगी, ऐसी ही रोजरी, ऐसा ही 'वेल', ऐसा ही क्लॉक और फिर हमें शुरू से ही सिखाया जाता है, प्रैक्टिस करायी जाती है कि-नेवर गेट अटैच्ड टु एनीथिंग..।"[६५] इस तरह से ऐसी सिस्टर बनी लड़कियों का जीवन कितना कठिन होता है इसका अंदाजा हम लगा सकते हैं।

३.२.५ धार्मिक प्रतिबद्धता

सूर्यबाला ने सभी धर्मों के लोगों को अपनी कहानी में पात्रों के रूप में लिया है । अधिकतर हिंदू पात्र उनकी कहानियों में मिलते हैं । लेकिन इनके अलावा मुस्लिम एवं ईसाई धर्मों के पात्र भी उनकी कहानियों में हमें मिलते हैं । हिंदू धर्म से ईसाई धर्म में दिक्षित सिस्टर एंसी की कहानी है 'कतारबंद स्वीकृतियाँ' सिस्टर एंसी मजबूरी से ईसाई धर्म में दीक्षित होकर सिस्टर बन जाती है । असफल प्रेम और अपने पिता के डर के कारण वह घर से भागने के लिए मजबूर होती है, जिसकी वजह से उसे जिंदा रहने का केवल एक ही मार्ग दिखायी देता है और वह अपनी ईच्छाओं को दबाकर सिस्टर बन जाती है । इसके बावजूद उसकी काम भावनाएँ बार-बार अपना सिर ऊपर ऊठाती हैं और सिस्टर एंसी उन्हें बार-बार दबाने की

कोशिश करती है । वह अपने अपनाए गए धर्म के प्रति प्रतिबद्ध है । वह चाहती तो सिंधू के पिता से शादी कर अपना घर बसा सकती थी क्योंकि वह कहीं न कहीं उसकी ओर आकर्षित हुई थी, लेकिन वह ऐसा नहीं करती । जब कभी उसके मन में मोह उत्पन्न होता है तब वह क्रॉस को सहलाती और कहती "कितना अपार संतोष है प्रभु, जीवन दूसरों के लिए समर्पित कर देने में, प्यानो पर तुम्हारी वंदना के गीत गाने में, नन्हें अबोध हृदयों को तुम्हारी आस्था के साथ जोड़ने में ।"[६६] सिंधू और उसके पिता के प्रति उसके मन में लगाव उत्पन्न हुआ था । इसी कारण उसने पीला गुलाब सँभालकर रखा था । जो अंत में वह फेंक देती है और उनके प्रति उत्पन्न लगाव को तोड़कर अपने कर्तव्य के प्रति सचेत हो जाती है ।

'सौदागर दुआओं के' सूर्यबाला की मानवीय धर्म पर आधारित कहानी है। इस काहानी से धर्म के बारे में लेखिका के विचार स्पष्ट हो जाते हैं । कहानी में नायक मुसलमान होने के बावजूद सांप्रदायिक सद्भाव की वजह से हिंदूओं को अपने ही सगे-संबंधी मानता है और मुस्लिम कट्टरवादी लोगों की मानसिकता का पर्दाफाश करते हुए मानवीय धर्म के नाते सांप्रदायिक दंगे को होने से रोकता है। रिजवी साहब सैयद साहब को अपनी हवेली खाली करने के लिए बार-बार समझाता है ताकि वह पूरी बस्ती में आसानी से आग लगवा सके लेकिन सैयद साहब जज्बाती नहीं बनते । वे कहते हैं - "जज्बाती तकरीरें मुझ पर असर नहीं डाल पाएँगी, रिजवी साहब ! काश...काश, मुझे वे कातिल मिल जाते ! लेकिन ....कातिलों को पकड़ पाना आसान है क्या ? क्योंकि मैं जानता हूँ, आप भी जानते हैं कि कातिल वे नहीं हैं, जिन्होंने वार किया । कातिल वे हैं जिन्होंने सिर्फ पाँच-दस नोटों का लालच देकर कुछ लोगों से यह काम करवाया ।"[६७] आगे जब रिजवी साहब उन्हें कौमों के विरोध में उकसाते हैं तो वे उसका जवाब देते हुए कहते हैं- "कौमें कहाँ लड़ना चाहती हैं, रिजवी साहब !....कौमें तो अमन-चैन और सुकून चाहती हैं । उन्हें तो लड़वाया जाता है । शतरंज

की बिसातें बिछाकर मजहबी दिवारों में चुन-चुनकर उनका दम घोंटा जाता है । चौखाने खींच-खींचकर, कँटीले तार बाँध-बाँधकर जबरदस्ती उन्हें बाँटा जाता है कि देखो, फलाँ-फलाँ गैर हैं ! सोचिए तो कैसा लगता है - किन्हीं दो मुल्कों की सरहदों पर जो लड़-लड़कर कटते-मरते हैं, वे एक-दूसरे के दुश्मन बिलकुल नहीं हुआ करते । उन्हें तो उनके बीवी-बच्चों के पास से खींचकर, रोटी का लालच देकर, उनकी लाचारियों का फायदा उठाकर बारूदी खंदकों में झोंक दिया जाता है ।.........यहाँ भी तो वही ....दुनिया के न जाने कौन-कौन सो मजहबों के नाम पर कुछ भोले-भाले, बचकाने और जज्बाती लोगों को बहला-फुसला लिया जाता है । धर्म और ईमान के नाम की झूठी-फरेबी कसमें दिलाकर उकसाया जाता है कि ये लो मशालें और फूँक दो हरी-भरी बस्तियों को । यह लो छुरा और घोंप दो फलाँ आदमी की पीठ में ।"[६८] इतना ही नहीं वह अपने बेटे को भी उच्चादर्शों की पूँजी सौंपता है। उसे अपने बेटे पर नाज है, विश्वास है । जब रिजवी साहब यह बताता है कि नवाज ने

ही उन्हें अपने पिता को लिवाने भेजा है और बस्ती में आग लगाने की योजना में शामिल हुआ है तो सैयद साहब को विश्वास नहीं होता । वे कहते हैं – "घुट्टियों (संस्कारों) का असर सिर्फ बचपन तक खत्म नहीं हो जाया करता, बल्कि वह तो कस्तूरी की तरह ताउम्र खुशबू बिखेरता रहता है ।"[६६] और उनका विश्वास सही निकलता है । नवाज अपनी बस्ती की सुरक्षा से परेशान सा अपने घर वापस आता है । ऐसे ही विचारवाले लोगों की वजह से भारत में अनेक धर्मों के लोग आपसी प्रेम और एकता बनाकर रह सकने में कामयाब होते हैं। भारतीय संस्कृति मानवीय धर्म को अन्य सभी धर्मों की अपेक्षा अधिक महत्व प्रदान करती है, यह मानवीयता ही मनुष्य को मनुष्य से जोड़े रखती है।

३.२.६ रीति-रिवाज

अच्छा कार्य करने के लिए जाते समय जानेवाले के हाथ पर दही डालकर खाने को कहा जाता है । ऐसी मान्यता है कि इससे उसका काम हो जाता है । 'कंगाल' कहानी में जब

नायक विनय जब कोई परीक्षा देने या इंटरव्यू देने के लिए जाता है तो उसकी माँ उसे जाते समय तमाम निर्देश और हितोपदेश देती है जैसे –"महावीरजी का परसाद लिया कि नहीं ? बिंदु ! जरा एक चम्मच दही ला दे कटोरी में, कौन सा दिन है आज...सुक्क ? एक चूरा मिठाई का देदे- मिठाई न हो तो गुड़-चीनी कुछ दे दे – क्या ? बृहस्पति है ? तो मीठा रहने दे – बस, पाँच दाने राई देदे मुँह में डाल ले ।' इस तरह से हम देख सकते हैं कि हर दिन शगुन के तौर पर अलग-अलग खाने को देने का रिवाज भारतीय संस्कृति में है।"[७०]

भारतीय संस्कृति में जब नये घर में प्रवेश करना होता है तो गृहप्रवेश की विधि निभानी पड़ती है । गृहप्रवेश के दिन लोग घर में प्रवेश करते समय अपने रिश्तेदारों को बुलाते हैं । उस दिन घर में वास्तु-देवता की पूजा की जाती है और घर की सुख-समृध्दि की कामना की जाती है । घर आये रिश्तेदारों का सम्मान किया जाता है और यह खुशी का पर्व बड़े धूम-धाम से मनाया जाता है । सूर्यबाला की 'गृहप्रवेश' कहानी में गृहप्रवेश का उल्लेख मिलता है, जहाँ भाई अपनी बहन को गृहप्रवेश के अवसर पर आमंत्रित करता है ।

भारतीय संस्कृति में १६ संस्कारों के निर्वाह की बात की है । मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु के बाद भी कुछ संस्कार किए जाते हैं । मनुष्य की मृत्यु के बाद उसे मुक्ति मिले इसलिए कुछ क्रिया-कर्म किए जाते हैं । आज उसमें भारी परिवर्तन आया है। आज उसमें दिखावापन अधिक बढ गया है। अपनी अमीरी के दिखावे के लिए सोने-चाँदी की चीजें भी दान कीं जाती हैं । मनुष्य को स्वर्ग में कोई असुविधा न हो इसलिए उसकी बारहवीं या तेरहवीं के दिन उसके लिए उपयुक्त हर चीज उसके नाम से ब्रास्मण देवता को दान की रीति भारतीय समाज में है । 'मातम' इस कहानी में लेखिका ने मृत्यु के बाद किए जानेवाले इस रीति पर चोट की है । आज जो उसके रूप में परिवर्तन हो रहा है, उस पर वार कर किसी की मौत के उपरांत उसके घरवालों के दुख में शामिल होने की खोखली बनती परंपरा पर प्रश्न उपस्थित किया है। आज लोग किसी के दुख से दुखी होने का नाटक करते हैं। वास्तव में

दुखी वही हो सकता है जो बहुत संवेदनशील हो । जो लोग मनुष्य जिंदा होते हुए कभी भी उसके घर उसकी खबर लेने नहीं जाते वे सारे उसकी मौत के उपरांत मातम मनाने के लिए पहुँच जाते हैं। ऐसे लोग उसके घरवालों के दुख में शामिल होने नहीं बल्कि उनकी परेशानियों को और बढ़ाने के लिए ही पहुँचते हैं। पहले जमाने में लोग सही रूप में एक-दूसरे की मदद करने पहुँच जाते थे। एक-दूसरे के साथ मिलजुलकर रहने के कारण लोग एक-दूसरे के सुख-दुख में शरीक हो जाते थे। लेकिन आज ऐसा नहीं है, आज लोगों के पास इसके लिए समय ही नहीं होता ऐसे में एक-दूसरे का सुख-दुख बाँटने की बजाय उसकी स्थिति का फायदा कैसे उठाया जाय इस बारे में ज्यादा सोचा जा रहा है। ऐसे में आज के जमाने में इस रीति का पालन करना कहाँ तक सार्थक है यह सवाल खड़ा होता है ।

सौगातें लोगों में रिश्ता मजबूत बनाने में सहायक चीजें हैं जो ले-देकर हम अपना प्रेम व्यक्त कर सकते हैं । भारतीय संस्कृति में जब कोई किसी के घर जाता हैं तो उनके लिए खाने की चीजें जरूर ले जाता हैं । खाली हाथ नहीं जाते उसी तरह वापस लौटते समय भी अगर कोई छोटा बच्चा उनके घर में हो तो उन्हें दुलार से कुछ पैसे हाथ में दे देते हैं । 'समान सतहें' इस कहानी का नायक सोचता है कि "मिठाई लेता जाऊंगा और सबसे छोटी लड़की को पांच रुपये दे दूंगा ।"[७१] 'सौगात' कहानी में जब बूढे की आँख का ऑपरेशन होता है, तो वह सोचता है सौगात के तौर पर वह अपनी भौजी को वापस जाते समय मनोहर से कहकर एक सफेद किनारदार धोती देगा लेकिन मनोहर व्दारा भौजी को जल्दी वापस भेजने की तैयारी को देखकर वह सौगात के तौर पर अपनी पत्नी रेवती की पूरानी साड़ी और उसके हाथ का बना हुआ बटुआ ही दे पाता है ।

भारतीय संस्कृति में दामाद को बड़े आदर से देखा जाता है । परिवार में बेटी से अधिक दामाद का खयाल रखा जाता है । कथा नायक जब अपनी पत्नी के चाचा के घर जाता है तो गरीबी में भी उसकी बड़ी खातिरदारी होती है । जब कथा नायक शरबत और सेव लेते

हुए झिझकता है तब वे चाचाजी कहते हैं "अरे भाई, दामाद हो... दामाद की तो बड़ी-बड़ी खातिर होती है ।"[७२]

इस प्रकार के कई रीतिरिवाज सूर्यबाला की कहानियों में नजर आते हैं जो भारतीय संस्कृति को बनाए रखने में हमारी मदद करते हैं।

३.२.७ दहेज प्रथा

प्राचीन काल में विवाह के समय कन्या को आभूषणों से सजाकर कन्यादान किया जाता था । लड़की के पिता स्वेच्छा से वर पक्ष को उपहार देते थे, लेकिन आगे चलकर इसने प्रथा का रूप ले लिया । विवाह के समय अपनी बेटी को उसका घर बसाने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करना पिता का कर्तव्य माना जाता रहा है । इस परंपरा को कालांतर में धार्मिक कार्य के रूप में देखा जाने लगा । आज के अर्थ प्रधान युग में यह समस्या के रूप में उभरकर सामने आने लगी है । अनेक सामाजिक संस्थाओं के व्दारा इसका विरोध हुआ लेकिन इसकी जड़ें इतनी गहरी हैं कि उसे समाज से उखाड़ना नामुमकिन हो रहा है । इसका प्रभाव आज के युवाओं के जीवन पर निश्चित रूप से हो रहा है ।

इस प्रथा का प्रचलन कन्या पक्ष के लिए विड़ंबना का विषय बना हुआ है । कानून के नुसार दहेज लेना या देना गुनाह होते हुए भी इसका प्रचलन खुलेआम पाया जाता है । इसी कारण लड़की के पिता की दशा दयनीय हो जाती है । आज कन्या के पिता को वर पक्ष व्दारा निर्धारित की गयी नगद राशि देनी पड़ती है । यह राशि वर की शिक्षा-दीक्षा एवं स्तर पर निर्भर करती है । इससे विवाह योग्य वधु को उसके अनुकूल वर प्राप्त करना मुश्किल होने लगा है । 'वे जरी के फूल' कहानी की रुक्की का विवाह इसलिए नहीं हो पाता कि उसके पास वर पक्ष को देने के लिए पैसे नहीं है और न ही सोना । अनाथ रुक्की की मौसी उसकी शादी करने में अक्षम है जिसकी वजह से वह बिन ब्याही ही जीवन बिताने के लिए विवश है । आज विवाह के लिए रिश्ता तय करते समय दोनों पक्ष एक-दूसरे की आर्थिक

स्थिति का जायजा पहले लेते है । लडकी कितनी भी सुशील, सुंदर, सलीकेवाली हो, उसके पास दहेज देने के लिए धन न हो तो वह शादी के लिए अयोग्य समझी जाती है । 'पूर्णाहुति' की बेटी केवल इसीलिए विदा नहीं की जाती कि उसका बाप दहेज देने के पक्ष में नहीं है और दहेज देने में असक्षम है । वह भारतीय संस्कारों से पूर्ण रूप से संस्कारित होने के बावजूद दहेज के कारण उसकी विदायी रोकी जाती है ।

३.२.८ नैतिकता

मनुष्य ने समाजिक व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए कुछ नीति के मूल्यों की स्थापना की थी । मनुष्य उन मूल्यों का पालन करने लगा, इससे उसके चरित्र की उन्नति होने लगी । अपने चरित्र को धब्बा न लगे इसकी उसके व्दारा सदैव कोशिश होने लगी । समाज में अपनी छवि निर्माण करने के लिए वह मनुष्य नैतिक मूल्यों का कठोरता से पालन करता रहा । जैसे-जैसे समाज में परिवर्तन आया वैसे मूल्यों में भी परिवर्तन आया । आज के युग में हम देखते हैं कि नैतिक मूल्यों का क्षरण बड़ी तेजी से हो रहा है । मनुष्य स्वार्थी बन गया है । उसके स्वार्थ की वजह से उसके चरित्र का पतन हो रहा है । आज के युग में भ्रष्टाचार की समस्या का कारण यही है । सूर्यबाला की 'रहमदिल' कहानी में हम रेल्वे परिवहन में फैले भ्रष्टाचार के उदाहरण को देख सकते हैं । एक मेहनती और गरीब इंसान को लुटते हुए टी. सी को कुछ भी नहीं लगता। वह अज्ञानी रहमत को फँसाकर आराम से उससे पैसे लेता है । आज के जमाने में ऐसे ही अनेक लोगों को उनके अज्ञानी होने की वजह से आराम से फँसाया जाता है । इस तरह की लोगों की मानसिकता की वजह से नैतिक मूल्यों का क्षरण होने लगा है । 'तोहफा' कहानी का नायक अपने पियक्कड़ बॉस की चमचेगिरी करते हुए अपने मासूम बच्चे पर उसकी सालगिरह के अवसर पर थप्पड़ मारने से बाज नहीं आता । आज के जमाने में कार्यालयों में प्रमोशन, डिमोशन, इंक्रीमेंट के जमाने में लोग अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए कोई भी साधन अपनाते हैं । अपनी नैतिकता खोकर

अनैतिक रास्तों से मंजिल तक पहुँचना चाहते हैं । लोगों को ऐसा करते हुए देखकर उनका अनुकरण करनेवाले लोग भी आज की दुनिया में हैं । 'पराजित' कहानी में बंसल दूसरों को प्रमोशन पाते हुए देखकर अपने ऊसुलों को भूलकर अपनी पत्नी को अन्य पत्नियों की तरह अनैतिक तरीकों से प्रमोशन पाने की कोशिश करना चाहता है ।

भारतीय व्यक्ति को अपनी इज्जत प्राणों से भी प्यारी होती है । समाज में प्रतिष्ठित व्यक्ति तो हर समय अपनी इज्जत का खयाल रखता है । अनूप के चाचा अनूप के विदेश पढ़ने जाने के उपरांत यह सोचते हैं कि अगर वह वहीं किसी लड़की से शादी करे और उसे पत्नी के रूप में घर ले आए तो उनकी इज्जत-मर्यादा मिट्ठी में मिल जाएगी । अपनी इज्जत पर आँच न आए इसलिए वे भगवान से प्रार्थना करते रहते हैं । कई सारे व्रत, अनुष्ठान कराते हैं, मनौतियाँ माँगते हैं ।

आज समाज में जितनी तीव्र गति से नैतिक मूल्यों में बदलाव आ रहे हैं, उतना ही हमारे समाज के लोग इन मूल्यों को बचाने की कोशिश करते हुए नजर आने लगे हैं । सच बोलना, चोरी न करना आदि मूल्यों को बचाए रखने का प्रयास निश्चित ही होता है । सूर्यबाला की 'सुनंदा छोकरी की डायरी' में स्थित सुनंदा जब झूठ बालती है या चोरी करती है तो उसकी मालकीन उसे डाँट लगाती है और समझाती है कि आगे से वह ऐसा न करे । इस प्रकार बच्चों पर किये जाने वाले संस्कार ही समाज में उसे नैतिक दृष्टि से सक्षम बनाते हैं ।

३.२.६ त्याग एवं बलिदान

भारतीय संस्कृति में त्याग का काफी महत्व है । प्राचीन काल से त्यागी व्यक्तियों की महिमा गायी जाती रही है। त्यागी एवं बलिदानी मनुष्य महान समझा जाता है । 'संताप' कहानी में एक छोटी अपाहिज बच्ची का त्याग एवं अपने छोटे भाई को बचाने के लिए किया गया बलिदान उस बच्ची को महानता के शिखर तक पहुँचाता है । उसकी माँ की नजरों में वह

सच्ची बहादूर बन जाती है । वहीं पर उसका बाप स्वार्थ एवं कायरता की वजह से अपने बच्चों को बचाने की कोशिश भी नहीं कर पाता । स्वार्थ मनुष्य को त्यागी बनने से रोकता है। और बिना त्याग के कोई बलिदान कैसे दे सकता है ? सूर्यबाला की एक अन्य कहानी 'योद्धा' में त्याग एवं बलिदान का उल्लेख मिलता है । इस कहानी में पडोसियों के एक बच्चे को दंगाईयों से बचाने के लिए राजेंद्र और देवेंद्र दोनों भाई कूद पड़ते हैं जिसमें राजेंद्र की मौत होती है । वह शहीद हो जाता है । 'कात्यायनी संवाद' कहानी में भी अपने स्वार्थ को त्यागकर कात्यायनी निरंतर अठारह साल अपने अपाहिज पति की निस्वार्थ सेवा करती है । वह कहीं भी ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं है । अपनी ईच्छा से उसने यह व्रत स्वीकारा है। इसे देखकर आज के जमाने में भी त्याग एवं बलिदान की भावना रखने वाले लोग इस दुनिया में हैं यह इस बात से स्पष्ट होता है ।

३.२.१० आस्था एवं श्रद्धा

भारतीय लोगों के मंदिर, मस्जिद, गिरिजाघर, प्रमुख तिर्थस्थान जैसी जगहें आस्था एवं श्रद्धा के स्थान हैं । सूर्यबाला की कहानियों में इनका उल्लेख मिलता है । 'राख' कहानी में इन्हीं श्रद्धा स्थानों के प्रति आस्था एवं अनास्था के प्रश्न को उभारा है । प्राचीन काल में इन श्रद्धा स्थानों के रखवाले अपार आस्था एवं श्रद्धा, आए हुए भक्तों में पिरोने का काम करते थे । वे खुद अपने चरित्र को पवित्र रखते थे और ईश्वर की आराधना में लगे रहते थे । उनकी निस्वार्थ भक्ति को देखकर मंदिरों में आनेवाले भक्तगणों के मन में अपने आप आस्था निर्माण होती थी । आज हम देखते हैं इन लोगों के मन में स्वार्थ ने जगह पायी है और इसी के कारण उनका आचरण भ्रष्ट हो गया है । इसकी वजह से ये आस्था-स्थान लोगों की आस्था बनाए रखने में असफल हो गए हैं । 'राख' कहानी में कई साल पहले के बाबाजी समाधी लगाकर बैठते थे । वे बोलते नहीं थे । बस एकाध शब्द बहुत धीमे से और कभी-कभी तो महीनों का मौन सिर्फ धीमे से मुसकराकर आशिष का संकेत देते थे। कभी

गुस्सा होते ही नहीं थे, न उव्दिग्नता, न क्रोध, न अशांति । लेकिन अब के बाबाजी एकदम उसके विपरित । मंदिर में स्थित पुजारी जी लालची था। हनुमानगढ़ी में स्थित मूर्तियों को पहनाए गए वस्त्र एकदम जीर्ण हो गए थे । कारण पूछने पर पता चलता है कि वहाँ पर स्थित गंजा साधु ठाकुरजी के वस्त्रों के लिए दिए गए पैसों का गाँजा पी गया । पहले कथा-नायिका की नानी जब बहुत विक्षिप्त हो उठती तो हनुमानगढ़ी बाबाजी की चौकी पर मत्था टेकने पहुँच जाती और बाबाजी जाने क्या दो-एक शब्द ही बोलते कि स्थिर शांत हो लौट आतीं, सारा उव्देग, सारी विक्षिप्तता वहीं छोड़कर । वह बाबाजी से वहाँ की भभूत माँगती । अब भी जब कभी कोई महाविपत्ति आती है तो नायिका की अम्मा वह विभूति संकटग्रस्थ व्यक्ति के माथे से छुआ देती है, और अम्मा का अटल विश्वास है कि संकट टल जाता है । अब जब वह भभूति माँगती है तो एक साधु उसे वह लाकर देता है कुछ समय बाद नायिका देखती है कि उसी भभूति से आलू-तोरई छाँकनेवाला तसला माँजा जा रहा है तो उसके मन में वह भभूति राख में तब्दिल हो जाती है । नायिका देखती है कि वहाँ का पूरा माहौल बदल गया है जिससे पहले जिन व्यक्तियों एवं वातावरण को देखकर मन में श्रद्धा उत्पन्न होती थी वहाँ आज उन लोगों के प्रति घृणा पैदा होती है । सूर्यबाला के शब्दों में “वह सचमुच मेरे बचपन की श्रद्धास्थली थी । अपने कस्बे से थोड़ी दूरी पर स्थित वह गढ़ी का मंदिर, जहाँ हम बचपन में हर महीने, पखवारे जाते । टुनटुनाती घंटियाँ और लगते भोग के संग राम, सीता, लक्ष्मण की छोटी-छोटी मूर्तियाँ अपार शक्तिमयी लगतीं । और विशाल पीपल के चौबारे पर बने, सिंदूर पुते हनुमानजी जैसे कितने विराट, महाशक्ति-सामर्थ्यवान् । भय, रोमांच और अगाध श्रद्धा भरी वह अनुभूति अकथनीय है । सचमुच इन बीते पच्चीस वर्षों में जाने कितनी बार दुविधा और भीषण अशांति में छटपटाते हुए उस श्रद्धास्थली को याद किया था, जहाँ हमारे माता-पिता अपने चित्त की सारी आधि-व्याधि उतार परम शांत हो वापस लौट आते थे । किसी तरह सुयोग जुटाया, सालों-सालों का लदा-फँदा यादों का

काफिला मेरे साथ पहुँचा था, कहीं उतारती, कहीं धरती, कहीं सहेजती ...यादें-यादें-यादें ... लेकिन जब पहुँच गयी तो सबकुछ क्रमशः बेहद मामूली, बेमानी और कहीं-कहीं हास्यास्पद सा लगता चला गया । अंदर के वे अबोध संस्कार-बोध जैसे खुलते, छुटते से चले गए । यादें वही थीं, उतनी ही अपनी; लेकिन उनके बीच से आस्था और श्रद्धा का सत्व जैसे पारे-सा निथरता जा रहा था । मंदिर ढहा-ढहा उजाड़-सा, मूर्तियाँ ठिगनी, बौनी, दयनीय-सी और हनुमानजी पीपल के तने से चिपके हुए थे । शायद इसलिए कि पच्चीस साल पहले मेरा माथा चबूतरे की ऊँचाई तक आता था। आज चबूतरा मेरी कमर तक ! ऊपर से यहाँ-वहाँ चिलम फूँकते साधुओं को देखकर विचित्र-सी व्यथा, वितृष्णा ......

मन खाली होता चला गया था । पतली-ढ़ही सीढ़ियों पर इंच-इंच उतरती मेरी आस्था विलीन होती चली गई थी, रह गया था सिर्फ कभी न वापस आनेवाले अतीत का रिसता अहसास!"[७३] आज हम उत्तर एवं दक्षिण भारत के अधिकांश पुजारियों एवं साधुओं को देखें तो वे भ्रष्ट आचरणवाले एवं बहुत ही लालची नजर आते हैं । अपवादस्वरूप कुछ लोग आज भी निस्वार्थी मिलते हैं लेकिन बहुतांश लोगों को लुटने में लगे हैं । ऐसे लोगों को देखकर लोगों का श्रद्धा-स्थानों से विश्वास उड़ने लगा है ।

एक ओर यह दृश्य नजर आता है तो दूसरी ओर आज भी श्रद्धा एवं आस्था से भरा भारतीय जीवन नजर आता है । आज भी भारतीय जीवन में ईश्वर के प्रति श्रद्धा एवं आस्था को महत्व है । यही मनुष्य के जीवन में आशा पिरोने का कार्य करते हैं । सूर्यबाला की 'गौरा गुनवंती' कहानी में दुखी ताई और गौरा के मन में आस्था, विश्वास और प्रेम ही जीवन जीने के लिए प्रेरणा बन जाते हैं । गौरा कहती है - "कितनी देर रोती रही, पता नहीं। चैतन्य हुई जब बालों में बहुत ही धीमे-धीमे ताई के हाथ फिर रहे थे । आस्था और विश्वास समोये हुये उनका स्निग्ध स्वर उभरा, मानो सुदूर किसी देवालय से आती पवित्र ऋचा की कोई प्रतिध्वनि हो - हीरे-मोतियों से जड़ी रहेगी मेरी बेटी ! बस, दो क्षण ही

रुकीं, अपनी सारी पूजा-अर्चना, आशिर्वाद में समेट मुझ पर वारती चली गयीं ।"[७४] बड़ी होनेवाली अनाथ गौरा की शादी जब अमीर घराने में तय हो गयी तब बिमार ताई ने ईश्वर के प्रति आभार व्यक्त किए । गौरा के शब्दों में - "दवा पिलाने के लिए गरम पानी लेकर पहुँची, तो ताई तकिए से उठंगी, आकाश की ओर हाथ जोड़े बैठी थीं । खिड़की से झाँकते आकाश के उस छोटे से टुकड़े के माध्यम से ही उन्होंने शायद ईश्वर तक अपना संदेश भेजा था । उस क्षण भी उनकी आँखों में न हर्षातिरेक के आँसू थे, न ओठों पर मुसकान, बस एक सौम्य कृतज्ञ भाव था ।"[७५]

इसी तरह से कई लोग जो ईश्वर की उपासना करते हैं वे आस्था और श्रद्धा की वजह से ही न ! सूर्यबाला की कहानियों के कई सारे पात्र पूजा-अर्चा करते हुए नजर आते हैं ।

३.२.११ पारिवारिक संबंध

स्थितियों में बदलाव के फलस्वरूप पारिवारिक संबंधों में बदलाव आने लगा है । पहले जहाँ पर परिवार में हर सदस्य के व्दारा परिवार को महत्व दिया जाता था, वहाँ आज हर व्यक्ति अपने स्वार्थ को प्रथम स्थान देने लगा है । आज शिक्षा की वजह से कार्यालयों में लोगों को ऊँचे ओहदे प्राप्त होने लगे हैं । जब किसी को अपने देश में ऊँचे पद नहीं मिलते तो वे विदेश का रास्ता पकड़ लेते है । 'सुनो समित, सुनो सुलभ' कहानी में पहले समित और बाद में सुलभ अच्छी नौकरी पाने के लिए विदेश चले जाते हैं । जाते समय समित अपनी पत्नी तथा पुत्र का खयाल नहीं करता बल्कि उन्हें छोड़कर बहुत कुछ पाने के लिए चला जाता है। उसी के पैरों पर पैर रखकर उसका बेटा बड़ा होने पर अपने बाप के पास चला जाता है । वहाँ जाते समय उसके दिमाग में अपनी माँ के अकेले होने का विचार एक बार भी नहीं आता । 'गुजरती हदें' कहानी का नायक भी अपने परिवारवालों के प्रति उपेक्षित भावना अपनाकर वापस विदेश चला जाता है । आज लोगों के मन में विदेश के प्रति बहुत लगाव है। विदेशी वस्तुओं को उपयोग में लाना उनके लिए गर्व की बात होती है । कई बार अपनी

पत्नियों को छोड़कर विदेश जाने वाले लोग वहीं किसी लड़की से विवाह कर लेते हैं और वहीं स्थायी हो जाते हैं । उनको न ही अपनी पत्नी की चिंता होती है और न ही अपने अन्य परिवारवालों की । अपने बूढ़े माता-पिता को अकेला छोड़कर विदेश में रहनेवाले बच्चों की संख्या में दिन-ब-दिन वृध्दि होती आयी है । वे विदेश में जाकर विदेशी संस्कृति के आदी हो जाते हैं और अपने देश में अपने लोगों के पास रहने से कतराते हैं । इससे एकत्रित परिवार तो दूर की बात है, एकल परिवार का ढाँचा भी ढह रहा है । आज विवाह के बंधन में न पड़कर कई लोग अकेले रहना पसंद करने लगे हैं । इससे परिवार की नींव चरमराने लगी है । इसका हमारी संस्कृति पर निश्चित रूप से असर हो रहा है ।

आज परिवार में संवाद की कड़ी टूटने के कारण मानव संवेदनहीन बनता जा रहा है । वहाँ सब कुछ होने पर भी उसकी निरर्थकता महसूस होती है । 'चोर दरवाजे' की सहेली जाते-जाते "कितनी ऊब जाती होगी न तू इस तरह रहते-रहते"[७६] कहकर सारी उपभोग की कीमती चीजों को निरर्थक सिध्द कर जाती है । स्वयं नायिका भी सारी उपलब्धियों के बावजूद जीवन से संतुष्ट नहीं है क्योंकि पति-पत्नी के बीच भावनात्मक शून्यता और सांवादहीनता ने घर में स्थित कीमती वस्तुओं को निरर्थक सिध्द किया है । प्रस्तुत कहानी के पात्र जब अपने वैवाहिक जीवन की शुरुआत करते हैं तब मानवीय जीवन का आनंद उठाते हैं लेकिन लोगों के कहने में आकर उपलब्धियों को पाना ही अपना लक्ष्य बनाते हैं तो जीवन का लुफ्त ही खो देते हैं। उपलब्धियों के पीछे दौड़ते-दौड़ते उनके बीच संवाद ही नहीं हो पाता और इस तरह से मान-सम्मान, धन-दौलत होने के बावजूद अपने सुख-दुख आपस में बाँटने की उनकी चाह मन में ही रह जाती है । आज भारत के अधिकतर युवा विदेशों में रहने लगे हैं । देश में उनके माता-पिता उनकी याद में पूरी जिंदगी बिताने के लिए अभिशप्त हैं । समकालीन दौर में ये स्थिति दिनोंदिन बढ़ रही है । उच्च्व शिक्षा प्राप्त करने के लिए या मल्टी नेशनल कंपनियों में काम करने के लिए भारतीय युवक विदेश चले जाते हैं, छुट्टियों में घर लौटने पर अपने

माता-पिता से बात करने का विषय ही न रहने के कारण उनके बीच के संबंध में दूरी बढ़ने लगती है । इन्हीं स्थितियों को लेखिका ने अपनी रचनाओं के माध्यम से पाठक के समक्ष रखा है । भारत में माता-पिता अपने बच्चों से बहुत प्यार करते हैं । बच्चे बड़े होने के बाद भी उनकी जिम्मेदारी ढोते हैं जबकि विदेश में ऐसा नहीं होता। वहाँ बच्चे बड़े होने पर खुद अपने जीवन की दिशा चुनते है और जिम्मेदारियों को उठाते हैं । भारत में बड़े बच्चों के माता-पिता अति प्यार के कारण अपने बच्चों को छोटा ही समझते हैं और उन्हें जीवन में दिशा-निर्देश करते रहते हैं । बचपन में पाल-पोसकर बड़ा किया हुआ बच्चा उनके बुढ़ापे का सहारा होता है । अपने बेटा-बेटी को पढ़ानेवाले पालक अपने बच्चों से कई सारी अपेक्षाएँ रखते हैं जो बच्चे की पढ़ाई खतम होने के बाद उसे पूरी करनी होती हैं । विदेश जाकर पढ़नेवाले बच्चे इन्हीं को ध्यान में रखकर पढ़ते हैं और अपने साथ-साथ अपने वतन का नाम भी गौरवान्वीत करते हैं । 'मानुष-गंध' कहानी का वैभव अपनी माँ को लिखता है - "प्रोफेसर्स खुश हैं । मुझसे ही नहीं, ज्यादातर भारतीय छात्रों से । उम्दा नाम कमा रहे हैं

हिंदुस्तानी लड़के । उस्तादों की नजर में काबिल, मेहनती । वे पैसों की या कह लो डॉलरों की कीमत जानते हैं न । एक बहन का दहेज ! एक छत का बंदोबस्त ! खास कर मेरे साथ वाले तो सबके सब सामान्य मध्यवर्गीय खाते-कमाते घरोंवाले नौनिहाल - जिनके माँ-बाप सारी उम्र, सबसे सस्ते साबुन से सबसे ज्यादा सफेदी की टनकार लाने की कोशिश में, पाई-पाई जोड़कर, एक दिन अपने नौनिहाल को उच्च तकनीकी शिक्षा के लिए अमरीका भेज पाने में सफल हो जाते हैं । बाकी का दायित्व नौनिहाल का । मन में एक सुगबुगाता रोमांच कि सिर्फ कुछ वर्षों में उपलब्धियाँ और डॉलरों से लदा-फदा उनका नौनिहाल लौटेगा और उनके साथ पुश्तों का दलिद्दर मार भगाएगा । ये लड़के खुद भी तो, बचपन में माँ-बापों को, जिंदगी की उधड़ी सीवनों और उखड़े पलस्तरों की मरम्मती के लिए दम से बेदम होते देखते, महसूसते आए होते हैं । शायद इसीलिए उनकी आँखों में, उनसे ज्यादा उनके माँ-बापों की

उम्मीदें झलझलाती होती हैं ।"[७७] ठीक इसके विपरित स्थिति विदेशी बच्चों की होती है । जहाँ उन बच्चों को सारे ऐशोआराम की चीजें उपलब्ध होती हैं – "दूसरी तरफ यहाँ के लड़के ! बेशुमार दौलत, बेरौनक बचपन से अघाए, उकताए, ऐश–आरामों की पिरामिड़ों में घुटते, हर लम्हे किसी नामालूम तलाश में भटकते, ऊपर–ऊपर सब कुछ पाए हुए...अंदर–अंदर सब कुछ गँवाए हुए से । आत्मविश्वास का एक खोखला ओवरकोट । अपने आप को ढाँके – हर पलायन को एडवेंचर का नाम देते हुए । बित्ते–बित्ते भर की छोकरियाँ, माँ–बाप से कहीं ज्यादा भरोसा अपने डेढ़ बित्ते के सुपरामैनों (बॉय फ्रेंडों) को सौंपती हैं । हर हफ्ते, पखवारे, कच्चे धागों से टूटते इनके भरोसेमंद रिलेशनों को दुबारा–तिबारा जोड़ने की जोड़–तोड़ भी पार्कों, पबों, डिस्कोथिकों और एकांतों में झूम–झटक, लोटपलोट और नशे–धुएँ के गर्द–गुबार के बीच होती रहती है....ये नौसिखुए स्वयंभू...."[७८] कितना अंतर है भारतीय और पाश्चात्य परिवारों में !

आज संचार माध्यम की कृपा के कारण रिश्तेदारों का एक–दूसरे के घर आना–जाना रह

जाता है । ऐसे में आने वाली पीढ़ी को रिश्ते की कद्र नहीं रह जाती । एक-दूसरे के साथ रहना भी उन्हें अच्छा नहीं लगता । बच्चे रिश्ते की उष्मा से दूर रह जाते हैं और संकुचित हो जाते हैं । 'गृहप्रवेश' कहानी में सूर्यबाला ने इसी ओर संकेत किया है । एक भाई अपनी बहन को अपने गृहप्रवेश पर आमंत्रित कर यह कहता है - "कुन्नी-मुन्नी मामा को न पहचानें और राज, बंटू के चेहरे पर बुआ का नाम लेने पर हैरत-सी पड़ जाए तो इससे ज्यादा शर्मनाक बात भला और क्या हो सकती है ! तो अपनी खातिर, मेरी भी खातिर न सही, इन बच्चों की खातिर कि बुआ इनके लिए एक कहानी बनकर न रह जाए ।"[७६] आज कितने ही बच्चों को अपने सगे-संबंधियों की पहचान नहीं रहती, इससे रिश्तों में दूराव आने लगता है। ऐसा न हो इसलिए बच्चों के पालकों को एक-दूसरे से संबंध बनाए रखने चाहिए और एक-दूसरे के घर आना-जाना चाहिए ।

भारतीय परिवार में वृद्ध लोगों को बड़े सम्मान के साथ देखा जाता रहा है । यही वे लोग हैं जो हमारी सांस्कृतिक विरासत को आगे की पीढ़ी को सौंपने में अहम् भूमिका निभाते हैं । वे ही एकत्रित परिवार में सबको जोड़े रखने का काम करते थे । पहले इनके हुकूम के बिना घर में कोई कुछ नहीं कर सकता था। आज भी कई परिवारों में वृद्धों को वही सम्मान प्राप्त है । औद्यौगिक क्रांति के उपरांत संगठित परिवारों में विघटन की प्रक्रिया प्रारंभ हो गयी। एकल परिवारों में वृद्धों को कोई स्थान नहीं दिया गया। शहरों में बढ़ती फ्लॅट संस्कृति ने वृद्धों के महत्व को घटाया। शिक्षित बेटे और बहुए बुढ़ों के साथ रहने में पराधीनता महसूस करने लगे । इसके परिणामस्वरूप वृद्धाश्रमों की संख्या में वृद्धि हो गयी। एकत्रित परिवार में अपने नातियों के साथ खेलने में समय बिताने वाले वृद्ध अपने नातियों से अलग कहीं गाँवों में छोड़े गए या वृद्धाश्रमों में छोड़े गए। माता-पिता को अपने साथ रखने वाले बच्चे उन्हें उपयोगिता की कसौटी पर तौलने लगे। उपयोग है तो रखना है नहीं तो छोड़ देना यह आज

के शादी–शुदा लोगों की प्रवृत्ति बन गयी है ।

सूर्यबाला की कहानियों में हमें कई वृद्ध पात्र नजर आते हैं। आज के समाज में वृद्धों के साथ कैसा व्यवहार किया जा रहा है यह उनकी कहानियों में आया है। 'निर्वासित' कहानी में रिटायर होने के उपरांत अपने बच्चों पर निर्भर माता–पिता को गाँव से शहर में बुलाकर आर्थिक परेशानियों का कारण बताकर दोनों बेटों व्दारा अलगाया जाता है उपयोगिता की दृष्टि से उनका बँटवारा किया जाता है । कोई यह नहीं देखता कि उनका सुख साथ–साथ रहने में है, एक–दूसरे का सुख–दुख बाँटकर जीने में है । उनके दोनों बेटे अपनी सुविधानुसार उनका बँटवारा करते हैं। 'पड़ाव' कहानी में बूढ़े दम्पति का चचेरा भतिजा आपमतलबी बनकर अपने ताऊ और ताई को ठगाता है । हालाँकि वे लोग इस बात से अनजान अपने घर सालों बाद आए मेहमानों की आवभगत में कोई कसर नहीं छोड़ते । घर में पैसे न होने पर भी बनवारी से उधार माँगकर सामान लाया जाता है । घर में मेहमान

आने पर बूढ़ों के जीवन में कैसी रौनक आती है यह भी लेखिका ने दिखाया है । भारतीय संस्कृति में मेहमान को भगवान माना जाता है । यहाँ हर कोई मेहमानों को उचित सम्मान देकर उनकी आवभगत करता है । आज इसमें कई शेड्स नजर आते हैं। 'सौगात' कहानी में बूढ़े व्यक्ति के अकेलेपन को कोई समझने की कोशिश नहीं करता । पत्नी रेवती की मौत के बाद उसका पति अपने बेटे मनोहर को बड़ी मुश्किल से पालता है । उसके अकेलेपन को दूर करने के लिए उसे हॉस्टेल में रखता है । लेकिन जब वह बड़ा हो जाता है तो अपने बूढ़े बाप के अकेलेपन के बारे में नहीं सोचता । मोत्तियाबिंद के ऑपरेशन के समय जब उसके पिता अपनी भौजी को बुलाते हैं तो भौजी के साथ कुछ समय बिताकर वे अपना सुख-दुख बाँटते हैं । वे सोचते हैं कि भौजी को कुछ दिन उनके यहाँ ठहरने को कहा जाए लेकिन जैसे ही वे अस्पताल से घर आते हैं, मनोहर भौजी के वापस जाने का इंतजाम कर देता है। बेटे-बहु को बूढ़े के साथ रहने के लिए समय नहीं है और वह जैसा रहना चाहता है वैसा वे रहने नहीं दे रहे हैं । संक्षेप में बूढ़ों का जीवन त्रासदीपूर्ण बन गया है । एक और

कहानी है – 'बाऊजी और बंदर' इस कहानी में भी बूढ़े बाऊजी को उनकी बहु उपयोगिता की कसौटी पर कसकर अंत में बंदरों से घर की रखवाली का काम सौपती है । जब वे काम के बहाने सपरिवार कहीं घूमने चले जाते हैं तो बाऊजी को घर सँभालने की जिम्मेदारी सौंपी जाती है। जब बाऊजी से बंदरों को भगाने का काम नहीं होता तब वे उनसे दोस्ती कर बैठते हैं । जहाँ उनका खुद का बेटा उन्हें पनाह देने से कतराता है वहाँ वे प्राकृतिक तत्व उन्हें जरूर पनाह देते नजर आते हैं । 'जश्न' सूर्यबाला की अनोखी कहानी है । बूढ़ा-बूढ़ी के जीवन में पड़पोते के आगमन के कारण घर में जश्न का आयोजन कर उनके स्वर्गारोहण की कामना करना कितना भयानक लगता है । कहानी में सुबह से आल्हादित बुढ़ा-बुढ़ी शाम के कार्यक्रम में अपने पड़पोते के हाथों से चमचमाती हुई छोटी-सी सोने की सीढ़ी पाते हैं तो खुश हो जाते हैं, लेकिन जब उनके बेटे व्दारा उसका मकसद इस तरह से समझाया जाता है

कि - "जब वंश बेल सकुशल इतनी लंबी फैल जाए कि बूढ़े-बूढ़ी की जोड़ी अपनी आँखों से पड़पोते का आगमन भी देख ले तो उन्हें नए जन्मे जातक की ओर से यह सौगात कि आप लोग अब सोने की सीढ़ी लगाकर स्वर्गारोहण करेंगे। आपके स्वर्ग जाने के लिए मामूली नहीं, सोने की सीढ़ी, समूचे कुटुंब की ओर से..."[८०] यह सुनकर जैसे दोनों को धक्का लगा । उसे पचाने की कोशिश करते हुए वे अपने कमरे में आकर पड़े रहे । जिंदगी को जीवट के साथ जीने के आकांक्षी, अपने भरे-पूरे परिवारवालों के साथ बने रहने के इच्छुक बूढ़ों को यह सदमा-सा लगा । लेखिका के शब्दों में - "बिस्तर पर पस्त पड़े वे लोग, स्तब्ध, विस्फारित आँखों से अपने चारों तरफ टकटोर रहे थे - बेशुमार रंग-रूपों वाली दूनिया सजी थी उनके सामने - अपनी देह से रचा-बसा एक पूरा संसार । अपने जाए बच्चों और बच्चों के बच्चों की खिलखिलाहटों और किलकारियों से भरपूर...."[८१] वे कहते हैं, "हम तो इस सबके बीच ही बने रहना चाहते हैं । लुदकते-फुदकते तोतले बोलों को अपनी आँखों के सामने रखे रहना चाहते हैं ।... अहसास गिड़गिड़ा उठे....इतने साजो-सामान से लैस, दुनिया खुली पड़ी है हमारे सामने -और ये कहते हैं, हमारे हमारे असबाब बाँधने का समय आ गया । आसान है क्या असबाब बाँधकर चल देना ?....लेकिन इनकी तरफ से कोई रोक-टोक ही नहीं !...अचानक ये क्या सूझी इन्हें ?"[८२] आज बूढ़े लोगों को घर में कोई महत्व नहीं देता, ऐसा नहीं है कि सभी घरों में ऐसी स्थिति है । कुछ घरानों में आज भी बड़ों की इज्जत की जाती है और उनका खयाल रखा जाता है । 'साँझवाती' कहानी के वृद्ध जनों को उनके दोनों बेटों व्दारा अलगाया जाता है । दोनों बुढ़ापे में दूर नहीं रहना चाहते लेकिन अपने ही बच्चों व्दारा उन्हें अलग किया जाता है । इसके बावजूद भी दोनों मिलकर अपने बच्चों के बचपन की यादों में खो जाते हैं और वर्तमान समय में गलत रास्तों पर जानेवाले बच्चों को उनके भविष्य के लिए दुआएँ देते हैं । माँ-बाप पर उनके बच्चे कितने भी जुल्म ढालें लेकिन माँ-बाप के मन में अपने बच्चों के प्रति प्यार ही भरा रहता है । यह प्रेम, ममत्व भारतीय संस्कृति की ही देन

है । सूर्यबाला ने अपने सांस्कृतिक मूल्यों को बचाने के प्रति सतर्क है और इसीलिए चाहती है कि आज की पीढ़ी वृद्धों के महत्व को समझे और उन्हें उचित सम्मान के साथ अपने पास रखें ।

३.२.१२ मानवीय मूल्य

सूर्यबाला की सभी कहानियों के कथ्य चाहे भिन्न-भिन्न हों, घटनाक्रम जुदा हों, पात्र अलग-अलग हों, पर लेखिका की उँगली एक ही दिशा, एक ही बिंदु की ओर हमें ले जाती है - और वह है जीवन में मूल्यों की महत्ता व सार्थकता । भौतिक विकास की दृष्टि से हम चाहे कितनी ही मंजिलें पार कर लें, पर कुछ मानवीय मूल्य ऐसे हैं, जो हर युग, हर समय में अपनी सार्थकता सहित मनुष्य के लिए अनिवार्य बने रहेंगे । वे ही मनुष्यता को जिंदा रखने में सहायक सिद्ध होंगे । 'माय नेम इश ताता' कहानी में छोटी ताता के साथ व्यवहार करते हुए उसकी दादी 'विश्वास' करना तथा विश्वास निभाना सिखाती है । वह छोटी बच्ची ताता को यह विश्वास दिलाती है कि वह उसे छोड़कर अपने गाँव नहीं जाएगी और जरूरत पड़ने पर अपने बेटे को वहाँ भेजने का इंतजाम करती है । आज एकल परिवार में युवक अपने माता-पिता के साथ नहीं रहना चाहते । पति-पत्नी अपने बच्चों को आयाओं के पास घर पर छोड़कर नौकरियों के लिए निकल जाते हैं जिससे बच्चों को प्यार अपनापा नहीं मिल पाता । जिन बच्चों को दादा-दादी, नाना-नानी का साथ मिलता है, उन बच्चों को उनका प्यार भी मिलता है और उनपर अच्छे संस्कार भी होते हैं । सूर्यबाला अपनी कहानियों के माध्यम से आज के युवकों को यही संदेश देना चाहती है । 'विश्वास' जैसे मूल्य आज समाज से बाहर हो रहे हैं इसकी वजह से आज मनुष्य दूसरे मनुष्य की ओर आशंकित नजरों से देखता है । जिस पर भी विश्वास रखा जाता है वह विश्वास तोड़ता है । 'यह क्या सर जी' कहानी के माध्यम से लेखिका ये मूल्य तोड़ने में साहित्यकार भी किस प्रकार जिम्मेदार है यह दर्शाती है ।

आज समाज में चोर-उचक्कों की तदाद बढ़ रही है ऐसे में ईमानदारी यह मूल्य खतरे में आ गया है । फिर भी कई ऐसे लोग हैं जो इसके अस्तित्व की गवाही देते हैं । सूर्यबाला की कहानी 'विजेता' इसी का उदाहरण है । कथा-नायक अपनी पगार न मिलने की वजह से अपने आश्रयदाताओं से परेशान होता है और वह सोचता है - "अरे एक जरा-सी हेराफेरी पे उतर आऊँ न तो इधर-उधर पडी सैकडों हजारों की चीज-बस्त रातों-रात चोर बाजार पहुँचा दूँ - जित्ती रकम इनपे आती है, उसकी दूनी वसूल लूँ, पर..अपना ईमान स्साला आड़े आता है । ऊपर वाले से जवाबदेही करनी है - वो देखेंगे एक दिन -कियामत के दिन - जिंदगी का सबसे अच्छा दिन वो कियामत का दिन होगा 'बे सुदामे'..!"[८३] 'गौरा गुनवन्ती' उनकी एक अनोखी कहानी है । मनुष्य व्दारा दिए जानेवाले आशिर्वाद, दुआएँ किसी मनुष्य का जीवन बना देती हैं । इस बात पर अनेक लोगों का विश्वास नहीं बसता लेकिन उसमें एक ऐसी ताकद होती है कि सच में किसी का भला हो जाता है ऐसी भारतीयों की मान्यता है । 'गौरा गुनवन्ती' कहानी में ताई व्दारा गौरा को दी जानेवाली दुआओं एवं आशिर्वादों से गौरा का भला हो जाता है । अनाथ गौरा की शादी गाँव के रईस के साथ तय होती है । और इस बात का विश्वास हो जाता है कि अब भी वृध्दों की दुआएँ लगतीं हैं । गौरा पर तायी व्दारा हुए संस्कार भी अपना एक अलग ही महत्व रखते हैं । आज भी अच्छे संस्कारों की कद्र होती है इसीलिए बड़ों व्दारा अपने बच्चो पर संस्कार किए जाने चाहिए यह लेखिका कहानी के माध्यम से सूचित करती है ।

भारतीय संस्कृति में अतिथी को भगवान माना जाता है । व्दार पर आए किसी भी व्यक्ति के साथ सम्मान पूर्ण व्यवहार किया जाता है । भारत में यह परंपरा प्राचीन काल से मौजूद है । आज उसमें निश्चित रूप से परिवर्तन आया है । आज की सामाजिक स्थिति के परिणाम स्वरूप किसी पर विश्वास नहीं किया जा सकता । आज जहाँ चोरियाँ, खून-खराबे की घटनाएँ आए दिन के समाचार बन रहे हैं । जहाँ दरवाजे पर 'स्वागतम्' लिखा जाता था,

वहाँ आज व्दार पर 'कुत्ते से सावधान' की पाटियाँ देखने को मिलना आश्चर्य की बात नहीं है । हमारी संस्कृति में व्दार पर आए भिखारी को खाली हाथ कभी नहीं जाना पड़ता था लेकिन आज भिखारियों का भिख माँगने का धंदा बन गया है यही नहीं उनका वेश धारण कर चोर लोग घरों को लुटने लगे हैं । इसलिए असली और नकली भिक्षुक को पहचानने के पचड़े में न पड़कर लोग किसी भी अनजान व्यक्ति को अपना दरवाजा नहीं खोलते । सूर्यबाला की 'सुखांतकी' कहानी में दया के पात्र एक व्यक्ति को खाना और कुछ पैसे देकर नायिका समाधान पाती है । कथा-नायक मुसीबत का मारा भूखी लड़की को लिए हुए फिर रहा था । पैसे खतम होने की वजह से अपने घर न जा सकने का दुख उसे था । उसका दुख और सच्चाई जानकर कथा-नायिका उसकी मदद करती है । दया, क्षमा, ममता जैसे मूल्य ही मानव को मानव बनाए रखने में मददगार साबित होते हैं ।

पहले जमाने में समाज में मनुष्य के चरित्र को बड़ा महत्व था। इसलिए हर व्यक्ति अपने चरित्र को उज्वल बनाने की कोशिश करता था। आज हम देखते है कि हर जगह भ्रष्ट्राचार फैला हुआ है। लोगों के आचरण भी भ्रष्ट बनने लगे हैं। आज ईमानदार व्यक्ति ढुँढने से ही मिलता है। भ्रष्टाचार की वजह से आज ईमानदार व्यक्तियों का जीना हराम हो गया है । जो लोग इस समस्या को मिटाना चाहते हैं, लोग उन्हें ही मिटा देते हैं। अखबारों में इस प्रकार की कई सारी वारदातें हमें पढ़ने को मिलती हैं। पहले जमाने में जो घुसखोरी या भ्रष्टाचार का विरोध करता, उसका साथ देने के लिए सारे लोग इकठ्ठे हो जाते थे । लेकिन आज स्थिति बिल्कुल अलग है। जो इस प्रकर के कार्यों का विरोध करता है उसका साथ कोई नहीं देता। उल्टा उसी को गबन जैसे केस में फँसाकर बंदी बनाया जाता है और सजा सुनायी जाती है। यह स्थितियाँ सूर्यबाला की कई कहानियों में नजर अती है । 'हाँ, लाल पलाश के फूल...नहीं ला सकूँगा..' कहानी में राखाल बाबू के साथ यही होता है। ऑफिस में किसी घूसखोर के खिलाफ शिकायत करने की वजह से पूरा महकमा ही उसके खिलाफ हो जाता है

और गबन के केस में फँसाकर उसे सजा देते हैं। जब पुलिस पकड़ने आती है तब सारे लोग घर में बंद हो जाते हैं। कोई उसकी मदद करने नहीं जाता और ना ही उसे कोई छुड़ाने की कोशिश करता है। 'मुक्ति पर्व' कहानी में भ्रष्टाचार के विरोध में लड़नेवाले सुशांत को ही भ्रष्टाचार के जाल में फँसाकर नौकरी से सस्पेंड किया जाता है । उस आघात को न सह पाने के कारण उसकी मौत हो जाती है । आज हम देखते हैं कि भ्रष्टाचार इतना बढ़ गया है कि सच्चाई का जीना मुश्किल हो गया है । असली जीवन में भी सच्चाई का साथ देनेवालों के साथ ऐसे ही हादसे होते हैं । इसलिए बड़े-बड़े ऑफिसों में प्रमुख अधिकारियों व्दारा घूस लेना, गबन करना जैसी घटनाएँ आए दिन घटती रहती हैं लेकिन सामान्य व्यक्ति व्दारा उसका विरोध कर पाना मुश्किल हो जाता है । जो कोई उनके विरोध में जाने का साहस करता है, उनकी जान खतरे से खाली नहीं रहती । 'मुक्ति पर्व' कहानी में लेखिका ने सुशांत पर लगाये गये आरोपों को उसकी पत्नी व्दारा खारीज करते हुए दिखाया है । लेकिन जहाँ तक सुशांत की जान का सवाल है वह तो इस दुनिया में नहीं है। उसे सच्चाई उगलवाने के लिए अपनी जान गँवानी पड़ी । उसकी पत्नी ने न्यायालय में जाकर सुशांत पर लगे आरोपों को झुटा साबित किया । वह अगर गरीब, लाचार, या अज्ञानी होती तो शायद ही ऐसा कर पाती । आज भ्रष्टाचार को जड़ से उखाड़ने के लिए कई सारी संस्थाएँ कार्यरत हैं, लेकिन उसकी जडें तभी उखड़ सकतीं हैं जब सारे लोग इकट्ठे होकर उसे मिटाने का संकल्प करेंगे।

आज ईमानदार शब्द लोगों के जीवन से लुप्त होता जा रहा है । जो ईमानदारी की रोटी खाना चाहता है वह भूखा सोने के लिए मजबूर होता है । ये हालात हमारे स्वार्थ ने निर्माण किए हैं । स्वार्थांध मनुष्य जितना पाता है उससे अधिक पाना चाहता है । यह अधिक पाने की उसकी चाहत हनुमान की पूँछ की तरह बढ़ती जाती है, आदत पड़ जाने पर उसे रोकने में वह खुद भी असफल होता है । ऐसे हालातों में भी कुछ लोग संस्कारवश ईमानदारी का

रास्ता पकड़ते हैं और अपने उसुलों पर जीवन जीना पसंद करते हैं । सूर्यबला की 'होगी जय, होगी जय...हे पुरुषोत्तम नवीन' कहानी का नायक भी कुछ ऐसा ही है । ईमानदारी उसे अपने पिता से विरासत के रूप में मिली है और वह अपने बच्चे को वह विरासत के रूप में सौंपना चाहता है । उसे दुख है कि सच्चाई की लड़ाई लड़ने के लिए उसका साथ देनेवाला कोई नहीं है । चोरी से फारेस्ट की लकड़ियाँ ढोने वाला एम.एल.ए के भतिजे का ट्रक पकड़ता है और किसी के कहने पर भी छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता। इस हरकत पर उसके अफसर उसपर दोष मढ़कर सस्पेंड करते हैं तो सारे लोग उसके किये पर हँसते हैं और दया दिखाने के लिए उससे मिलने जाते हैं । वे सारे लोग अरुण वर्मा को पूनर्विचार करने की सलाह देते हैं। लेकिन उनमें से किसी में सही को सही कहने की हिम्मत नहीं है । अरुण वर्मा जहाँ अपनी कृति से परिवर्तन लाना चाहता है वहाँ लोगों की संकुचित मानसिकता को देखकर बहुत दुखी होता है । लेकिन अपने बेटे को अपनी विरासत को थामते हुए देखकर बहुत खुश होता है । बच्चों पर बचपन से जो संस्कार किए जाते हैं वही उनका भविष्य निर्माण का आधार बनते हैं । इसलिए बचपन से ही परिवारवालों को बच्चों पर अच्छे संस्कार करने आवश्यक है, यह इशारा लेखिका इस कहानी के माध्यम से करती है । साथ ही भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का जहाँ क्षरण होकर मनुष्य का अधपतन हो रहा है, वह रोकने की कोशिश करने की ओर लेखिका संकेत करती है।

पहले जमाने में जो कुछ मिलता था लोग उसी में सुख मानते थे और अपनी जरूरतों को सीमित रखकर एक-दूसरे के साथ मिलकर आनंद से सुखी जीवन बिताते थे । आज की उपभोक्तावादी संस्कृति में लोगों को कितना भी दिया जाए वे सुखी या समाधानी नहीं होते । आज मिडिया और विज्ञापन की दुनिया ने लोगों की ईच्छाओं को और जरूरतों को बढ़ाया है इसलिए कोई सीमित साधनों से समाधानी नहीं हो सकता । उपभोग की सारी चीजें एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्या भाव जगाने में भी सफल होतीं हैं । इससे अनेक समस्याएँ उभरने लगती

हैं । इसी को अभिव्यक्त करते हुए सूर्यबाला ने 'विहिश्त बनाम मौजीराम की झाडू' कहानी लिखी है जिसमें लेखिका ने पाँचवे माले पर रहनेवाली महिला और हाय क्लास कॉलनी में झाडू लगानेवाला सामान्य सा मौजीराम की तुलना की है ।

आज शहरों में देखा जाए तो कोई किसी का नहीं होता। हर कोई अपनी जिंदगी जीने के लिए जी तोड़ मेहनत करते हुए नजर आता है । दूसरों को मदद करने के लिए शायद ही कोई सामने आता है । मनुष्य होने के नाते मनुष्यता का धर्म निभाना लोग भूलते जा रहे हैं। शहरों में दंगों के समय तो सभी अपनी-अपनी सुरक्षा देखते हैं । दूसरों की परवाह न करते हुए बड़ी कृतघ्नता से पेश आते हैं। आज मानवीय मूल्य बदल रहे हैं। इससे समाज में भारी परिवर्तन आ रहा है। अच्छे व्यवहार का फल अच्छा ही मिलेगा इसकी आशंका होती है। 'शहर की सबसे दर्दनाक खबर' कहानी में शहर के दंगों की वजह से कमाल साहब पर आया हुआ संकट देखकर 'चंद्रा टावर' के लोग अपने बचाव के लिए कमाल साहब के परिवार पर अनचाही स्थितियाँ थोपकर मुक्ति की साँस लेते हैं । आज टावन में रहने वाले लोगों का एक-दूसरे से कोई संबंध नहीं होता। केवल औपचारिक रूप से वे लोग एक दूसरे से बात करते हैं एक-दूसरे को हर मौकों पर केवल एक हस्ताक्षर कर कार्ड भेजते हैं । इसका वर्णन करते हुए लेखिका लिखती है -"वे लोग एक-दूसरे के प्रति अपने धर्म, कर्तव्य और एटीकेट्स, सामाजिक जिम्मेदारियों से पूरी तरह वाकिफ थे और इस फर्ज को निभाने के लिए 'बेस्ट विशेज, थैंक्यू, कंडोलेंस' आदि खुशी-गमी के हर मौके के 'कार्ड' बराबर एक-दूसरे को भेजकर अपनी शुभेच्छाएँ जाहिर करते रहते थे।.....साल-छह महीने में एक बार हर तरह के कार्डों पर अपने हस्ताक्षर करके रख दिए जाते और पूरे साल जरूरत के मुताबिक संबद्ध लोगों को भेजे जाते रहते ।"[८४] आज केवल कार्ड देकर सदिच्छाएँ व्यक्त करने तक की ही संवेदनाएँ हमारे पास बचीं हुई हैं । एक-दूसरे के सुख-दुख में शामिल होने के ये नए तरीके आज हमारी संस्कृति में शामिल हो रहे हैं ।

३.२.१३ पर्व एवं त्योहार

भारत अनेक पर्वों एवं त्योहारों का देश है । अपनी खुशियाँ बाँटने और गम भुलाने के लिए, एक-दुसरे के साथ मिल-जुलकर रहने के लिए पर्व एवं त्योहार मनाये जाते हैं । पहले जमाने में असली रूप से ये पर्व एवं त्योहार अपना उद्देश्य पूरा करने में सफल होते थे । लेकिन आज उनका रूप परिवर्तित होने लगा है । अपवाद स्वरूप कुछ घरों में खासकर गाँवों में इनको मनाने का उद्देश्य पूरा होता है । दीवाली, होली, गणेश चतुर्थी जैसे त्योहार भारत में बड़े धुम-धाम से मनाए जाते हैं । भैया दूज जैसा पर्व भाई-बहन के रिश्ते को मजबूत करने वाला समझा जाता है । आज भी इसी भावना से ये पर्व मनाए जाते हैं, लेकिन सामाजिक स्थिति के कारण इसमें निश्चित रूप से परिवर्तन आ रहा है । सूर्यबाला इसी बदलाव को 'दूज का टीका' कहानी के माध्यम से पाठकों के सामने रखती है । कहानी में बहुत साल पहले और आज मनाए जाने वाले इस पर्व में कितना अंतर आया है यह समझाती है । भाई-बहन का रिश्ता कुछ अधिक ही प्यार से भरा होता है । इसी प्यार को अपने भाई पर लुटाती बहन कहती है - "रक्षाबंधन पर पहली राखी 'रतन भैया' की नन्ही कलाई पर बाँधी जाती और भाई दूज पर पहली 'अक्षत-रोली' रतन भैया के माथे पर । सबसे छोटा होने पर भी मारे दुलार के उसे 'रतन भैया' ही पुकारा जाता, खाली रतन कभी नहीं - अतिरिक्त लाड़-प्यार की अभिव्यक्ति का प्रतीक ।"[८५] कई सालों बाद जब कथा नायिका भैया दूज पर अपने उसी प्यारे भाई को अक्षत तिलक लगाने पहुँच जाती है तो उसे ऐसा लगता है - "क्यों एक खोखलेपन का-सा एहसास, जैसे यह उत्सव नहीं उत्सव का नाटक हो, वह भी एकदम बचकाने कलाकारों व्दारा, जहाँ हर किसी को जल्दी है - संवाद बोले और पिंड छूटे ।"[८६] ऐसे ही अनुभव अनेक लोगों को आ रहे हैं ऐसे में लगता है कि रक्षाबंधन, भैया दूज जैसे त्योहार अब अपनी सार्थकता खोने लगे हैं । पहले दूज का टीका लगाने के बाद भाई व्दारा जनम भर रक्षा का वचन दिया जाता था साथ में तोहफे के रूप में भी भाई अपनी बहन को

कुछ न कुछ देता था जो उसके प्रेम की निशानी होती थी । लेकिन आज के जमाने में बहनों को न ही किसी रक्षक की जरूरत होती है और न ही भाईयों को अपने पैसे खर्च कर बहनों को तोहफे देने की । कई सारे परिवारों में यह त्योहार बस 'गीव और टेक' की भूमिका निभानेवाला बनकर रह गया है ।

दीवाली के त्योहार को खुशी से मानाने की जगह तोहफों के लालच में दुख में बिताया जा रहा है । 'उत्सव' कहानी का कथानक इसी विषय पर आधारित है । सामान्य लोग अपनी सामान्य सी स्थिति में उत्सवों को आनंद से मनाते हैं । पर उच्च वर्ग के लोग अपनी असंतुष्टता की वजह से दीपावली जैसे पवित्र त्योहार के दिन केवल सबसे ऊँचे तोहफे की राह में अपने आनंद को मिटाकर त्योहार का मजा ही खराब कर देते हैं । लेखिका ने और एक बात पर प्रकाश डाला है । अपनी संस्कृति में पहले मिट्टी की मूर्तियों की पूजा की जाती थी । लेकिन जैसे-जैसे बदलाव आया वैस-वैसे सोने की, चाँदी की, काँसे की, प्लास्टर ऑफ पेरिस की मूर्तियों की पूजा की जाने लगी । माटी की मूर्तियाँ हमें अपनी मिट्टी से जोड़े रखती थीं । लेखिका लिखती है -"परिवार में तो पहले, हमेशा मिट्टी की गणेश और लक्ष्मी की छोटी-सी प्रतिमा और चार आने के माला-फूल-बतासे में ही हँसी-खुशी लक्ष्मीपूजा की आरती हो जाती ।"[८७]

लोकमान्य टिलक ने भारतीयों में एकता लाने के लिए सार्वजनिक गणेशोत्सव की स्थापना की लेकिन धीरे-धीरे वह हमारे सांस्कृतिक उत्सवों का भाग बन गया । आज संपूर्ण भारत में 'गणेश चतुर्थी' बड़े उत्साह से मनायी जाती है। खासकर गाँवों में घर-घर में गणेश की मूर्ति की पूजा कर बड़े भक्ति-भाव से यह पर्व मनाया जाता है। आज बंबई जैसे मेट्रोपोलिटन शहरों में भी यह त्योहार बड़े धूम-धाम से मनाया जाता है। कुछ जगहों पर जहाँ बड़े अमीर लोगों की कॉलनियाँ होती हैं, वहाँ इस त्योहार को मनाने का रूप और उद्देश्य बदलने लगा है। वहाँ यह त्योहार केवल 'फन' और 'एनजॉयमेंट' के लिए मनाया जाने लगा है। उसमें

कहीं भी श्री गणेश जी के प्रति भक्ति भावना नजर नहीं आती। 'गजानन बनाम गणनायक' कहानी में लेखिका ने इसी बदलाव को दर्शाया है। व्यंग्य की तीखी धार से तराशी गयी कहानी 'गजानन बनाम गणनायक' आज मनाए जाने वाले गणेशोत्सव की सार्थकता पर प्रश्नचिह्न लगाती है । एक ओर टावरवालों के गणनायक और दूसरी ओर चॉलवाले गजानन के संवादों से पता चलता है कि संपन्न और अघाए हुए वर्ग के लिए गणेश-पूजा कोरी औपचारिकता है, एक फैस्टीवल है जहाँ सबको 'एनजॉय' और 'कम हैव फन' के लिए निमंत्रित किया जाता है। कहानी में उत्सवों पर हावी हो रही अपसंस्कृति पर यह कहानी के माध्यम से करारी चोट है । आज हमारे उत्सवों का रूप बदलता जा रहा है । सहजता की जगह पर आडंबरता आ रही है । इसे रोकने की आज जरूरत है । सच्ची श्रद्धा और भक्ति के अभाव में उत्सव मनाने वाले लोग किस दिशा की ओर बढ़ रहे हैं इसका चित्रांकन इस कहानी में हुआ है । ये सारे बदलाव सामाजिक स्थिति में तेजी से आये बदलाव के फलस्वरूप ही है । मनुष्य को आनंद देने वाले ये त्योहार अपनी पारंपारिक पवित्रता खो रहे हैं।

३.२.१४ सांस्कृतिक टकराव

अंग्रेजों के जमाने में ही भारतीयों व्दारा पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण आरंभ हो गया था । आज हम देखते हैं संचार के साधनों एवं यातायात के साधनों में वृध्दि के कारण संपूर्ण विश्व नजदिक आ गया है इसका परिणाम संस्कृतियों पर भी हो रहा है । उच्च शिक्षित युवक जब विदेशों में जाते हैं तो अपनी और विदेशी संस्कृति में टकराव महसूस करते हैं । 'गुजरती हदें' कहानी में भारतीय संस्कारों में पला-बढ़ा नायक जब अमेरिकन लड़की से शादी करता है, तो उसे लगता है कि उसकी पत्नी एलिस भारतीय नारी की तरह होगी जो आजीवन पति को अपना परमेश्वर मानती है । जब उन दोनों का तलाक होता है तो नायक कहता है -"तलाक' मेरे लिए एक बेहद तौहीन और सदमे की बात थी । लेकिन एलिस की

जिंदगी में विवाह और तलाक की परिभाषाएँ मुझसे भिन्न थीं । उसने शुद्ध रूप में जीवन का महत्व समझा था, जीवन में आए व्यक्तियों और संबंधों का नहीं । जिसे मेरे भारतीय संस्कार जन्म-जन्म का बंधन समझे थे, उसे एलीस ने एक सामान्य कॉण्ट्रैक्ट समझा और उतनी ही सहजता से वह कॉण्ट्रैक्ट तोड़कर बोली थी - 'मेरा खयाल है, हमें अलग-अलग रहना चाहिए । जब संबंधों में गरमाहट न हो तो साथ-साथ रहना एक पाखंड है बस"[८८] तलाक के बाद जब वह अपना एकांत मिटाने के लिए वापस भारत आता है तो विदेशी लड़की से शादी की इसलिए उससे संबंध तोड़ने वाले उसके परिवारवाले ही उसे लेने के लिए एअरपोर्ट पर जाते हैं । भारत में और वह भी खासकर गाँवों में सारे लोग एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। जब नायक विदेश से लौटता है तो उससे मिलने गाँव के कई सारे लोग आते हैं । आते-जाते हुए लोग अपने-अपने ढ़ंग से तमाम अपनापन और प्यार जताते। नायक की भाभी और दीदी उनकी आव-भगत में लगती है । यह अपनापन और भाई-चारा केवल भारत में ही मिलेगा और कहीं नहीं । परिवार में एक-दूसरे का खयाल रखना, इज्जत करना, सुख-दुख बाँटना आदि हमारी संस्कृति है । इसका चित्रण सूर्यबाला की कई कहानियों में मिलता है ।

भाषा संस्कृति का अविभाज्य घटक है । हम जानते हैं कि आज भी हिंदी भाषा को राष्ट्रभाषा का सम्मान नहीं मिल पाया है । संपूर्ण भारत में आज अंग्रेजी का बोलबाला है। लार्ड मैकाले का भविष्य सच हो गया । भारतीय केवल नाम के लिए भारतीय रहे हैं वास्तव में वे अंग्रेज ही बनते जा रहे हैं । आज अंग्रेजी बोलना सभ्यता का लक्षण समझा जाता है । कई बार यह अंग्रेजी ही सामान्य मनुष्य के विकास में बाधा बन जाती है। गाँवों में पढ़ने वाले बच्चों के लिए दसवी तक की शिक्षा मातृभाषा में उपलब्ध होती है लेकिन उच्च शिक्षा पाना हो तो अंग्रेजी से छूटकारा नहीं । ऐसे में अंग्रेजी सीखना अनिवार्य बन जाता है । उच्च शिक्षा पाने के लिए गाँव के बच्चों को शहरों में जाना पड़ता है । वहाँ के नए माहौल में अपने संस्कारों के साथ जीना बड़ा मुश्किल होता है । शहरी रहन-सहन और गाँव का

रहन-सहन अलग होता है । इसकी वजह से गाँव से शहर जाने वाले युवक संभ्रमित होकर दिशाहीन हो जाते हैं । 'दिशाहीन' कहानी में इसी का चित्रण हुआ है। आर्थिक तंगहाली में भी उच्च शिक्षा पाने के लिए शहर गया हुआ युवक अपना आत्मविश्वास कमाने के लिए अपने संस्कार एवं पहनावे को त्यागकर अन्य विद्यार्थियों का अंधानुकरण करने लगता है । उस युवक का आत्मविश्वास खतम होने के बाद वह सोचता है - "क्या यहाँ मात्र जी-बूते पढ़ाई करके ही आत्म-विश्वास पैदा कर सकता हूँ ? नहीं, उसके लिए इन्हीं लड़कों की संस्कृति अपनानी होगी । इन्हीं की तरह अंग्रेजी बोलूँगा, चलना-फिरना, तौर-तरीके, सभी अपनाने होंगे । अपना सम्मान, अपनी टेब और वह सब जिसे अब तक अपना आदर्श माना, छोड़कर जिसका मजाक उड़ाकर ऐंठता रहा, उसे ही अपनाना होगा"[८६] इस तरह से अपने संस्कारों को त्यागकर जब वह अन्य लड़कों का अनुकरण करने लगता है तो गलत आदतों का शिकार हो जाता है । जब परीक्षा फल निकलता है तब उसे अपनी गलती का अहसास होता है, लेकिन इसके बावजूद संभ्रमित ही रहता है कि क्या गलत है और क्या सही ?, दिशाहीन सा वह भटकता रहता है । आज की युवा पीढ़ी के सामने विदेशी संस्कृति की चपेट में आकर नष्ट होती जा रही अपनी संस्कृति को बचाने की समस्या है । आज हम देख रहे हैं कि हम विदेशी खान-पान, रहन-सहन, पहनावा, आचार-विचार, आदर्श जैसी कई बातों को आँखें मूँदकर अपनाने लगे हैं । विदेशी संगीत, चित्रकला, सिनेमा, उपभोग की कई चीजें भारतीयों पर हावी होती जा रही हैं । इसी के कारण भारतीय संस्कृति के कई तत्व नष्ट होते जा रहे हैं । इन्हें बचाना बड़ा आवश्यक है । सूर्यबाला लेखन के माध्यम से भारतीयों के जीवन से इन्हीं नष्ट होते तत्वों को बचाना चाहती है ।

३.२.१५ उपभोक्तावाद

स्वतंत्रता से पहले भारत एक कृषि प्रधान देश था जो अन्य देशों की कंपनियों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराता था । आज भारत में अनेक कंपानियाँ स्थापित हो गयी हैं । इस

बाजारवाद के जमाने में हर कंपनी अपने उत्पाद के लिए बाजार ढुँढ रही है । ऐसे में वह कई सारी सहुलियतें प्रदान कर रही हैं। उपभोक्तावाद के परिणाम की वजह से हर कोई कई तरह की चीजें खरीदने के लिए अभिशप्त हैं । केवल उपभोग की चीजें पाकर मानव सुखी नहीं है । सब कुछ उसके पास होने के बावजूद वह असंतुष्ट है । आज समाज में एक ऐसा वर्ग उभर रहा है जो उच्च पदों पर आसीन है । जिनके घरों में किसी बात की कमी नहीं है । बाहरी और भौतिक सुविधाओं से वे लोग लदेफदे हैं । ऊँचा वेतन, चकाचक फ्लैट, हाय-फाय लाइफ-स्टाइल, सब कुछ सजा-सजाया, नपा-तुला, अनुशासित यहाँ तक कि उनकी मुस्कुराहट भी । साथ ही सफलता की ऊँची सीढ़ी पर विराजमान हैं ये लोग । ऐसे लोगों के जीवन से किसी को भी ईर्ष्या हो सकती है, लेकिन इस संपन्नता और चकाचौंध की दुनिया में जीनेवाले जो लोग हैं वे बीमार, उदास, कुंठित, असमाधानी और दुखी जीवन बिताने के लिए अभिशप्त हैं । ढेर सारी महँगी वस्तुओं से घिरे होने के बावजूद अपने आप में एक प्रकार का खालीपन, अकेलापन, रीतापन महसूस करते हुए ये लोग जी रहे हैं । सारी सुख-सुविधाओं के बावजूद जिंदगी से निराश हैं ये लोग । ऐसे जीवन जीनेवाले लोगों को लेखिका ने अपनी कहानी के पात्रों के रूप में चुना है । 'बिहिश्त बनाम मौजीराम की झाड़ू', 'एक लॉन की जबानी', उत्सव', 'चोर दरवाजे' जैसी कहानियाँ इसके उदाहरण के रूप में देखी जा सकती हैं । घर में सबकुछ होने होने पर भी पड़ोसियों से ईर्ष्यावश उपभोग की और चीजें लाने के लिए कहती हुई नायिका दूसरों पर कुढ़ती रहती है, जिसके कारण कई सारी बिमारियों की शिकार बन गयी है । वहीं पर झाड़ू लगानेवाला मौजीराम अपने काम में व्यस्त रहते हुए सुखी समाधानी बनकर आनंदपूर्ण जीवन बिताता है । "अपनी अकिंचनता में भी मौजीराम महाप्रसन्न ! सम्मोहित ! परम गौरवान्वित ! जबकि संपन्न मेमसाहब सब कुछ हासिल होने के बावजूद महज प्रतिस्पर्धा और ईर्ष्या के कारण ब्लडप्रेशर व डिप्रेशन की शिकार है ।"[६०] 'एक लॉन की जबानी' कहानी में सूर्यबाला ने उच्च-वर्ग की जीवन शैली पर टिप्पणी

की है । जहाँ पर इस प्रकार की जीवनशैली का प्रभाव बच्चों की नयी पीढ़ी पर कैसे हो रहा है इसका बयान किया है । ढेर सारे महँगे उपहार पाने के बाद भी 'उत्सव' के पति-पत्नी मजीठिया के न आने से नाराज हैं और जो प्राप्त है, उसका आनंद भी नहीं उठा पा रहे हैं। दीपावली की सारी सजावट के बावजूद उनके फ्लैट में सन्नाटा छाया हुआ है क्योंकि उनके लिए सबसे महँगा उपहार अभी तक नहीं पहुँचा है । वस्तुओं के प्रति अति लालसा ने उनसे उपलब्ध सुख भी छीन लिया है । इससे ठीक उल्टा उनकी नौकरानी के घर की स्थिति है जो गरीब होने के बावजूद जो है उसमें समाधानी है और अपने तरीके से दीपावली जैसे उत्सव का आनंद मनाने में मग्न है ।

प्राचीन काल से भारत में कलाओं का विकास होता आया है । आज भी विविध माध्यमों से कलाओं के विकास को प्रोत्सहन दिया जा रहा है । इन कलाओं में चित्रकला भी एक है । हर कला के विकास में कलाकार की साधना होती है । इसी साधना के आधार पर उस कला की कीमत आँकी जाती है । आज हम देखते हैं कि बाजारवाद एवं उपभोक्तावाद के परिणामस्वरूप कला का ग्राहक कम से कम दाम में उसे खरीदना चाहता है और बेचक अधिक से अधिक दाम पर बेचना चाहता है । 'पुल टूटते हुए' कहानी में चित्रकारों की लाचारी का वर्णन आया है, जहाँ मायाजी के चित्रों को एक ग्राहक ढाई सौ में खरीदना चाहता है, शौनक के पाँचों चित्र उसी दाम पर बेचे जा चुके हैं । आज चित्रकार भी अपने चित्र कम दामों पर बेचने के लिए लाचार हैं।

आज संचार माध्यमों के विस्पोट ने उपभोग की वस्तुओं के महत्व को बहुत बढ़ाया है । उन्हें हासिल करना ही आज के व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य बन गया है । ये वस्तुएँ, भौतिक सुख-सुविधाएँ जीने की सहूलियतें देती हैं, एक हद तक ये महत्वपूर्ण हैं पर ये मानव-जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकतीं । इनको प्राप्त करने में जीवन की सार्थकता ढूँढने वाले लोगों की प्रवृत्ति पर लेखिका ने प्रश्न-चिह्न लगाया है ।

३.२.१६ देश-प्रेम

'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरियसी' जन्मभूमि तो स्वर्ग से भी महान होती है । भारत एक ऐसा देश है जिसकी तुलना किसी भी देश से नहीं की जा सकती । ऐसे देश में रहनेवाले भारतीयों को अपने देश के प्रति प्रेम होना तो स्वाभाविक है । आज अपने देश के कई युवक विदेशों में शिक्षा हेतु एवं नौकरी की वजह से विदेशों में रह रहे हैं । लेकिन इन लोगों के मन में अपने देश के प्रति अपार प्रेम है । कुछ लोग अपने मन से तो कुछ लोग मजबूरी वश विदेशों में आज स्थानांतरित हो रहे हैं लेकिन उनके मन में अपने देश का अभिमान है । सूर्यबाला की 'मानुष गंध' कहानी युवकों के स्वदेश प्रेम का प्रतिनिधित्व करती है । अपने देश के लिए कुछ करने की चाहते होते हुए भी ये लोग विदेश जाने के लिए कितने मजबूर किए जाते हैं इसका यथार्थ वर्णन कहानी में आया है । विदेश में बसे इन लोगों ने हिंदुस्तान के बाहर, अपना एक छोटा सा हिंदुस्तान बनाया है । लेखिका लिखती है - "देख सकती हूँ, कितनी भी दूर से । रात-दिन जग-जगकर मेहनत से पढ़ते, झोल-सी सब्जी और गले, पनीले चावल खाकर गुजारा करते, कहाँ-कहाँ से आकर परदेस में एक साथ हुए लड़के - महाराष्ट्रियन, गोअन, तमीलियन, से लेकर माथुर, कोहली, चड्ढा से चतुर्वेदियों तक- हिंदुस्तान के बाहर, अपना एक छोटा-सा हिंदुस्तान बसाए हुए । रक्षबंधन पर दूरअंदेशी बहनों की भेजी राखियाँ बाँधकर इंस्टीट्यूट जाते हुए और नवरात्रियों पर गैर-गुजराती नौसिखुए लड़के भी हाथों में डँडिया आजमाते हुए; फीकी, सूखी होलियों और बेरौनक दीवालियों पर साथ इकट्ठे हो, 'पॉट लक' पर गा-बजा, अपनी बीती होली, दीवालियों की रज्ज-गज्ज याद करते हुए ।

कभी वहाँ बसे हुए परिवार बुला लेते हैं । हमवतनों से खूब सारी बातें कहने-पूछने के लिए। साफ लगता है, बस तो गए, चाहे-अनचाहे परदेस में, लेकिन हर एक के अंदर, हर लम्हे, कंदील-सा एक हिंदस्तिान जगमगाता रहता है । भुलने की कोशिश में और ज्यादा याद आता

हुआ ।"[६१] यही तो देश प्रेम है । भारतवासी कहीं भी रहे अपने वतन के प्रति उसका प्रेम कम नहीं हो सकता ।

३.२.१७ भाषा से संबंधित समस्या

संस्कृति में भाषा का भी बहुत महत्व है । भाषा मनुष्य के बोल-चाल, रहन-सहन, आचार-विचार आदि को व्यक्त करने का साधन है । सूर्यबाला के कथा साहित्य में हिंदी और अंग्रेजी भाषा को लेकर अनेक समस्याएँ मिलती हैं । कोई भी व्यक्ति अपनी मातृभाषा में आसानी से संपेषण कर सकता है, लेकिन जब दूसरी भाषा सीखने और बोलने का सवाल आता है तब उस व्यक्ति को दूसरी भाषा सीखने के लिए बहुत मेहनत करनी पड़ती है । दूसरी भाषा सीखना गलत बात नहीं है लेकिन जब वह भाषा सीखते हुए व्यक्ति को अपनी आत्मा को बेचना पड़े तो वह गलत बात है । सूर्यबाला की कई कहानियों में उच्च शिक्षा का माध्यम बनी अंग्रेजी भाषा के दुष्परिणाम नजर आते हैं । मिडल तक केवल हिंदी माध्यम और घर के पूरे हिंदी माहौल में पढ़े हुए व्यक्ति को उच्च शिक्षा अंग्रेजी में लेनी पड़े तो बहुत सारी मुसीबतें आती हैं । अंगेजी वातावरण में पले-बड़े हुए लोगों के लिए अंग्रेजी माध्यम तो खैर ठीक है लेकिन हिंदी भाषी लोगों के लिए अंग्रेजी में उच्च शिक्षा लेना बहुत कठिन बन जाता है । 'मेरा विद्रोह' कहानी में नायक कहता है, – "मैं अंग्रेजी माध्यम से पढ़ने लगा । घर में पूरी तौर से हिंदी वातावरण, माँ-पिताजी तो बल्कि भोजपूरी में बोलते और स्कूल में बोलना पड़ता मुझे खालिस अंग्रेजी में; तीन-चार भाषाओं की खिचड़ी से मेरा दिमाग उखड़ गया।"[६२] घर का वातावरण और स्कूल का वातावरण अलग होने की वजह से बच्चों को काफी परेशानी का सामना करना पड़ता है । गाँव में मिडल तक की परीक्षा पास कर उच्चशिक्षा पाने के लिए शहर जाने वाले विद्यार्थियों को अंग्रेजी भाषा ठीक से बोलना न आने की वजह से कई मुसिबतों का सामना करना पड़ता है । कई सारे विद्यार्थी इसी की वजह से अपना आत्मविश्वास गँवा बैठते हैं । 'दिशाहीन' कहानी का नायक इसी समस्या का सामना करता

है। "पहले दिन लेक्चरर क्लास में आए तो उन्होंने कुछ पढ़ाने-बताने के बदले लड़कों का परिचय प्राप्त करने और उनसे बात करने की इच्छा जाहिर की । एक के बाद एक लड़कों से यूँ ही इधर-उधर की बातें करते रहे । सवाल ही कुछ इस मनोरंजक ढंग से करते कि सारी क्लास ठहाकों से गूँज जाती । प्रायः सभी लड़के उत्साह और जोश में थे । मेरी बारी में उनका लहजा एकदम आधुनिक हो गया था । काफी जल्दी बोलने की वजह से मैं आधी बात ही समझ पाया उसका उत्तर भी किसी तरह अटक-अटककर ही दे पाया, जो शायद उनके पल्ले नहीं पड़ा । अपनी जगह पर खड़े-खड़े ही मैंने महसूस किया कि शेष लड़के मेरी अजीबोगरीब अंग्रेजी लहजे और उच्चारण पर मुसकरा रहे हैं । कुछ तो खुलेआम हँस पड़े थे । बैठने तक मेरे कान लाल हो चुके थे, माथा पसीने से तर था और शर्म और झेंप से में रुआँसा हो रहा था ।"[६३] इसी भाषा और अंग्रजी वातावरण की वजह से कई सारे बच्चे दिशाहीन हो जाते हैं । आज भारत में हिंदी को राजभाषा का दर्जा मिला है लेकिन हिंदी को पीछे छोड़कर अंग्रेजी आगे निकल गयी है । आज देखा जाए तो छोटे से छोटे बच्चे तक अंग्रेजी में बात करते नजर आते हैं । भारत में हिंदी का क्या स्थान है यह दर्शाते हुए लेखिका ने लिखा है "जानता हूँ ....इतनी अंग्रेजी मैं भी जानता हूँ - यह भी जानता हूँ कि अपने देश की हिंदी या कोई भी भाषा आप गलत बोलेंगे तो न आपको शर्म आएगी, न सुननेवालों को, लेकिन अगर कोई अंग्रेजी गलत बोल दे तो आप सरेआम मजाक उड़ाने से नहीं चूकते ।"[६४] यह आज का सच है जो सूर्यबाला ने सामने लाया है।

३.२.१८ खेल

भारतीय संस्कृति में खेलों को भी बड़ा महत्व प्राप्त है । परंपरा से चले आ रहे खेलों को देखा जाए तो आज वे केवल एक खास दर्जे के लोगों में ही सुरक्षित है । संगणक एवं पाश्चात्य खेलों के प्रभाव स्वरूप आज पारंपारिक भारतीय खेलों की संख्या में कमी आ गयी है । संगणक पर खेले जानेवाले विडियो गेम्स ने बच्चों को आकर्षित किया है जिसकी वजह

से बच्चे अपने घर में रहकर ही ये खेल खेलते नजर आते हैं । इससे मैदानी खेल तथा पारंपारिक खेल नष्ट होते जा रहे हैं । आज हम लगातार संगणक पर विडियो गेम खेलनेवाले बच्चों की मौत की वारदातें भी पढ़ते हैं जिससे यह पता चलता है कि बच्चे कितनी पागलपन की हद तक वे गेम खेलते हैं और अपने कमरे से बाहर निकलना नहीं चाहते । उच्च वर्ग के लोगों के बच्चे क्रिकेट, बेटमिंटन, वॉलीबॉल जैसे खेलों को खेलना पसंद करते हैं । समाज का एक छोटा सा वर्ग पारंपारिक खेलों को जिंदा रखे हुए है । आज छोटी-छोटी गलियों में रहनेवाले बच्चे गिल्ली डंडा, कंचों से, चाक-चाक चालन, ऊँचे पर का गाजगू, लंगडी, पतंग काटना जैसे खेल खेलते हुए नजर आते हैं । सूर्यबाला ने अपनी कहानियों में ये आज नजरंदाज किए जानेवाले इन खेलों का जिक्र किया है ।

इस तरह से सूर्यबाला की कहानियों में संस्कृति को देखा जाए तो वह बदलते हुए इस वातावरण में भारतीय संस्कृति किस तरह से जीवित है और साथ-साथ किस हद तक बदल गयी है, इसका लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है ।

निष्कर्ष

समकालीन दौर में सूर्यबाला लेखिका के रूप में प्रसिद्धि पा रही है । आज समाज, राजनीति, धर्म, विज्ञान, संस्कृति, शिक्षा जैसे अनेक क्षेत्रों में भारी बदलाव आर हा है । इसका प्रभाव मनुष्य पर हो रहा है । आज परिस्थितियों के हाथों मनुष्य खिलौना बनता जा रहा है । हालाकि इन स्थितियों का जिम्मेदार वह खुद है । मनुष्य व्दारा निर्मित इन परिस्थितियों में जीवन बनाए रखने के लिए आज का हर व्यक्ति संघर्षरत है । कोई स्थितियों का जोर-जोर से विरोध करते हुए जी रहा है तो कोई इनसे समझौते करते हुए । सूर्यबाला के अधिकतर पात्र अधिक शोर न मचाते हुए चुपचाप समझौते करते जाते हैं और अपना जीवन निर्वाह करते हुए नजर आते हैं । कई जगह पर कुछ हद तक इनके पात्रों व्दारा विरोध होता हुआ नजर आता है लेकिन वह सूक्ष्म है । समस्याओं के समाधान के लिए कहीं विद्रोह नजर नहीं

आता । इस संदर्भ में केवल दो पात्रों को याद किया जा सकता है एक 'सुमिंतरा की बेटियाँ' और 'विजेता' कहानी का नायक सुमिंतरा की बेटियाँ सूर्यबाला की विद्रोही पात्र होने के बावजूद कोई बोल्ड निर्णय लेती हुई दिखायी नहीं देती । वे तो स्थितियों से समझौता करते हुए जीने का निर्णय लेती हैं । जबकि 'विजेता' कहानी का नायक कई साल गुलामी में काटने के बाद शोषण की प्रक्रिया असह्य होने के बाद बस में औरत को चाटा मारता है और तमाम आत्मविश्वास पाकर शोषण से मुक्ति पाने का निर्णय लेता है ।

इन पात्रों के अलावा कोई भी स्थितियों से लड़ने की कोशिश नहीं करते । इनके नारी पात्रों को देखा जाए तो इनमें अधिकतर गृहिणियाँ हैं और गृहणियों के रूप में बहुत अच्छी भूमिका निभाती हैं । ये सारी नारियाँ भारतीय नारियों की आदर्शवादी परंपरा का पालन करनेवाली हैं। सूर्यबाला की कहानियों के विषयों को देखा जाए तो समाज के हर वर्ग और आयु के पात्र एवं उनकी समस्याओं को उन्होंने चुना है । राजनीति को छोड़कर बाकी सभी विषयों पर कहानियाँ लिखी हैं । सूर्यबाला की कहानियों के सांस्कृतिक पक्ष को देखा जाए तो उसमें हिंदू संस्कृति का रेखांकन ही प्राप्त होता है । अपवाद स्वरूप दो-तीन कहानियाँ ही ऐसी हैं जिसमें अन्य धर्मों के पात्र मिलते हैं, लेकिन उन कहानियों में भी सांस्कृतिक चित्रण अधिक नहीं है । सूर्यबाला ने हिंदू संस्कृति में होनेवाले बदलाओं की ओर संकेत किया है और मानवीय एवं नैतिक मूल्यों के होते क्षरण को रोकने के लिए प्रेरित किया है । मूल्यों की महत्ता को समझाते हुए मानवता को बचाने का आग्रह उनकी कहानियों के माध्यम से हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१.	डॉ. सूर्यबाला	थालीभर चाँद	पृ.सं.-१६०
२.	डॉ. सूर्यबाला	गृहप्रवेश	पृ.सं.-११३
३.	डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ	शब्द-शब्द मानुषगंध	पृ.सं.-१०७
४.	डॉ. सूर्यबाला	साँझवाती	पृ.सं.-५१
५.	डॉ. सूर्यबाला	साँझवाती	पृ.सं.-६६
६.	डॉ. सूर्यबाला	थाली भर चाँद	पृ.सं.-६२
७.	डॉ. सूर्यबाला	थाली भर चाँद	पृ.सं.-१५२
८.	डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ	शब्द-शब्द मानुषगंध	पृ.सं.-११३
९.	डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ	शब्द-शब्द मानुषगंध	पृ.सं.-१०६
१०.	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवन्ती	पृ.सं.-३३
११.	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवन्ती	पृ.सं.-३३
१२	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं.-१४
१३	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवन्ती	पृ.सं-१३
१४	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं.-४२
१५	डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ	शब्द-श्ब्द मानुषगंध	पृ.सं.-६४
१६	डॉ. सूर्यबाला	गृहप्रवेश	पृ.सं.-६७
१७	दुष्यंत कुमार		
१८	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं.-६५
१९	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं.-७६
२०	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं.-१७
२१	डॉ. सूर्यबाला	एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम	पृ.सं-४३
२२	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं.-६६
२३	डॉ. सूर्यबाला	थाली भर चाँद	पृ.सं.-९०
२४	डॉ. सूर्यबाला	एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम	पृ.सं.-६२

२५	डॉ. सूर्यबाला	कात्यायनी संवाद	पृ.सं.-७७
२६	डॉ. सूर्यबाला	कात्यायनी संवाद	पृ.सं.-७८
२७	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं.-५७
२८	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं.-६६
२९	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं.-६७
३०	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं.-७३
३१	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं.-७३
३२	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं.-२५
३३	डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ	शब्द-श्ब्द मानुषगंध	पृ.सं.-२४
३४	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं.-३४
३५	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं.-४४
३६	डॉ. सूर्यबाला	साँझवाती	पृ.सं.-०८
३७	डॉ. सूर्यबाला	थाली भर चाँद	पृ.सं.-३०
३८	डॉ. सूर्यबाला	थाली भर चाँद	पृ.सं.-३५
३९	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं.१३२
४०	डॉ. सूर्यबाला	गृहप्रवेश	पृ.सं.-६१
४१	डॉ. सूर्यबाला	गृहप्रवेश	पृ.सं.-६७
४२	डॉ. सूर्यबाला	गृहप्रवेश	पृ.सं.-६७
४३	डॉ. सूर्यबाला	गृहप्रवेश	पृ.सं.-७०
४४	डॉ. सूर्यबाला	गृहप्रवेश	पृ.सं.-११
४५	डॉ. सूर्यबाला	गृहप्रवेश	पृ.सं.-१५
४६	डॉ. सूर्यबाला	गृहप्रवेश	पृ.सं.-५३
४७	डॉ. सूर्यबाला	कात्यायनी संवाद	पृ.सं.-४७,४८
४८	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं.-४२
४९	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं.-४०
५०	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं.-४२,४३

५१	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं.-४६
५२	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं.-४६
५३	डॉ. सूर्यबाला	एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम	पृ.सं.-३४
५४	डॉ. सूर्यबाला	साँझवाती	पृ.सं.-७५
५५	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं-८६
५६	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं.-४२
५७	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवन्ती	पृ.सं.-३९
५८	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवन्ती	पृ.सं.-३५
५९	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं.-४३
६०	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं.-५०
६१	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं.-१०२
६२	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवन्ती	पृ.सं.-१७
६३	डॉ. सूर्यबाला	एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम	पृ.सं.-१०१
६४	डॉ. सूर्यबाला	कात्यायनी संवाद	पृ.सं-४७
६५	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं.-१८
६६	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं.-१५
६७	डॉ. सूर्यबाला	गृहप्रवेश	पृ.सं-५७
६८	डॉ. सूर्यबाला	गृहप्रवेश	पृ.सं.-५८
६९	डॉ. सूर्यबाला	गृहप्रवेश	पृ.सं.-५७
७०	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं.-७७
७१	डॉ. सूर्यबाला	इक्कीस कहानियाँ	पृ.सं.-१३२
७२	डॉ. सूर्यबाला	इक्कीस कहानियाँ	पृ.सं.-१३४
७३	डॉ. सूर्यबाला	थाली भर चाँद	पृ.सं.-१०५
७४	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवन्ती	पृ.सं.-१५
७५	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवन्ती	पृ.सं.-१६
७६	डॉ. सूर्यबाला	कात्यायनी संवाद	पृ.सं.-८५

७७	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं.-१०
७८	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं.-११
७९	डॉ. सूर्यबाला	गृहप्रवेश	पृ.सं.-०९
८०	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं.-८०
८१	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं-८१
८२	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं.-८१
८३	डॉ. सूर्यबाला	साँझवाती	पृ.सं.-२६
८४	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं.-२१
८५	डॉ. सूर्यबाला	गृहप्रवेश	पृ.सं.-११७
८६	डॉ. सूर्यबाला	गृहप्रवेश	पृ.सं.-१२७
८७	डॉ. सूर्यबाला	कात्यायनी संवाद	पृ.सं.-७४
८८	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं.-३१
८९	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं.-११५
९०	डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ	शब्द-श्ब्द मानुषगंध	पृ.सं.-११२
९०	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं.-८,९
९१	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं.-०८
९२	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं.-१११
९३	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं.-१११

अध्याय-४ सूर्यबाला के उपन्यासों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य

उपन्यास मानव-जीवन की कहानी है । मनव की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं से घटित घटनाओं की रोचक, कल्पनात्मक, अनुभवजन्य सत्य की अभिव्यक्ति उपन्यास में होती है, जो मानव के कौतूहल के साथ-साथ उसकी आशा-आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व भी करती है । यह कथा व्यक्ति विशेष की न रहकर संपूर्ण समाज की कथा के रूप में कलात्मक आधार पाकर लोक रंजन तो करती ही है साथ ही समाज का प्रतिबिंब भी प्रस्तुत करती है।

रचनाकार समाज में रहता है इसलिए उसका साहित्य भी समाज से प्रभावित होता है । सूर्यबाला भारत में जन्मी, पली-बढ़ी हुई, जिसकी वजह से उन्हें यहाँ के समाज एवं संस्कृति का भली-भाँति परिचय है । विदेश में वह अपने बेटे के घर एवं कई सारे कार्यक्रमों में सहभागी होने हेतु जाती रही है, इससे विदेशी समाज से भी परिचित होती रही है । सूर्यबाला ने विविध विषयों पर अब तक पाँच उपन्यासों का सृजन किया है । उनके कुछ उपन्यासों में दोनों समाजों एवं संस्कृतियों की तुलना मिलती है तो कुछ में केवल भारतीय समाज एवं संस्कृति का चित्र उभरकर आया हुआ मिलता है । इसी का विस्तृत अध्ययन इस अध्याय में करेंगे ।

४.१ सूर्यबाला के उपन्यासों में सामाजिक परिदृश्य

४.१.१ पुरुष प्रधान समाज

भारतीय समाज पुरुष प्रधान समाज कहलाता है, जहाँ परिवार में पुरुषों का वर्चस्व पाया जाता है । ऐसे समाज में स्त्रियों को दुय्यम स्थान प्रदान किया जाता है । परिवार की सुरक्षा का दायित्व पुरुष पर होता है । सभी निर्णय लेने का कार्य भी वही करता है । 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में परिवार में सारे निर्णय शिवा का पति ही लेता है । शिवा कोई भी निर्णय लेने के

लिए स्वतंत्र है, लेकिन पति का सम्मान रखने के लिए वह कोई भी निर्णय नहीं लेती । उसकी बेटी ऋचा को यह सब पसंद नहीं होता । वह इस बात का हर समय विरोध करती है । वह अपने निर्णय खुद लेना चाहती है तो शिवा उसे डाँटती है । सूर्यबाला ने इन दोनों में वैचारिक अंतराल को दिखाया है । साथ ही प्राचीन सामाजिक मान्यताओं में आनेवाले बदलाव की ओर भी संकेत किया है। पुरुष प्रधान समाज में बेटे के जन्म को बड़ा महत्व दिया जाता है । जिसके घर में बेटा पैदा हो उसके घर में उत्सव का वातावरण होता है और बेटी पैदा होने पर मनहुसियत छा जाती है । बेटे को घर का चिराग माना जाता है क्योंकि वह अपने माँ-बाप की वंश बेला बढ़ाता है । वही माँ-बाप के बुढ़ापे का आधार समझा जाता है । आज समाज में कितना कुछ परिवर्तन आया है लेकिन लोगों की मानसिकता में अंतर नहीं आ रहा है । 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में नायक को दो बेटियों के अलावा दूसरी पत्नी से जब तीसरी बेटी ही पैदा होती है तो बहुत दुख होता है । यह दुख उसे आगे जीवन भर सलता रहता है इसलिए सभी लोगों के सामने अपनी पत्नी का अपमान करने से भी वह पीछे नहीं हटता । सभी के सामने अपने मन की बात स्वीकार करते हुए कहता है, - "जन्म भर तो अपने बेटे का इंतजार करता रहा, अब बेटी के बेटे पर ही सोचा हौसला निकाल लूं ।"[7]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने समकालीन दौर में बुढ़ापे का आधार कहलानेवाले बेटों की करतुतों का भी जायजा दिया है, जो अपने माँ-बाप को देश में बाट जोहने के लिए छोड़कर विदेश चले जाते हैं, अपने माँ-बाप के बिजनेस का दिवाला निकालकर आवारागर्दी करते हैं, जो अपने ही बुढ़े माँ-बाप को बोझ समझते हैं। ऐसे में लड़कों को बुढ़ापे का सहारा कहना कहाँ तक सही होगा ? यह सवाल लेखिका पाठकों के सामने रखती है । इससे अच्छी तो लड़कियाँ होती हैं जो अपने माँ-बाप को उनके बुढ़ापे में सहारा बनतीं हैं, और अपनी जिम्मेदारियों को बखुबी निभाती हुई पायी जाती हैं ।

४.१.२ सामाजिक वर्ग-भेद

प्राचीन काल में भारतीय समाज चार वर्णों में विभाजित था । हर वर्ण अपना-अपना कार्य करता था और समाज के विकास में सहायक होता था । कालांतर में जाति-प्रथा का विकास हुआ । समाज कई जातियों में और फिर उपजातियों में बँट गया । लोग अपनी जाति को महत्व देने लगे । स्वातंत्र्योत्तर काल में जाति-प्रथा के उन्मुलन को प्रधानता दी गयी जिसके परिणामस्वरूप जाति-प्रथा के बंधन तो ढीले हो गये लेकिन आर्थिक दृष्टि से समाज में वर्ग-भेद उभरकर आए । आज समाज में प्रमुख रूप से तीन वर्ग हैं - १) उच्च-वर्ग २) मध्य-वर्ग और निम्न-वर्ग । मध्य-वर्ग के तीन उप-भाग हैं - १) उच्च-मध्य वर्ग २) मध्य-मध्य वर्ग और निम्न-मध्य वर्ग । इन वर्गों में रहनेवाले लोगों का रहन-सहन उनकी आय पर निर्भर करता है । जब एक वर्ग की लड़की की शादी दूसरे वर्ग के लड़के से होती है तो घर एवं वर्ग की परिस्थितियों के अनुसार उसे अपना रहन-सहन बदलना पड़ता है । सूर्यबाला के कथा-साहित्य में कई रचनाओं में ये स्थितियाँ आयी हैं । 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में शिवा निम्न-मध्यवर्गीय लड़की है जिसकी परिस्थितियों के कारण उच्च-वर्ग के विधूर लड़के से शादी की जाती है । उन्मुक्त वातावरण में जीनेवाली होशियार, कलाप्रेमी किशोरी की शादी जब अभिजात्य घराने में होती है तो नए घर में शिवा को सेठानी माँ (सास) के आदेशों के अनुसार अपने विचार, पहनावा, रहन-सहन बदलना पड़ता है । जब वह पहनने के लिए कम दामों की साड़ियाँ या हलके सेट पसंद करती तो उसकी सास उसे कहती है -"खानदानी लोगों पर भारी-बहुमूल्य चीजें ही शोभा देती हैं । हलकी-फुलकी चीजें छोटे लोगों के लिए पहनने-ओढ़ने की होती हैं हम भी वैसा ही पहने तो हमारे-उनके बीच फर्क ही क्या रह जाये ? है न ? इसमें खानदान की इज्जत का सवाल रहता है ।"[२] इस तरह से वह उसे हवेली की खानदानी रईसी के अदब-कायदों, रहन-सहन और तौर-तरीकों की शिक्षा देती इसलिए शिवा को खुद में आमूल परिवर्तन लाना पड़ता है । यथार्थ जीवन में भी जब ऐसे विवाह होते हैं

तो सामाजिक ढाँचे के अनुसार वधु या वर को अपने संस्कारों में परिवर्तन लाना पड़ता है और उसके अनुसार रहना पड़ता है तभी जाकर वे विवाह सफल होने की संभावनाएँ रहती हैं।

आज हर व्यक्ति समाज में इज्जत, मान-सम्मान, प्रतिष्ठा पाना चाहता है । निम्न-वर्ग इसके बारे में उतना सजग नहीं होता जितना कि उच्च एवं मध्य-वर्ग । निम्न एवं मध्य-वर्ग में इसे लेकर कुछ रीतियाँ भी बन जाती हैं। सूर्यबाला के 'सुबह के इंतजार तक' उपन्यास में मीनू के पिता को 'मुंशीजी' और माँ को 'मूंशिआइन' कहकर बुलानेवाले समाज में वे अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए अपनी इज्जत के अनुकूल काम ढुँढते हैं लेकिन उन्हें जो काम मिलते है वे उनकी जाती एवं वर्ग-चेतना के अनुकूल नहीं होते "जैसे रसोई बनाने का, किसी के घर दिन भर बच्चे की आयागिरी करने का या सड़क पर खड़े होकर साबुन या बिस्कुट बेचने जैसे काम।"[३] पिताजी भी लिखा-पढ़ी का ही काम ढुँढते । 'वर्कर' या 'क्लीनर' का काम करने में वे शर्मिंदगी महसूस करते। मीनू की माँ समाज की रीति का ही पालन कर रही थी इसी से उनकी इज्जत समाज में बनी रहती । मीनू कहती है -"शायद यह माँ का अपना मोरचा था, जिस पर वह जी-जान से जुटी, पूरी दिलेरी से जूझ रही थीं ।"[४] इसी वजह से वह बलात्कारित मीनू की कोई मदद नहीं कर पाती । मीनू की वजह से उसकी अब तक सुरक्षित रखी हुई इज्जत, मर्यादा और प्रतिष्ठा मिठ्ठी में मिल जाएगी यह सोचकर ही वह बीमार होती है । मीनू सोचती है -"काश, हम अपनी सारी तंगहाली के साथ खुलेआम जी सकते ! ....माँ लोगों के घर खाना बना पातीं, पिताजी ठेले पर फेरी लगा पाते, बुलू जूते में पॉलिश कर पाता । शायद हम इससे कहीं बेहतर जिंदगी जी पाते...."[५] बलात्कारित मीनू अपनी बिमार माँ के बारे में कहती है- "माँ को मैं नहीं 'माँ की अपनी 'वर्ग-चेतना', उनकी मर्यादा की आँच उन्हें तपा रही है ।"[६]

अपने एवं अपने परिवार के विकास में बाधा बननेवाली मान-मर्यादा, इज्जत, प्रतिष्ठा या वर्ग-चेतना किस काम की ? यह सवाल मीनू के माध्यम से लेखिका समाज के सामने रखती है । साथ ही मीनू के माध्यम से इन सभी बातों को झूठा, समाज का ढोंग बताकर सुलझी हुई मानसिकता से जीने के लिए लोगों को प्रेरित करती है ।

'दीक्षांत' उपन्यास में शर्मा सर का वर्ग-बोध दिखायी देता है । शर्मा सर को जब पता चलता है कि उनका छोटा बेटा विमल ड्रामें में नौकर बना है और नितिन बरुआ राजा बना है तो वे क्रोधित होते हैं, ऐसा लगता है - "जैसे अदृश्य हुई लपट भक से जल उठी हो और उनका तन, मन सब कुछ दहककर झुलस गया हो, खिंची नसों, भिंचे होंठों से वे उस लपट की आँच बरदाश्त करने लगे ।"[७] वे अपना सारा गुस्सा अपनी पत्नी कुंती पर निकालते हैं । विमल के स्कूल में न जाकर कोई कारण बताकर घर पर ही रहते हैं लेकिन उनके मन में बार-बार बच्चों का खयाल आता है । विमल के ड्रामे का दृश्य जब उनके मन में उभरता है तब उन्हें लगता है कि "चादर फेंक, बुशर्ट-चप्पल डाल सीधे भागते हुए स्कूल के खचाखच भरे हाल के दर्शकों को धकियाते हुए पहुँच जाये । सजे-धजे स्टेज पर और नौकर बन झिल्ले कपड़ों में रिरियाते, दुबले, सावले विमलभूषण शर्मा को बाह पकड़कर स्टेज के नीचे घसीट लाये, खूब खलबली मचे, स्कूल में चारों तरफ हाय-तोबा हो...और बीचोबीच वे जी खोलकर हसें - प्रतिशोध..."[८] इस तरह से समकालीन दौर में भी लोगों व्दारा वर्गों का ध्यान रखा जाता है यह स्पष्ट होता है ।

४.१.३ भ्रष्टाचार

संपूर्ण विश्व में भ्रष्टाचार की कीड़ आज समाज को खोखला बना रही है । इसका प्रभाव भारतीय समाज में सामान्य मनुष्य के जीवन पर भी दिखायी देता है । सूर्यबाला के कथा-साहित्य में इसी का प्रतिबिंब नजर आता है । 'अग्नीपंखी' उपन्यास में नौकरी के संबंध में

भ्रष्टाचार की स्थिति दिखायी देती है । आज समाज में युवकों को सीधे रूप से नौकरियाँ कम ही मिलती हैं । कितना भी शिक्षित युवक हो उसे नौकरी पाने के लिए एक तो बड़े लोगों से पहचान रखनी पड़ती है या पैसे देने पड़ते हैं तभी नौकरी मिलने की संभावना रहती है। आज केवल पैसा और पहचानें नौकरी पाने के निकष बन रहे हैं । लेखिका ने इसी बात को उपन्यास के माध्यम से सामने लाया है । 'अग्निपंखी' उपन्यास का कथा-नायक जयशंकर पढ़ने के बाद जब नौकरी ढूँढता है तो नौकरी देनेवालों व्दारा पैसों की माँग की जाती है । जब वह पैसे जुटाने में असफल होता है तो उसपर बेरोजगार रहने की नौबत आती है । 'दीक्षांत' उपन्यास के शर्मा सर की स्थिति का कारण भी भ्रष्टाचार ही है । इसी की वजह से उन्हें सामान्य सी नौकरी भी नहीं मिलती और उनका जीवन त्रासदीपूर्ण बन जाता है।

४.१.४ गरीबी से संबंधित समस्याएँ

आधुनिक समाज में बाजार-व्यवस्था के आगमन से भारत में गरीबी ने प्रवेश किया । आजाद भारत में सरकार व्दारा गरीबी की समस्या को मिटाने के लिए आये दिन नयी-नयी योजनाएँ बनायी जाती हैं लेकिन गरीबी को खतम करने में वह आज तक असफल रही है । गरीबी की वजह से अन्य कई समस्याओं का निर्माण होता है । अनमेल विवाह की समस्या भी इसी से जुड़ी हुई है । 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में आयी हुई अनमेल विवाह की समस्या का कारण गरीबी ही है ।

भारतीय समाज में अनमेल विवाह की समस्या प्राचीन काल से विद्यमान रही है । हिंदू पुराणों में भी इसके उल्लेख मिलते हैं । समसामयिक युग में भी यह समस्या विद्यमान है । आज भी भारतीय समाज में अधेड़ उम्र के लड़कों से किशोरी लड़कियों की शादी की जाती है । प्रेमचंद के 'गोदान' तथा 'निर्मला' जैसे उपन्यासों में इस समस्या को उठाया है । इस समस्या के कई कारण हो सकते हैं, लेकिन उनमें प्रमुख है - गरीबी की समस्या । निम्न तथा निम्न-

मध्य वर्ग के लोग जब अपनी बेटी के ब्याह में दहेज नहीं जुटा पाते तो किसी भी उम्र के लड़के के साथ उसका विवाह तय कर अपनी जिम्मेदारी से छुटकारा पाते हैं । उच्च-वर्ग के विधूर या बड़ी उम्रवाले पुरुष अपनी अमीरी के बल पर निम्न-वर्ग या निम्न-मध्य वर्ग की किशोरी लड़कियों से विवाह करते हैं । अपनी गरीबी के कारण इस वर्ग के लोग अभिजात्य घर में अपनी बेटी को ब्याहकर धन्यता महसूस करते हैं चाहे लड़का विधूर और कई बच्चों वाला ही क्यों न हो । सूर्यबाला के 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास को पढ़ते समय 'निर्मला' उपन्यास की याद आती है । निर्मला की तरह शिवा भी अपने अधेड़ उम्र के पति के साथ अधेड़ बनने की कोशिश करती है । अपने बाल पके हुए देखकर दुखी होने की बजाय खुश होती है । बुद्धिवान होने के बावजूद भी अपने पति को खुद से नीचा न दिखाने की जी तोड़ कोशिश करती है । अपने मन को, विचारों को दबाती हुई जीती है । अपनी ईच्छाओं को दबाकर सास व्दारा सौंपी हुई जिम्मेदारियों को बखुबी निभाते हुए अपने संपूर्ण जीवन में संधियाँ करती चली जाती है ।

गरीबी ही निम्न एवं निम्न-मध्य वर्ग की समस्याओं की जड़ है । चोरी, डकैती, खून, शोषण, अशिक्षा, भूखमरी, अस्वास्थ्य आदि समस्याओं की पैदाईश गरीबी से होती है । 'सुबह के इंतजार तक' उपन्यास में मीनू का परिवार गरीब होने की वजह से बुलू को स्कूल छोड़कर मजदूरी करनी पड़ती है । मीनू अपनी पढ़ाई जारी नहीं रख पाती, गरीबी की वजह से उन्हें भूखों रहना पड़ता है, इसलिए मीनू को उसके मामा के साथ उनके घर भेजा जाता है जहाँ उसका शोषण होता है । माँ और छोटा भाई बिट्टू की दवा-दारू एवं पौष्टिक अन्न न मिलने की वजह से अस्वस्थ्य रहते हैं । उसमें बिट्टू की तो मौत भी होती है । अपने जीवन के उत्तरार्ध में मीनू कड़ी मेहनत कर पैसे कमाती है लेकिन बुलू और अपनी जरूरतों को भी पूरा नहीं कर पाती । समय पर दवा-दारू न हो पाने के कारण उसकी मौत हो जाती है । हमारे समाज में इस तरह की स्थितियाँ नयी नहीं हैं । गरीबी की वजह से आज भी

कई लोग अपनी जान गँवा बैठते हैं । जीवन को न ढो पाने की वजह से आत्महत्याएँ तक करते हैं । उनके लिए सूर्यबाला मीनू के माध्यम से उदाहरण रखकर जीवन को चुनौती के रूप में स्वीकारने की प्रेरणा देती है ।

सूर्यबाला ने भारत में स्थित गरीब लोगों का यथार्थ वर्णन अपने 'अग्निपंखी' उपन्यास में किया है । उपन्यास में जयशंकर जब नौकरी करने के लिए शहर चला जाता है तब देखता है कि वह अकेला ही ऐसा नहीं है "उस जैसों की एक पूरी जमात, एक पूरी दुनिया । बोरी, कागज, प्लास्टिक और चिथड़ों की गुदड़ियाँ । यहाँ से वहाँ सजे हुए फुटपाथ, भिनकते बच्चे, भरे-पूरे कुटुंब।"[९] भारत के अधिकतर शहरों में स्थित झोपड़पट्टियों में यही स्थिति नजर आती है । नौकरी की आशा में शहर में जानेवाले लोग कामचलाउ नौकरी लगने पर ऐसे ही गुजारा करते हैं ।

गरीबी की वजह से 'दीक्षांत' के मध्य-मध्य वर्गीय शर्मा सर के लिए जीवन त्रासदीपूर्ण बन जाता है । अपनी गरीबी की वजह से देहात का आत्मविश्वासी बालक शहरी अमीरों के बीच आत्मविश्वास जुटाने में असफल बन जाता है । जीवन के लिए महत्वपूर्ण चीजें पाने के लिए भी मोहताज बने शर्माजी शाम को थकान के बाद एक चाय लेने से भी कतराते हैं । उनका अंतर्मन उससे होनेवाली बचत का हिसाब लगाता है -"एक कप चाय रोज के हिसाब से महीने भर की चीनी, चाय और दूध ही जोड़ा जाये तो दस-पंद्रह रुपये महीने की बचत और दस-पंद्रह रुपये का मतलब है बाह पर मसके हुए ब्लाउज वाली कुंती के लिए एक नया ब्लाउज पीस, विनय के फटे स्कूल बैग की जगह एक नया सस्ता बैग या उनके कॉलेज ले जाने के टिफिन के लिए अल्यूमीनियम के डिब्बे की जगह नया स्टील का डिब्बा ।"[१०] जी तोड़ मेहनत कर उच्च शिक्षा पाकर भी जब साधारण सी भी नौकरी नहीं मिल पाती तब निराशा, आत्मपीड़ा, घुटन, जीवन को खोखला बनाकर छोड़ते हैं। ऐसे में अगर उसे परिवार

का बोझ भी ढोना हो तो नौकरी के लिए दूसरों के सामने गिड़गिड़ाने के सिवा उसके पास कोई चारा नहीं रह जाता । जब प्रिंसिपल राजदान व्दारा शर्मा सर को नौकरी छोड़ने के लिए कहा जाता है तो परिवार का ध्यान आने पर यह कहते हुए शर्माजी रो पड़ते हैं कि–"मैं भी अकेला नहीं सर, मेरी पत्नी, स्कूल जाते बच्चे, गाँव में बूढ़ी माँ....मेरे साथ अशक्त, अबोध, मुझ पर पूरी तरह निर्भर, एक निर्धन परिवार है, सर..."[११]

नौकरी छूटने के बाद अपने जीवन में आनेवाली गरीबी की भयानकता को सोचकर शर्माजी लाचार बन जाते हैं। यही लाचारी उन्हें आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करती है । अपने परिवारवालों के दुख के बारे में सोचते हुए वे अपने आप से कहते हैं –"विद्याभूषण बैठे–बैठे, असहाय, अपाहिज–से देखते रहोगे यह सब..... अपने आप को, अपने पुरुषत्व को धिक्कारते ... नहीं–नहीं डाल दो एक पूरी अंधेरी यवनिका इस अपाहिज, टुकड़े–टुकड़े की मोहताज जिंदगी पर, कूद पड़ो हरहराती, हलकोरती लहरों में इस बुर्जी से .... खत्म, सब कुछ खत्म..."[१२]

शर्मा सर की मौत के बाद उनकी चिता पर डालने के लिए उनकी पत्नी के पास कफन के लिए पैसे तक नहीं रहते । तब वह चुपचाप अपने कान के कर्णफूल निकालकर थमा देती है जिससे कफन एवं दहन संस्कार तक की विधियाँ पूरी की जाती हैं ।

भारतीय समाज में छोटे बच्चों को ईश्वर का वरदान समझा जाता है । जन्म लेते समय अमीर या गरीब घराने में जन्म लेना उनके हाथ में नहीं होता । उनका मन साफ एवं कोमल होता है । भारतीय सामाजिक स्थिति ही ऐसी है कि गरीब बच्चों को वे सारी सुविधाएँ नहीं मिल पातीं जो अमीर बच्चों को मिलती हैं । अमीर बच्चों की तरह गरीब बच्चों की भी अपनी एक दुनिया होती है, उनके अपने सपने होते हैं, लेकिन कई बार उनके घर की स्थितियाँ उनके अरमानों को पूरा कर पाने में असमर्थ होतीं हैं । 'सुबह के इंतजार तक'

उपन्यास का बुलू बहुत पढ़ना चाहता है । पढ़ाई में बहुत मेहनत करता है इसके बावजूद उसके माँ-बाप के पास पैसे नहीं रहते तो उसकी पढ़ाई रोककर उसे गुप्ताजी के गिराज में काम करने के लिए भेजा जाता है । ऐसे ही हमारे समाज में कई सारे बच्चे हैं, जो बाकी बच्चों की तरह पाठशाला जाकर पढ़ना चाहते हैं लेकिन उन्हें मजदूर बनने के लिए स्थितियाँ मजबूर करती हैं । ऐसे में सारी सरकारी योजनाएँ, सामाजिक संस्थाएँ ऐसी स्थिति रोकने में विफल ही तो हो जाती हैं ।

४.१.५ बेरोजगारी

आजाद भारत में शिक्षित लोगों के योग्य रोजगार की समस्या दिन ब दिन बढ़ती जा रही है इसलिए उच्च शिक्षित होकर भी लोग आज बेरोजगार हैं । इसी की ओर संकेत करती हुई 'सुबह के इंतजार तक' उपन्यास में सूर्यबाला लिखती है -"बुलू, आजकल पढ़ाई-लिखाई में कुछ रखा नहीं, बेटे ।....आजकल तो बी.ए., एम.ए. वाले भी बेकार ही घूम रहे हैं न।"[१३]

'दीक्षांत' उपन्यास में शर्मा सर ने पी.एच.डी. की है लेकिन उन्हें अपनी लाचारी की वजह से ज्यूनियर कॉलेज में पढ़ाना पड़ता है । कई बार ओवर कोलिफाइड होने की वजह से ही नौकरी से हाथ धोना पड़ता है । प्राथमिक शिक्षक के पद पर नौकरी करने की तैयारी होने के बावजूद भी इस उच्च शिक्षित युवक को सामान्य सी नौकरी पाना भी दुर्लभ हो जाता है ।

भारत में शिक्षित युवकों की स्थिति कुछ ऐसी ही है । आज शिक्षा का प्रचार-प्रसार बहुत हुआ है । उच्च शिक्षा भी बड़ी मात्रा में ली जा रही है । उच्च शिक्षा पाने का उद्देश्य केवल नौकरियाँ पाना ही रह गया है इसलिए जब शिक्षित वर्ग के लिए उनकी शिक्षा के अनुकूल नौकरियाँ नहीं मिलती तो उन्हें मोहभंग का सामना करना पड़ता है । उपन्यास में ज्यूनियर कॉलेज में अस्थायी रूप से पढ़ानेवाले शर्मा सर से इस्तीफा माँगा जाता है तो उनके सामने अपने परिवार के निर्वाह की समस्या खड़ी होती है । अपने बेरोजगार होने का दुख उन्हें

आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करता है । आज हम देखते हैं कि कई सारे युवक अपने बेरोजगार होने की स्थिति का सामना करने में असफल होते हैं, क्योंकि यह स्थिति मनुष्य को लोगों के सामने और अपने आप में खोखला बना देती है और उच्च शिक्षित व्यक्ति के लिए ऐसे जीना मरने से भी भयंकर बन जाता है इसलिए कई सारे युवक आत्महत्या कर इस पीड़ा से मुक्ति पाते हैं ।

आज अधिकतर शिक्षित लोग समाज में अपनी प्रतिष्ठा, अपनी शिक्षा और कम से कम काम कर अधिक से अधिक आय कैसी प्राप्त की जाए यह देखते हैं और इसके आधार पर काम ढुंढते हैं । ऐसा काम जब उन्हें नहीं मिलता तब भूखों मरने के अलावा उनके पास और कोई चारा नहीं रहता । इसी तरह से गरीबी की समस्या निर्माण होती है । सूर्यबाला को ऐसे युवकों की मानसिकता की पहचान है इसीलिए उनके कथा-साहित्य में ऐसी समस्याएँ उभरकर आयी हैं । 'सुबह के इंतजार तक' उपन्यास में उन्होंने भारतीय शिक्षित समाज के इन्हीं विचारों पर प्रहार किया है । उपन्यास नायिका मीनू इन बातों के प्रति विद्रोह करती हुई दिखायी देती है। वह जीविका चलाने के लिए झाडू लगाने से लेकर ट्यूशन लेने का काम करने के लिए भी तैयार हो जाती है और अपने जीवन में दकियानुसी विचारों को त्यागकर, मेहनत कर सहज जीवन जीती है ।

इसके माध्यम से लेखिका भारतीयों को यह संदेश देना चाहती है कि कोई भी काम बड़ा या छोटा नहीं होता। काम सिर्फ काम होता है । लोगों को कोई भी काम करने से पीछे नहीं हटना चाहिए ।

४.१.६ तलाक की समस्या

आज पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव स्वरूप भारतीय समाज में तलाक की समस्या दिन ब दिन बढ़ रही है । परिवार में जब पति-पत्नी की नहीं बनती तब एक-दूसरे को तलाक दिया जाता

है । आज भारतीय समाज में बहुत ही छोट-छोटे कारणों से तलाक दिए जा रहे हैं । आज के जमाने में स्त्री और पुरुष आर्थिक दृष्टि से सबल होने की वजह से समझदारी एवं प्रेम के अभाव में ऐसे निर्णय ले बैठते हैं जिसका परिणाम कई बार उनके बच्चों को भुगतना पड़ता है । मन्नू भण्डारी का उपन्यास 'आपका बण्टी' इसी समस्या को चित्रित करता है । 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में रत्नेश और उनकी पत्नी के बीच तलाक होता है । रत्नेश का अपनी मॉर्डन पत्नी के प्रति एक तरफा प्रेम होने की वजह से रत्नेश को लगता है कि वह उसे तलाक न देकर उस पर अन्याय कर रहा है, यही सोचकर वह उसे तलाक देता है । वास्तव में दोनों के विचारों में, जीवन शैली में, रहन-सहन में अंतर होने के कारण रत्नेश व्दारा अपनी पत्नी को तलाक दिया जाता है ।

४.१.७ बलात्कार की समस्या

किसी भी महिला के लिए बलात्कार की स्थिति भयानक होती है । इससे उसकी जिंदगी उजड़ जाती है । इस स्थिति में पुरुष की कुत्सित वासनाओं की शिकार नारी बनती है और समाज इसका दोष केवल नारी के माथे ही मढ़ता है । बलात्कारित नारी को समाज में कोई स्थान नहीं रहता । उसे नीच माना जाता है । उसे सभ्य कहलानेवाला समाज अपने पास आश्रय नहीं देता । इसी वजह से 'सुबह के इंतजार तक' उपन्यास में बलात्कारित मीनू को अपने घर से भागना पड़ता है । उसे काम करने जाते वक्त अप्रिय स्थिति का सामना करना पड़ता है । धर्मशाला के दादा भी सच्चायी जानने के बाद उन्हें वहाँ से निकाल देते हैं, स्कूल में नौकरी करते वक्त अध्यापकों के ताने सुनने पड़ते हैं । मीनू को उसके माता-पिता अपनी इज्ज्जत के डर से नहीं अपना पाते वहाँ औरों की क्या मजाल ! लोग तो लोग ही होते हैं । वे क्यों बलात्कारित महिला को आश्रय दें जबकि उसके माता-पिता ही उसे ठुकराए ? ऐसे में आत्महत्या के सिवाय उसके पास कोई चारा नहीं रहता। भारत में इसी सामाजिक मानसिकता

की शिकार अनेक महिलाएँ होती हैं, जिसकी वजह से आए दिन समाचार-पत्रों में इस तरह की वारदातें पढ़ने को मिलती हैं । जब तक ऐसे हादसों को झेलकर समाज को मुँहतोड़ जवाब देकर महिलाएँ जीवन में आगे नहीं बढेगीं और समाज अपनी ऐसी महिलाओं के प्रति मानसिकता नहीं बदलेगा तब तक आत्महत्या की कड़ियाँ समाप्त नहीं होगी इसलिए सूर्यबाला ने प्रस्तुत उपन्यास की मीनू के माध्यम से बलात्कारित महिलाओं के सामने उदाहरण रखकर समाज को मुँहतोड़ जवाब देते हुए जिंदगी जीने के लिए प्रेरित किया है । साथ ही यह भी कहने का प्रयास किया है कि जब हम सब कुछ स्वीकार कर जीने के लिए तैयार हो जाते हैं तो समाज भी सहज रूप से स्वीकारने लगता है ।

४.१.८ असहिष्णुता

आधुनिक काल में समाज सुधारकों के व्दारा नारी की स्थिति में सुधार लाने के प्रयास किए गये । उनमें से एक प्रयास था विधवा पुनर्विवाह का । आज लगभग सौ साल बाद जब एक विधवा अपने पति की मौत के बाद पुनर्विवाह का निर्णय लेती है तो समाज उसके प्रति असहिष्णुता से पेश आता है । 'यामिनी कथा' उपन्यास में जब यामिनी निखिल से पुनर्विवाह करती है तो समाज के डर से घर से बाहर निकलने के लिए डरती है। वह पुतुल की स्थिति के बारे में सोचती है लोगों की कुत्सित नजरों एवं सवाल-जवाबों का सामना उसके बेटे पुतुल को करना पड़ेगा ।

४.१.९ सामाजिक मर्यादा

समाज में नैतिकता को बनाए रखने के लिए समाज विशेष के अपने कुछ नियम होते हैं, मर्यादाएँ होती हैं जिनका पालन समाज विशेष के लोग करते हैं । जैसे घुँघट निकालना, पुरुषों एवं बड़े लोगों के सामने ऊँची आवाज में बातें न करना, बड़ों का मान रखने के लिए अनेक तरह की रीतियाँ निभाना, पर-पुरुष से बातें न करना आदि । 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में भी

सामाजिक मर्यादा की बात आयी है जहाँ शिवा और रत्नेश माथुर एक-दूसरे से बातें करते हैं तब शिवा के घर के नौकर-नौकरानी वहाँ आस-पास न हो इसका खयाल रखते हैं । वे आस-पास आने पर तुरंत बातों का रूख बदला जाता है । शिवा सोचती है -"केशो के सामने बोलना ठीक भी नहीं होता । सामाजिक मर्यादाओं की भी तो अपनी अहमियत है ।"[१४]

४.१.१० दिखावापन

कवि भवानीप्रसाद मिश्रजी कहते हैं -'जो हूँ, वही होने से डर रहा हूँ !'[१५]

आज के समाज में यही प्रवृत्ति नजर आती है । लोग जो है वैसा ही रहने से कतराते हैं, शरमाते हैं । जो है वैसा ही रहने का, दिखने का साहस कुछ लोग नहीं कर पा रहे हैं । मध्य-वर्गीय जीवन की यही त्रासदी है । अधिकतर निम्न एवं मध्य-मध्य वर्गीय लोग अपनी स्थिति को जाहीर न होने देते हुए जीना पसंद करते हैं । अभावों में जीते हुए भी समाज में अपनी इज्जत एवं मर्यादा का खयाल जरूर रखते हैं । 'सुबह के इंतजार तक' उपन्यास में निम्न-मध्यवर्गीय परिवार में दरवाजे का कुंडा खटकते ही घर में चहल-पहल मच जाती है । लेखिका कहती है -"कुंडा खटकेगा तो दरवाजा एकदम से नहीं खुलेगा । पहले बुलू आकर दराजों से झाँकेगा, फिर वह माँ से फुसफुसाएगा । माँ जल्दी से झिल्लड़ पेटीकोट पर लपेटा दो हाथ का टुकड़ा फेंक, एक फटी पर धुली सी साड़ी पहनकर दरवाजा खोलेंगी, तब तक पिताजी तमाम छेदोंवाली बनियान के ऊपर धारीदार कमीज डाल लेंगे । बुलू कोने में पड़ी खाट की चादर खींच, मैले तकिए को ढाँक देगा.....जैसे नाटक का कोई अंक बदल रहा हो....पूरी मंच सज्जा बदल दी जाती । उदास फिक्रमंद चेहरों पर खींच-खींचकर मुसकान लायी जाती हँसी-खुशी और दुनियादारी की बातें ...अभाव और दुख जैसे जीवन का सबसे बड़ा कलंक हो...भूल से भी बातों के बीच नहीं फटकना चाहिए उन्हें..."[१६]

ऐसी बातों से लेखिका को नफरत है । वह ऐसे दंभी लोगों का विरोध करती हुई मानू के माध्यम से कहती है, सामाजिक प्रतिष्ठा पाने के लिए अपनी भूख और अभाव को छिपाने की क्या आवश्यकता है ? वह भी उन लोगों से जो उनकी हालातों से कोई वास्ता रखना नहीं चाहते, जो अपने में ही मस्त जीते हैं । अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा बनाए रखने की कोशिश में उपन्यास में आया हुआ मीनू का परिवार भूखों मरने के लिए बाध्य है । सूर्यबाला नायिका मीनू के माध्यम से इन बातों पर व्यंग्य करते हुए लिखती है –"पता नहीं, यह माँ की कौन सी मजबूरी, झक या कमजोरी थी जो हम नहीं थे वह दिखना, जो घट रहा था उसे नकारना, जो सच था उसे झूठ साबित करने की कोशिश ।"[१७]

दिखावेपन को अपने परिवार की कमजोरी मानते हुए नायिका उम्र भर इसका विरोध कर छद्महीन जीवन सहजता से जीती है । सूर्यबाला अपनी कई कहानियों के माध्यम से दिखावेपन का विरोध करती है । दिखावेपन से जीवन की सहजता खतम हो जाती है और हम दुख, तनाव, त्रास, लुकाव-छिपाव वाला जीवन जीने के लिए अभिशप्त हो जाते हैं ।

आज मनुष्य जो है वह दिखने से डर रहा है । कोई अपनी सामाजिक मर्यादा को ध्यान में रखते हुए तो कोई अपनी अहं की तुष्टि के लिए । 'अग्निपंखी' उपन्यास में जयशंकर नौकरी से छुट्टी पाकर जब गाँव जाता है तो अपने परिवारवालों के लिए ढेर सारे उपहार लेकर जाता है । वह उनके माध्यम से यह जताता है कि शहर में उसे अफसर की नौकरी मिली है जबकि खुद सामान्य मजदूर की नौकरी करता है । अफसर जैसे उसके पहनावे को देखकर लोगों को लगता है कि उसे अच्छी नौकरी मिली है । वह सोचता है –"ऐसे ही जाया करेगा। साल छह महीने पर दो-चार रंगीन छींटदार धोतियों, अँगोछों और खटमीठी गोलियों से काम चल जाया करेगा । शहरी ठाट की ठसक कायम रहेगी । इनकी सिहाती आँखें, खुशी के बहाने टेढ़े होते होंठ देखकर कारखाने की चक्की में पिसते, खकते, लस्त होते उसके देह-मन

को थोड़ी ठंडक और राहत पहुँचती रहेगी । उस दुनिया, उस जिंदगी की भनक भी इन लोगों को न लगने देगा ।"[१८] इस तरह से अपने अहंकार की तुष्टि के लिए परिवारवालों के सामने अपनी असली जिंदगी को छिपाकर जीने की वजह से उसके जीवन में अनेक बाधाएँ ही उत्पन्न होतीं हैं ।

४.१.११ स्वार्थ केंद्रित समाज

आज के जमाने में मानव किसी भी सौदे में घाटा नहीं चाहता । बस फायदा ही फायदा । जहाँ नुकसान की आशंका हो, वहाँ जाना ही नहीं, देखना भी पसंद नहीं करता । 'दीक्षांत' उपन्यास में ठक्कर की बीवी को लगता है कि एक ही घर में दो ट्यूशन लेने की वजह से मास्टर को पंद्रह-बीस रुपये ज्यादा ही मिलते हैं इसलिए वह अपने निजी काम भी उनसे करवाती है । अपने स्वार्थ के सामने उसे मास्टर की इज्जत, मान मर्यादा की बात छूती तक नहीं ।

इसी उपन्यास में शर्मा सर का सरे आम क्लास में अपमान होते देख कोई भी शिक्षक उनका साथ देने के लिए सामने नहीं आता । शर्मा सर के साथ विद्यार्थियों के होनेवाले उद्दंण्ड व्यवहार को देख कोई शिक्षक उनका साथ नहीं देता क्योंकि सभी को अपनी-अपनी नौकरी की चिंता है और शर्मा सर का साथ देने का मतलब था सीधे-सीधे नौकरी से हाथ धोना । शर्मा सर का आधा स्टाफ उनसे कतराता रहता था क्योंकि उनके साथ रहने में भी एक खतरा-सा उनके आस-पास मंडराता महसूस होता था । शर्मा सर को बरुआ (विद्यार्थी) रास्ते में रोककर जब धमकी देता है, तब शर्मा सर को लगता है कि उनके साथ हुए इस अभद्र व्यवहार के प्रति अवश्य एक्शन लिया जाएगा लेकिन परमानेंट और सीनियर लेक्चरर्स उस घटना के विरोध में कुछ नहीं कहते । प्रिंसिपल भी कोई बात नहीं कहते । ऐसे में अस्थायी अध्यापकों पर व्यंग्य करती हुई लेखिका लिखती है "अस्थायी नियुक्तिवाले अध्यापकों को उनके

मान-अपमान से ज्यादा अपनी रोजी-रोटी की पड़ी थी । सामना पड़ने पर किसी तरह हां-हूं करके जल्दी से बगलें झांकते निकल जाते । चार-छः साल बाद ही सही परमानेंट होने की उम्मीद की होड़ा-होड़ी तो सभी के अंदर थी । अब इस पचड़े में पड़कर अपना नाम, गुटबंदी और पॉलिटिक्स के साथ जुड़वाने का खतरा कौन मोल लें?"[१६]

शर्मा सर की मौत के जिम्मेदार सारे शिक्षक उनकी मृत्यु के बाद भी अपने-अपने स्वार्थ की परिपूर्ति की होड़ में लग जाते हैं । लेखिका के शब्दों में "अध्यापकों का दल तीन गुटों में बंट गया था । एक दल कॉफी हाउस में इस नपुंसक प्रिंसिपल को हर चुस्की के साथ बारी-बारी से अलग-अलग भाषा में गालियाँ दे रहा था । अप्रत्यक्ष रूप से प्रिंसिपल को हटाने की योजना भी, जिसमें फुसफुसाहटों के बीच यह भी कि इसमें उत्तेजित छात्रों का पूरा सहयोग लिया जा सकेगा । दूसरा दल अधिक व्यापक दृष्टि अपनाने की हिमायत की आड़ में इस मौके का फायदा उठा, प्रिंसिपल का खैरख्वाह बन, उनके और ज्यादा करीब आने के हौसले

बुलंद कर रहा था । तीसरा ग्रुप शहर में हाफ रेट पर लगी एक पुरानी हिंदी फिल्म की बुकिंग विंडों के पास खड़ा खिड़की खुलने का इंतजार कर रहा था ।"[२०]

इस तरह से शर्मा सर की मौत से अपना स्वार्थ निकालना भी ये लोग नहीं छोड़ते । ये उपन्यास आज के समाज का प्रतिबिंब लेकर उभरता है । आज के लोग आपमतलबी ही होते जा रहे हैं । अपने स्वार्थ से सरोकार रखनेवाले लोग कभी किसी के लिए खतरा मोल नहीं लेते।

उपन्यास में स्थित कॉलेज का मैनेजमेंट भी बड़ा स्वार्थी है । कॉलेज की रोकी हुई ग्रांट पाने के लिए नये आए एम.एल.ए. से दोस्ती रखते हैं । एम.एल.ए. भी बड़ा चालाक है जो अपने भानजे के लिए कॉलेज में नौकरी दिलवाने के बदले में ही उनका काम करवाना चाहता

है । इन सभी के बीच शर्मा सर के जीवन की त्रासदी बन जाती है जिसकी चिंता किसी को नहीं है ।

४.१.१२ शिक्षा से संबंधित समस्याएँ

आज की शिक्षा व्यवस्था में राजनीति अपनी अहम् भूमिका निभाती है । अधिकतर राजनीतिज्ञों के लिए शिक्षा के क्षेत्र में निवेश करना फायदेमंद नजर आने लगा है । इसी वजह से कई सारे राजनीतिज्ञ कॉलेज बनवा रहे हैं । आज शिक्षा के क्षेत्र में ज्ञान देना और ज्ञान लेना महत्वपूर्ण नहीं रहा है। महत्वपूर्ण बन रहे हैं केवल दिए जानेवाले और लिए जानेवाले मार्क्स या अंक जो नौकरी पाने के लिए आवश्यक समझे जा रहे हैं । कई कॉलेजों में तो डिग्रियाँ बेची और खरीदी जा रहीं हैं । इस क्षेत्र में नौकरियाँ भी उन्हीं लोगों को मिल रही हैं जो नौकरियाँ खरीदने के काबिल हों या राजनीतिज्ञों तथा मैनेजमेंट के लोगों से संबंध रखते हो । इस क्षेत्र में काबिलियत की आवश्यकता नजर नहीं आती । इस तरह से आज शिक्षा व्यवस्था अपने पतन के कगार पर है ।

पहले जमाने में शिक्षक ज्ञान-दान के साथ-साथ विद्यार्थियों में चारित्रिक सुधार का दायित्व निभाकर समाज को एक जिम्मेदार नागरिक प्रदान करते थे । आज खुद शिक्षक को ही अपना चरित्र सुधारने की आवश्यकता है। आज शिक्षा को व्यवसाय के साथ जोड़कर देखा जाता है । कक्षाओं में विद्यार्थियों को सरेआम ट्यूशन के लिए बुलाकर अपने अतिरिक्त आय के साधन जुटाए जाने लगे हैं । 'दीक्षांत' उपन्यास में शिक्षा के क्षेत्र में स्थित इस समस्या को लेखिका ने बड़ी मार्मिकता से रेखांकित किया है । मन्नू भण्डारी व्दारा लिखित एकांकिका 'रजनी' का मूल प्रतिपाद्य विषय भी यही समस्या रही है । 'दीक्षांत' उपन्यास के नायक शर्मा सर के बड़े बेटे विनय को गणित और अंग्रेजी में कम नम्बर मिलने की वजह ही यह है, कि उसने अपने ही शिक्षकों से शाम के समय ट्यूशन नहीं लिया । शर्मा सर के कॉलेज के

प्राध्यापक भी निहायत बेशर्मी से सीधे कहते –"अरे, अपने फादर से कहो, ट्यूशन दिलाये बिना तुम्हारी गाड़ी इस जक्शन से खिसकने वाली नहीं .."[२१] इस तरह से शिक्षा का आज व्यवसायीकरण होते हुए देखा जा सकता है ।

अमीर लोगों के लिए अध्यापक की नौकरी समय बिताने का साधन बन रही है । उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में आसानी से नौकरियाँ मिल रही हैं क्योंकि उनके पास भले ही ज्ञान न हो लेकिन पैसा जरूर है, जिसके बल पर नौकरी आसानी से प्राप्त होती है । उपन्यास में मिसेज सब्बरवाल ऐसे ही नौकरी प्राप्त करनेवाले लोगों का प्रतिनिधित्व करती है । चंद्रभान सिंह जैसे चरित्रहीन शिक्षक को संपूर्ण कॉलेज में सम्मान प्राप्त होता है । पैसे एवं पहचान के आधार पर एम.एल.ए. के भतीजे की नौकरी का इंतजाम शर्मा सर जैसे मेहनती, ईमानदार, चरित्रवान व्यक्ति की बलि देकर किया जाता है । आज हमारे समाज में ऐसी घटनाएँ आए दिन देखने को मिलती हैं । राजनीतिज्ञों के चमचों को आसानी से नौकरियाँ प्राप्त हो रही हैं और काबिल व्यक्ति जी जान से नौकरी पाने की कोशिश में अपना जीवन बिता रहा है ।

शिक्षा के क्षेत्र में आज अनुशासनहीनता बढ़ती जा रही है । मैनेजमेंट की नीतियों, सरकारी कानूनों, प्रशासन की कुटनीति की वजह से शिक्षा के पवित्र क्षेत्र में गंदगी फैल रही है । इसी का पर्दाफाश सूर्यबाला ने 'दीक्षांत' में किया है । विद्यार्थियों व्दारा किए जानेवाले अपमान को सहने के लिए आज अस्थायी शिक्षक मजबूर हैं, क्योंकि उन्हें अपनी नौकरी की फिकर रहती है । शिक्षक की इसी मजबूरी को शर्मा सर के माध्यम से लेखिका उजागर करती है । राजदान सिंह, कॉलेज के प्रिंसिपल, अपने स्वार्थ के कारण विद्यार्थियों की उद्दंडता को देखते हुए भी चुप रहते हैं क्योंकि उन्हीं विद्यार्थियों के पालकों के अनुदान से कॉलेज सुचारु रूप से चलता है। वे उल्टा शर्मा सर पर ही आरोप करते है । शर्मा सर जब कॉलेज की अनुशासनहीनता का विरोध करते है, तो उन्हें ही नौकरी से हाथ धोना पड़ता है । आज के

समाज में यही तो हो रहा है । इसी वजह से सच को सच कहने की हिम्मत सभी नहीं जुटा पाते । विद्यार्थियों के चरित्रहीन आचरण को लगाम डालनेवाले शिक्षकों के हाथों को कानून एवं प्रशासन ने बांध रखा है । विद्यार्थियों को गलत काम करने पर डाँटनेवाले शिक्षक को आज सजा के पात्र समझा जा रहा है । ऐसे में शिक्षक वर्ग अपने कर्तव्य से विमुख होना सहजिक है । इसके बावजूद भी कई सारे शिक्षक अपने कर्तव्य के प्रति सजग रहकर अपनी जिम्मेदारी निभाते हुए आज भी अपने समाज में नजर आते हैं लेकिन शर्मा सर जैसे ईमानदार शिक्षक को कई सारी चुनौतियों का सामना जरूर करना पड़ता है ।

आज देशी भाषाओं के प्राध्यापकों की स्थिति बड़ी दयनीय हो रही है । बड़ी संख्या में ये उपलब्ध होने की वजह से नौकरियाँ मिलना इनके लिए कठिन बन रहा है । इस समस्या को सूर्यबाला ने अपने इस उपन्यास में उठाया है । प्रिंसिपल राजदान सिंह का कथन है- "देखिए, हिंदी प्राध्यापकों की स्थिति काफी नाजुक है ...स्कोप ही नहीं ... सोच लीजिए, विद्यार्थी शिक्षा के माध्यम से सबसे पहले रोजी-रोटी की समस्या हल करना चाहते हैं न ... और उन्हें दोष भी नहीं दिया जा सकता तो भाषा और साहित्य तो फुरसत की खुराकी है न ..."[२२]

आज भाषा और साहित्य की ओर इसी दृष्टि से देखा जा रहा है । वास्तव में भाषा बोलचाल में अनुशासन लाती है और साहित्य मनुष्य को अनेक अनुभवों की पूँजी सौंपकर उसकी संवेदनाओं को बनाए रखते हुए उसे सच्चा मनुष्यत्व प्राप्त करने में मदद करता है । आज शिक्षा का उद्‌देश्य संकुचित होकर केवल नौकरी पाने तक ही सीमित रह गया है । इसी वजह से भाषा और साहित्य गौण विषय समझे जाने लगे हैं।

४.१.१३ आधुनिकता

भारत में आजादी के बाद सभी क्षेत्रों में तेजी से बदलाव आते गए । शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ा, गरीबों एवं निम्न वर्गीय लोगों के साथ राष्ट्र के विकास के लिए अनेक पंचवर्षीय योजनाएँ बनायी गयीं, राजनीतिक क्षेत्र में कुर्सियाँ बदलती रहीं, उनकी नीतियाँ बदलती रहीं, समाज का ढाँचा बदलता रहा । पारिवारिक संबंधों में बदलाव आते रहे, परिवार टूटकर बिखर गए । बाजारवाद का आगमन हुआ, इसका मानवीय जीवन पर बड़ा प्रभाव रहा । विज्ञापन की दूनिया ने बाजार की चकाचौंध को घर-घर तक पहुँचाया । संचार माध्यमों के व्दारा लोग देश-विदेश की खबरों को प्राप्त करने लगे । अंग्रेजों के शासन काल में भारतीय उनकी संस्कृति से प्रभावित तो थे ही अब संचार माध्यमों ने पाश्चात्य संस्कृति एवं उस संस्कृति से संबंधित सारी चीजों को लोगों के व्दार तक पहुँचाने का काम किया । इसी के फलस्वरूप बाजारवाद एवं उपभोक्तावाद का प्रभाव संपूर्ण भारतीय जनमानस पर होने लगा इस वजह से भारत की प्राचीन संस्कृति के साथ-साथ सुख चैन समाधान भी भारतीयों के हाथों से जाता रहा । थोड़े में ही समाधान और सुख मानने की प्रवृत्ति नष्ट होती रही । मनुष्य की कीमत घटकर पैसों की कीमत में बढ़ोत्तरी होती रही । इससे सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन पर गहरा असर पड़ा। मूल्यों में गिरावट और बदलाव आने लगा । राष्ट्र के लिए त्याग एवं बलिदान मजाक बन गया । राजनीतिज्ञों का अपने राष्ट्र और भारतीयों के प्रति भ्रष्ट व्यवहार को देखते हुए युवकों में मोहभंग के साथ-साथ चरित्रहीनता का संचार होने लगा । इसी के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय त्योहार या अपने मूल्यों के प्रति लोग उपहासात्मक नजर से देखने लगे। इस तरह से युवाओं के दिशाहीन होने तथा चरित्रहीन होने के लिए कौन जिम्मेदार है यह सवाल सूर्यबाला को अक्सर सताता है । वे शर्मा सर इस पात्र के माध्यम से लिखती है - "क्यों ऐसा होता है? क्यों भावनाएँ कात्ल हो जातीं हैं इस तरह ? उत्तरदायी कौन है ? क्यों ज्यादा पढ़-लिखकर हम ज्यादा संकीर्ण हो जाते हैं ? और 'आधुनिक' होने का अर्थ क्यों

मनुष्य के मूलभूत मूल्यों का मजाक बनाने से लिया जाने लगा है ? तभी तो आधुनिकता की ओट में हम इन कसमों, इन भावनाओं की खिल्ली उड़ाने लगे हैं ! इन्हें एक तरह का बचकाना दर्जा देने लगे हैं । क्यों सहज शब्दोंवाला सीधा-सादा जीवन-दर्शन हमें पिछड़ी कोटि का लगने लगा है ? और हम सिर्फ कुतर्कों के माध्यम से उन्हें झठुलाने पर तुले हुए हैं । एकांगी वे संस्कार, वे भावनाएँ हैं या यह नव्य ओढ़ा हुआ मुखौटा ? अधकचरा और बचकाना क्या है ? अब हमसे क्यों नहीं संभल पा रहा, यह सादगी-भरा जीवनदर्शन जो कहता है : वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे ।"[२३]

४.१.१४ राष्ट्रीय पर्व

आज भारत में छब्बीस जनवरी, पंद्रह अगस्त के दिनों को राष्ट्रीय पर्वों के रूप में मनाया जाता है । आरंभिक वर्षों में ये पर्व मनाते समय लोगों में बड़ा उत्साह रहता था । बड़े गर्व से यह त्योहार मनाये जाते थे और देश के लिए बलिदान करनेवाले लोगों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की जाती थी । आज राजनेताओं का भ्रष्टाचार और नीतियों की वजह से ही इन पर्वों के प्रति उपहासात्मक नजरों से देखा जाने लगा है । कई सारे लोगों के मन में यही सवाल उभरता है कि आजादी क्या हमने इसी वजह से पायी है ? इसलिए आज के विद्यार्थियों में भी राष्ट्रीष पर्व मनाने का वह उत्साह दिखायी नहीं देता जो पहले दिखायी देता था । नीरी औपचारिकता के रूप में ये उत्सव आज मनाये जा रहे हैं ।

४.२ सूर्यबाला के उपन्यासों में सांस्कृतिक परिदृश्य

विश्व की सभी संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति अपनी कई विशेषताओं के कारण आज भी अपनी निरंतरता बनाए हुए है । इसी संस्कृति से प्यार करनेवाली सूर्यबाला के उपन्यास साहित्य में उसका प्रतिबिंब नजर आता है जिसका अध्ययन इस अध्याय में किया जा रहा है ।

४.२.१ भारतीय नारी

भारतीय नारी की महिमा प्राचीन काल से गायी जाती रही है । सूर्यबाला ने अपने उपन्यासों में उसी पारंपारिक नारी के रूप का चित्रण किया है । नारी के जीवन में आयु के साथ-साथ उसके रूप बदलते रहते हैं । वह बेटी, बहन, सहचरी, माँ, दादी या नानी अनेक रूपों में नजर आती है । भारतीय नारी पतिव्रता, मेधावी, सुंदर, सहनशील, ममतालु, निस्वार्थी, त्यागी जैसे अनेक गुणों से परिपूर्ण होती है । सूर्यबाला के उपन्यासों में नारी इन्हीं रूपों में चित्रित है । उनके 'मेरे संधिपत्र' की नायिका 'शिवा' उपर्युक्त गुणों से परिपूर्ण है । आज के जमाने में शिवा जैसी स्त्री मिलना मुश्किल है । शिवा का वर्णन कालातीत प्रतित होता है क्योंकि आज एक मेधावी लड़की जिसकी आकांक्षाएँ आसमान छूती हों, केवल अपनी निम्न-मध्यवर्गीय स्थितियों की वजह से एक अभिजात्य विधूर, जिसके पास केवल अमीरी है, ऐसे लड़के से शादी नहीं कर सकती । साथ ही जब अपने मन के अनुसार जीने के लिए वह आजाद होती है तब भी अपने प्रिय से दुसरी शादी कर उन्मुक्त रूप से जीने में आज की महिला ज्यादा विश्वास करेगी । इसलिए कह सकते हैं कि शिवा का वर्णन पचास साल पहली स्त्री का वर्णन है ।

'यामिनी कथा' में यामिनी टिपीकल भारतीय नारी के रूप में चित्रित हुई है । एक बार विश्वास को अपना मानने के बाद उसके व्दारा कई बार अपमानित होने पर भी उसे छोड़ नहीं पाती और उसकी मौत के बाद निखिल से शादी कर जब फिर एक बार सुख के क्षणों को बटोरने की बारी आती है तब निखिल और विश्वास से पैदा बेटे पुतुल का संबंध जोड़ने में अपना जीवन बर्बाद करती है । इससे निखिल पुतुल को अपना प्रतिव्दंव्दि समझने लगता है और यामिनी का जीवन पूरी तरह से असहज बन जाता है । यहाँ इस स्थिति की निर्माता खुद यामिनी है ।

भारतीय नारी पति को परमेश्वर के रूप में देखती है । वह बुद्धिहीन, अकर्मण्य भी हो तो भी वह पति होने के कारण नारी के लिए सम्मान के पात्र होता है । 'मेरे संधिपत्र' की शिवा अपने अधेड़ उम्र के पति को परमेश्वर मानती है । उसकी हर हिदायतों और आदेशों का पालन करती है । अपनी बेटियों से अपने पति के बारे में कुछ भी बुरा नहीं सुनना चाहती । वह खुद भी अपने पति से कभी बहस नहीं करती, किसी बात पर कभी झगड़ती भी नहीं बल्कि पति की हाँ में हाँ मिलाती रहती है । अपने पति का मान रखने के लिए कभी भी घर के फैसले खुद नहीं लेती, जब कि उसके पति को इससे कोई मतलब नहीं होता । घर में कई बार अपमान के घुँट पीकर रहती है लेकिन कभी भी अपने मन की बात जाहिर नहीं होने देती । अपने पति को संतुष्ट रखने के लिए अपनी कोख से जन्मी बेटी से ज्यादा सौतेली बेटियों का खयाल रखती है । भारतीय नारी की यह एक प्रवृत्ति है कि वह कितनी भी होशियार होने के बावजूद वह खुद को पति के सामने हीन ही मानती रही है ।

नारी अपने प्राकृतिक रूप में ही सहनशील होती है । इसी वजह से मातृत्व का वरदान उसे प्राप्त हुआ है । 'मेरे संधिपत्र' की नायिका शिवा बहुत सहनशील है । वह जीवन भर अपने पति को सहती है । मन में न रहते हुए भी सास के आदेशों का पालन करती है । सहनशीलता की वजह से ही वह अपनी जिंदगी के हर मोड़ पर समझौता करती चली जाती है ।

भारतीय समाज एवं संस्कृति में विधवा औरत को कोई सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता । परिवार में उसके साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार किया जाता है । घर में वह लोगों के लिए दया की पात्र समझी जाती है । घरवालों को उसके रूप में नौकरानी की उपलब्धी होती है । प्राचीन काल में तो उसकी स्थिति और भी दयनीय थी । उसकी छाया को भी अशुभ माना जाता था । आधुनिक भारत में समाज सुधारकों ने उसकी स्थिति में सुधार लाने के प्रयास

किए लेकिन आज भी हमारी संस्कृति में उसे सम्मान का स्थान प्राप्त नहीं हो सका है । किसी भी शगुन के कार्य में उसे शामिल नहीं किया जाता । उसके वहाँ होने से अपशगुन माना जाता है । श्रृंगार रहित निस्सार जीवन बिताना ही उसकी नियती समझी जाती है । उससे घर के सारे काम करवाए जाते हैं । पति की मौत की वजह से उसके सामने पहाड़ रूपी जिंदगी रहती ही है उसमें घरवाले भी उसकी स्थिति का फायदा उठाने से बाज नहीं आते । सूर्यबाला के 'अग्निपंखी' उपन्यास में जयशंकर की माँ विधवा है । परिवार में उसकी स्थिति का रेखांकन करते हुए लेखिका लिखती है -"उसके तो शौक-सिंगार का सवाल ही नहीं। सच पूछो तो वो जितनी खटे, जितनी थके, वही उसका इलाज और वही उसकी खुशी होनी चाहिए । पहाड़ सी जिंदगी के लिए समय काटने का इससे अच्छा उपाय और भला क्या !"[२४] श्यामकिशोर की शादी में तो उसे चुल्हा-चौका सँभालने का काम दिया जाता है और उस पर सभी लोगों को खिलाने-पिलाने की जिम्मेदारी सौंपी जाती है । कोई उसे उसके खुशहाली के बारे में नहीं पूछता । उसका बेटा भी उससे बैरी के समान पेश आता है।

४.२.२ रीति-रिवाज

भारतीय संस्कृति में अनेक रीति-रिवाज मिलते हैं । भारतीय लोग इन रीति-रिवाजों का पालन करते हैं । ईश्वर में आस्था एवं श्रद्धा होने की वजह से ईश्वर की पूजा की जाती है, आरती उतारी जाती है, व्रत एवं उपवास रखा जाता है । इससे ईश्वर की प्राप्ति की कामना की जाती है । 'मेरे संधिपत्र' की शिवा मंगलवार के दिन व्रत रखती है और हर दिन ईश्वर की पूजा कर सबके कल्याण की कामना करती है ।

हर धर्म एवं समाज के लोगों ने अपनी रीतियाँ बनायी हैं । उन रीतियों के अनुसार वे लोग अपना जीवन-यापन करते हैं । ये रीतियाँ ही कई बार समाज में लोगों को प्रतिष्ठा दिलाती हैं। 'सुबह के इंतजार तक' उपन्यास में इन्हीं रीतियों का पालन करनेवाला परिवार हमें मिलता

है । साफ-सुथरा रहना, आने-जानेवाले की आव-भगत करना, समाज में नीच समझे जानेवाले काम न करना जैसी बातों का पालन करने से लोगों पर उनकी छाप बनती है और इन अलग से रहनेवाले लोगों को अन्य वर्ग मान देता है । 'सुबह के इंतजार तक' उपन्यास में मीनू की बस्तीवाले लड़के निम्न-वर्ग के होने के कारण उसके माता-पिता दिखने पर उनका अभिवादन करते और उनका सामान घर पहुँचाते थे । ये उस वर्ग की पुरानी रीतियाँ थीं जिनका वे पालन करते आये थे। इसी को मीनू के माता-पिता अपनी प्रतिष्ठा मानते थे । यही मान प्राप्त करने के लिए मीनू की माँ जी तोड़ कोशिश करती है । मीनू कहती है -"माँ की सबसे बड़ी कोशिश हम सबका भूखा तंगहाल न दिखना था। उनका सबसे बड़ा सुख सुखी होना नहीं, सुखी दिखना था ।"[२५] मीनू के माँ-बाप इसी की वजह से मिलनेवाले काम नहीं कर पाते थे इसलिए आए दिन उन्हें भूखा रहना पड़ता था । बलात्कारित मीनू से अपनी प्रतिष्ठा समाप्त हो जाएगी यह सोचकर उसकी माँ बिस्तर पकड़ लेती है । ऐसी स्थितियों में भी ये वर्ग अपनी रीतियाँ छोड़ने के लिए तैयार नहीं रहता । इसी वजह से मीनू को घर छोड़ना पड़ता है । गुसाई दादा से जब मीनू चौका-बरतन से लेकर पढ़ाने तक का काम ढुँढने को कहती है तब गुसाई दादा को आश्चर्य होता है । वे पूछते है -"तू पढ़ी-लिखी है तो चौका-बरतन कैसे करेगी ? कहाँ पढ़ाई-लिखाई और कहाँ चौका-बरतन !"[२६] मीनू के व्दारा कोई भी काम छोटा या बड़ा नहीं होता यह समझाने के बाद वे कहते हैं -"बात तो ठीक कहती है ...पर एक अपनी कुल-खानदान की परिपाटी चली आयी है और क्या ?"[२७]

किसी से संबंधित शुभवार्ता प्राप्त होने पर भगवान के सामने मीठाई रखने या भगवान को प्रसाद के रूप में मीठाई चढ़ाने की रीति भारतीय संस्कृति में मिलती है । इसी रीति का पालन बुलू खुद को नौकरी लगने पर करता है । साथ ही गुसाई दादा को भी पेढ़े देता है । मीनू अपने जीवन के पूर्वार्ध में अपनी गली के लोगों को देखती है तब पाती है कि उनका परिवार इस दुनिया के सरोकारो के बीच कहीं नहीं आता तब वह कहती है -"हम राजा है

या कंगाल, उन्हें इससे कोई मतलब ही नहीं था । फिर हमने क्यों फैला रखा था इतना बड़ा प्रेमजाल ? शायद माँ की लाचारी थी, एक रीत, परंपरा या संस्कृति ... संस्कृति इतनी दयनीय भी हो सकती है।"[२८] यहाँ सूर्यबाला संस्कृति पर व्यंग्य कर मीनू के माध्यम से ऐसी रीतियों का विरोध करती हुई लोगों के सामने सवाल रखती है कि जो रीतियाँ मनुष्य एवं समाज के विकास में बाधा बनतीं हैं उनको निभाने की जरूरत ही क्या है ?

भारतीय संस्कृति में शादी के समय बहुत सारी रीतियों का पालन किया जाता है । भौतिक वातावरण, धर्म एवं जातियों के अनुसार ये रीतियाँ अलग-अलग होतीं हैं । सूर्यबाला के 'अग्निपंखी' उपन्यास में इस तरह की रीतियों का उल्लेख मिलता है । शादी के पहले तिलक की रस्म निभाना, मंडप में पितरों का पूजन करना, मंडप छवाना, छोहड़ी खिलाना आदि ।

गाँव में बहुत सारी रीतियों का पालन जीवन के अभिन्न अंगों के रूप में किया जाता है । गाँव में बुजुर्गों को बड़ा सम्मान रहता है । उनके साथ बोलते समय, लिहाज का ध्यान रखा जाता है । बुजुर्ग महिलाओं और पुरुषों के आगे स्त्रियाँ घुँघट निकालकर सामने आतीं हैं । यहीं बातें सूर्यबाला के 'अग्निपंखी' उपन्यास में मिलती हैं । जयशंकर की माँ पुरुषों के सामने हमेशा घुँघट निकालकर जाती हैं । अपनी बहु को भी वह ये रीतियाँ सिखाने की ठानती है । वह अपने जेठ एवं जेठानी के सामने भूलकर भी अपमान जनक बातें नहीं कहती, कभी बड़ी आवाज में नहीं बोलती, अपने बेटे को भी उन्हें भला-बूरा कहने नहीं देती । शहर में जब उसे वहाँ की औरतों व्दारा बूढ़ी कहकर संबोधित किया जाता है, तो उसे उनपर गुस्सा आता है । वह सोचती है-"बूढ़ी बोलती है ! न दादी, न माँजी, न बहन - ऐसे तो कोई मुसहरिनों, कहारिनों को भी नहीं बोलता ।... यह कैसा देश है ? कैसी लट्ठमार बोली ?"[२९]

भारत में घर पर आनेवाले रिश्तेदार की बड़ी आव-भगत की जाती है । 'अग्निपंखी' उपन्यास में जब जयशंकर की माँ तिरलोकी ठाकुर के घर गयी थी तब उन्होंने बहुत ही शानदार

तरीके से उनकी आव-भगत की थी इसलिए जब वह उनके घर आते हैं तो वह उन्हें गुड़-पानी देती है, चाय देती है और अपनी बहु को हलुआ बनाने का आदेश देती है । उन्हें खाना खाने के लिए रोकती है और बड़े प्यार और अपनेपन से उनके साथ पेश आती है । वह तिरलोकी ठाकुर व्दारा की गयी आव-भगत को कभी भूल नहीं पाती और सोचती है कि उनके परिवारवालों के साथ उन्हें खाने के लिए न्योता देगी । भारत में विवाह के बाद सबसे पहले मंदिरों में देव-दर्शन को जाने का रिवाज है । उसी तरह बच्चा जनने के कुछ दिन बाद भी मंदिर में जाते हैं । प्रस्तुत उपन्यास में जयशंकर अपने बच्चे के आने की कल्पना कर वह घुमने जाने के बारे में सोचता है -"सबसे पहले बंबा देवी । महालक्ष्मी । नारियल-चुनरी चढ़ा के, तब कहीं और ।"[३०]

४.२.३ रहन-सहन

'जैसा देश वैसा भेश' के अनुसार हर देश के लोगों का पहनावा अलग होता है और साथ ही प्राकृतिक वातावरण, धर्म, आर्थिक व्यवस्था आदि के आधार पर लोगों का रहन-सहन भी बदलता है । 'मेरे संधिपत्र' में नायिका शिवा निम्न-मध्य वर्ग से होने के कारण हमेशा कम दाम की साडियाँ और हलके सेट पसंद किया करती थी लेकिन उसकी अभिजात कुल की सास उसे समझाती है कि "खानदानी लोगों पर भारी बहुमूल्य चीजें ही शोभा देती हैं । हलकी-फुलकी चीजें छोटे लोगों के लिए पहनने-ओढ़ने की होती हैं ।"[३१] उसके अनुसार बहुमूल्य चीजें पहनने से खानदान की इज्जत बनी रहती है । शिवा अपने जीवन में अपने पति और बेटियों के सुख को प्राधान्य देती है । पति की मृत्यु के बाद भी जब अपने सुख का चुनाव करने का मौका आता है तब भी उसे त्याग कर सभी के बारे में चिंतित रहती है। भारतीय परिवार में पत्नी घरवालों के सुख को अधिक महत्व देती है न की खुद के सुख को। जबकि विदेश में महिलाएँ खुद के सुख को प्राधान्य देती हैं। उपन्यास में आयी हुई वृद्धा

मिसेज अंडरवुड हर किसी के जीवन को महत्वपूर्ण मानती है और अपने अधिकारों एवं पैसों के प्रति सन्नद्ध बेटों को चेतावनी भरे पत्र लिखती है । आज अगर देखा जाए तो विदेशियों की देखा देखी में भारतीय नारी में भी बदलाव आए हैं । आज भारतीय स्त्री भी स्वार्थ के घेरे में आने लगी है और अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर अपने सुख का विचार करने लगी है ।

मनुष्य समाज से अलग होकर नहीं रह सकता इसलिए किसी समाज विशेष का रहन-सहन, पहनावा, बोल-चाल का ढंग, भाषा, खान-पान आदि का मनुष्य पर प्रभाव पड़ता है इसलिए देश से विदेश या गाँव से शहर जानेवाले लोगों की संस्कृति में बदलाव आता है । कुछ लोग सभ्य एवं आधुनिक कहलवाने के लिए अपनी संस्कृति का त्याग कर अन्य संस्कृति को अपनाते हैं । 'सुबह के इंतजार तक' उपन्यास में मीनू की मामी कस्बे से शहर में रहने जाती है तो आँखें मूँद, फैशन और आधुनिकता की अधकचरी दौड़ में शामिल हो जाती है। मीनू कहती है -"ज्यादातर समय उनका कॉलोनी की अन्य महिलाओं के रहन-सहन, बोलचाल और 'पहनाव-ओढ़ाव' के फैशन को खूब ध्यान से देखने और उसकी नकल करने में बीतता था । यहाँ तक कि कुछ ही दिनों में अपने कस्बाई अंदाज में हँसती हुई भी वे हर एक-दो वाक्य के बीच 'थैंक्यू' और 'प्लीश' कहना न भूलतीं । अलबत्ता ताली बजाकर जोर से हँसने का अंदाज वही पुराना था ।"[३२]

गाँव एवं शहर के रहन-सहन में अंतर होता है । गाँव में सभी लोग एक-दूसरे से संबंध रखना चाहते हैं । जबकि शहर में कोई किसी से अधिक संबंध नहीं रखना चाहता । गाँव में जमीन अधिक रहने की वजह से अपनी सुख-सुविधाओं को ध्यान में रखकर घर बनवाने में कोई दिक्कत नहीं रहती लेकिन शहरों में जगह कम रहने की वजह से वहाँ अपनी सुख-सुविधाओं को तक पर रखकर नौकरी की मजबूरी से रहना पड़ता है । गाँव एवं शहर के

कायदे-कानून अलग होते हैं । जैसे 'अग्निपंखी' उपन्यास में जयशंकर की माँ लोगों के सामने घुँघट निकालने में अपनी इज्जत समझती है तो शहर में रहने वाली बहु इसे अपनी बेइज्जती। गाँव में जयशंकर की माँ को महिलाएँ सम्मान से संबोधित करती हैं तो शहर में बुढ़िया कहकर उसे पुकारा जाता है। शहर में वह छह बाय छह की कोठरी में रहने के लिए मजबूर है जबकि वह अपनी बहु-बेटे से अलग कोठरी में रहना चाहती है । नहाने-धोने, खाने-पीने, नित्यकर्म निपटाने, पानी भरने, छोटी जगह पर रहने आदि बातें जयशंकर की माँ को अचंभे में डालती हैं क्योंकि गाँव में बहुत जगह होने की वजह से उसने ऐसी समस्याएँ कभी नहीं देखी थीं । शहर में जगह की तंगी के बारे में लेखिका लिखती है -"यहाँ अंदर से ऊबकर कभी दरवाजे पर भी आओ तो सामनेवाली कोठरी की खिड़की से वही अपनी कोठरी सी ही ठुँसी भरी, दूसरी कोठरी और सिगड़ी पर धरा भात का भगोना ही दीखे । अगल-बगल वह भी नहीं । सिर्फ दीवारें । कोठरियाँ और तंग कोठरियाँ और उन्हीं कोठरियों से सिकुड़े-सिमटे, अपने आप में मुँह लटकाए चेहरे । घिर्र-घिर्र, भिक-भिक चलती मशीनों की तरह ही

अँगीठियों का कोयला उलटते, कचरा फेंकते और दरवाजा बंद कर अपने आप में गुम हो जाते हुए लोग ।"[३३] ये लोग अपने में ही मस्त रहते हैं । वे और किसी से संबंध रखना नहीं चाहते । अपने सुख-दुखों को बाँटना भी नहीं चाहते । लेखिका के शब्दों में "यहाँ तो लोग अपनी-अपनी कोठरियों में दरवाजे बंद कर अपनी दुनिया की भनक बाहर नहीं लगने देते । उनका खाना-पीना रूखा या सूखा, पहनना और ओढ़ना सब कुछ उनका अपना है । उन्हें बाहरवालों का दखल बिलकुल गवारा नहीं। घर के अंदर टुकड़े-तिकोने पहने रहेंगे, लेकिन बाहर एकदम फिटफाट निकलेंगे ..."[३४] गाँव में ऐसा नहीं होता। गाँव में रहनेवाले लोग एक-दूसरे का सुख-दुख बाँटते हैं, एक-दूसरे की मदद करते हैं इसलिए जयशंकर की माँ बिमार पड़ने पर उसकी खबर लेने गाँववाले उसके पास पहुँच जाते हैं ।

गाँव में रहनेवाले लोग अपने-अपने पारंपारिक व्यवसायों को अपनी जीविका का साधन बनाते हुए, जो मिलता है, उसी से अपना गुजारा करते हैं । हालाँकि शहरी जीवन के प्रति इनके मन में आकर्षण जरूर होता है क्योंकि शहर में पैसा मिलता है । गाँव में मेहनत और परिश्रम से मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति जरूर होती है जबकि शहर में दिन-रात खटने के बाद भी बड़ी मुश्किल से दिन काटने पड़ते हैं । शहर में रहनेवाला व्यक्ति जीवन की दिनचर्या से मशीन बन जाता है । जयशंकर के मशीन बनने के बारे में लेखिका लिखती है -"अब वह हजार मनौती मानकर जन्माए और लाड़ से पाले-पोसे, दुलराए, जयशंकर की जगह मशीनी साँचे से निकाला गया टिन-पतरों का आदमी था । शरीर-मन के साथ नत्थी हुए बहुत सारे छापतिलक, कवच-कुंडल जहाँ-तहाँ गिरकर टूट-फूट गए थे । जो कुछ पहले जीवन का, अस्तित्व का जरूरी हिस्सा लगता था, उसे लोहे पर लगे जंग की तरह खुरचकर निकाल डाला गया था । अब शहर की मशीनी भट्टियों में तपाया, पकाया आदमी इस्तेमाल के लिए तैयार था ।"[३५]

लोगों का रहन-सहन वर्ग भेदों के अनुसार बदलता है । 'दीक्षांत' में दो वर्गों के रहन-सहन, खान-पान में अंतर मिलता है । एक ओर मिसेज सब्बरवाल, रीना सूरी, निखिलादास आदि महिलाएँ उच्च वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं तो दूसरी ओर मायाजी, मोनाचौधरी, कमलेशजी आदि मध्य-मध्य वर्ग की प्रतिनिधी महिलाएँ हैं । लेखिका पहले वर्ग के बारे में लिखती है- "एक टेबल पर उन इने-गिने धन्नासेठों की साहबजादियाँ हैं जिन्हें मेट्रोमोनियल के जरिये आये तमाम पैगामों में से अब तक कोई जंचा नहीं । इसलिए एम.ए पास करने के बाद बोरियत का जिक्र चलने पर बिसारिया कॉलेज के प्रिंसिपल उर्फ 'राजदान अंकल' ने फौरन इंटरव्यू काल भिजवा दिया । इसी टेबल पर संपन्न घरानों की वे विदूषी गृहिणियाँ भी हैं...जिनके लिए घर अब बेहद ऊबऊ संकरा सा दायरा बनकर रह गया है और जो किटी पार्टियों, सोशलवर्कों और सामाजिक उद्धार की सारी जिम्मेदारियों का ठेका संभालने के बाद

भी अपनी आइडेंटिटी की कलंगी संवारने के लिए बिसारिया कॉलेज जैसी संस्थाओं में बाअदब बुलायी जाती हैं ।"[२६] संक्षेप में कहा जाए तो धनाढ्य महिलाएँ केवल अपना समय बिताने और दूसरों पर रोब जमाने के वास्ते नौकरियाँ करती हैं । दूसरे वर्ग की महिलाओं का वर्णन करते हुए लेखिका लिखती है -"इनकी साडियों में डबल स्टार्च रहता है और कानों में नकली नगीनोंवाले टॉप्स, एकदम सही औकात उनकी चप्पलों को देखकर आंकी जा सकती है ।"[२७] ये महिलाएँ अपनी मध्यवर्गीय लाचारियों को 'सादगी' और उच्चवर्गीय संपन्नता को 'दिखावा' कहकर संतोष प्राप्त करती हैं । मध्य-मध्य वर्गीय शर्मा सर भी अधिक कुछ नहीं चाहते । वे बस अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति की चाह रखते हैं जिससे जीवन सरल और सहज बन सके ।

४.२.४ पारिवारिक संबंध

भारतीय परिवार में हर रिश्ता अपना एक महत्व रखता है । उसमें पति-पत्नी मिलकर परिवार

की नींव डालते हैं । 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में शिवा और उसके पति के बीच आयु का और विचारों का बड़ा अंतर नजर आता है । उसका पति पुरुष प्रधान व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता है । अपनी पत्नी की भौतिक एवं शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति तो वह करता है, लेकिन मानसिक आवश्यकताओं की ओर ध्यान नहीं देता । शादी के बाद छह सालों तक जब शिवा माँ नहीं बनती तब उसे दोष देते हुए वह कहता है -"छह साल तो हो गये सूखी की सूखी पड़ी हो ।"[४८] आज जब हमें पता है कि बच्चा न जनने के पीछे पति और पत्नी दोनों जिम्मेदार होते हैं लेकिन दोष केवल पत्नी के माथे मढ़ा जाता है । शिवा के पति को अगर देखा जाए तो वह अहंकार से ग्रस्त है । वह हर समय दूसरों के सामने शिवा को नीचा दिखाने की कोशिश करता है । शिवा अपने पारिवारिक दायित्व निभाती है । शिवा यह जानती है कि उसका पति अपने परिवार के प्रति दायित्वों को अच्छी तरह से निभाता है

इसलिए शिवा जब भी अपने और अपने पति के संबंध के बारे में सोचती है तब उसे खुद सुखी ही नजर आती है लेकिन अपने जीवन में जो उसने चाहा था वह उसे अपने जीवन में निश्चित ही नहीं मिला ।

'अग्नीपंखी' उपन्यास में 'पैसा' पारिवारिक संबंध में परिवर्तन का कारण बना है । जब जयशंकर के पिता जिवित थे तब सभी परिवारवाले एक-दूसरे के प्रति प्यार से पेश आते हुए अपनी-अपनी जिम्मेदारियों एवं कर्तव्य को बखुबी निभाते थे । उनकी मौत के बाद भी जयशंकर के नौकरी करने तक उनके चाचा-ताऊ उनको कोई कमी खलने नहीं देते । हालाँकि महिलाओं का उसके प्रति रोष निश्चित रहता है । जयशंकर को नौकरी लगने के बाद जब वह शहर से लौटता है तो यह जताता है कि वह अफसर बन गया है और उसके पास बहुत पैसे हैं । अपनी लाचार स्थिति को वह किसी भी कीमत पर जाहिर होने नहीं देता। यही पारिवारिक संबंध बिगड़ने का प्रमुख कारण बन जाता है । उसके ताऊ-चाचा को लगता है कि उसके पास बहुत पैसे हैं लेकिन वह उन्हें देना नहीं चाहता इसी वजह से वे अपने पैसों से अपनी बिमार भौजाई का इलाज करना नहीं चाहते। अगर जयशंकर अपनी वास्तविक स्थिति का बयान करता तो शायद वे उसकी मदद करते । उनके संबंध में सहजता होती, उसकी माँ भी अपने मन में स्थित सच सभी को बता पाती और घुटन से बचती । घर की औरतें उससे न जलतीं-कुढ़तीं और बहुत हद तक संबंधों में दुराव आने से रह जाता । संबंधों में अलगाव का सही कारण जयशंकर का 'अहं' है, जो उसे सच्चाई बताने से रोकता है ।

भारत में पहले संगठित परिवार की परंपरा थी । संगठित परिवार की जब बात आती है तब आपसी संबंधों की चर्चा आवश्यक बन जाती है । एक-दूसरे के प्रति कर्तव्य, प्यार, विश्वास, अपनापन हो तभी संगठित परिवार बने रहते हैं । 'अग्निपंखी' उपन्यास में जयशंकर के माँ-

बाप अपने परिवारवालों के प्रति अपनापा रखते हैं । इसी वजह से पटवारी होने के बावजूद उन्होंने बड़े-छोटे का लिहाज कभी नहीं छोड़ा, बड़े भाई के सामने कभी नजर नहीं उठाई और छोटे पर कभी गलत ऐतराज नहीं किया । बड़े के सामने छोटे का ओर छोटे के सामने बड़े का धरम निबाहा । खेत-खलिहान की बढ़ोतरी की लेकिन वह सब सँभाला भाईयों ने । इसके बदले में जयशंकर के पिता की मौत के उपरांत जयशंकर की पढ़ाई एवं परवरिश का पूरा दायित्व दोनों भाईयों ने निभाया। जयशंकर की माँ जब शहर में श्यामसुंदर की शादी का न्यौता पाती है तो अपनेपन से उसकी शादी की तैयारियाँ करने पहुँच जाती है । हाथ में पैसे न होने के बावजूद घरवालों को अनेक तोहफे लेकर जाती है। शारीरिक कमजोरी महसूस करते हुए भी चुल्हा-चौके का काम वही सँभालती है और अपना परिवार के प्रति कर्तव्य निभाती है ।

जयशंकर और उसकी माँ का संबंध भी जयशंकर के 'अहं' के कारण बिगड़ जाता है । कोई भी माँ अपने बच्चे को जी जान से चाहती है । उसका भला हो इसलिए अपना सर्वस्व त्याग देने को तैयार रहती है । जयशंकर की माँ भी उसे बहुत चाहती है । इसलिए उसकी सच्ची परिस्थिति जानने के बाद भी अपने बेटे को किसी की नजरों में गिरने नहीं देती । स्वयं घुटती रहती है लेकिन जयशंकर की स्थिति जाहिर होने नहीं देती। जयशंकर का शहर में जाना और मशीन की दुनिया में जाकर मशीन बन जाना अतिशयोक्तिपूर्ण लगता है । उसका अपने परिवारवालों के प्रति कृतघ्न होना और कालांतर में अपनी माँ के साथ किया जाने वाला पशुता भरा व्यवहार असाहजिक लगता है । इतना पढ़ा-लिखा होने के बावजूद उसमें समझदारी की बात नजर नहीं आती । संक्षेप में प्रस्तुत उपन्यास में पारिवारिक संबंधों में आने वाले परिवर्तन में साहजिकता को दिखाने के लिए लेखिका के व्दारा और अधिक विश्लेषण की माँग उपन्यास करता है ।

'यामिनी कथा' में यामिनी विश्वास से शारीरिक एवं मानसिक प्रेम की आकांक्षी रहती है लेकिन विश्वास उसे शारीरिक सुख ही दे पाता है । जब उसके मन में मानसिक सुख मिलने की आशा जगती है, तब नियती विश्वास को उससे छीन लेती है । तभी उसकी जिंदगी में निखिल आता है । पुतुल और यामिनी सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा पाने की आशा में निखिल के साथ रिश्ता जोड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं । यामिनी निखिल से सारे सुख तो पाती है लेकिन उसके साथ रहते समय यही सोचती है कि उसके बेटे पुतुल को क्या लगेगा इससे निखिल के प्रति उसका व्यवहार असहज हो उठता है । जब वह पुतुल के पास होती है तो सोचती है निखिल क्या सोचेगा और इस तरह से घर में, परिवार में प्रत्येक के प्रति उसके व्यवहार में असहजता प्रवेश करती है । न ही वह सहज रूप से माँ बन पाती है और न ही निखिल की पत्नी । परिणामतः पारिवारिक संबंधों में जटिलता आती है । हर कोई एक-दूसरे के प्रति असहजता से पेश आता है ।

४.२.५ सांस्कृतिक टकराव

सूर्यबाला ने देश-विदेश की यात्राएँ कीं हैं जिसकी वजह से दोनों जगहों का सांस्कृतिक वर्णन उनके उपन्यासों में हमें मिलता है । आज विदेशी संस्कृति भारतीय संस्कृति पर हावी होती जा रही है । भारतीय संस्कृति में विवाह के बाद व्यक्ति के सुख की अपेक्षा परिवार का सुख प्रधान बन जाता है लेकिन विदेश में विवाह के पहले और बाद में भी व्यक्ति विशेष का सुख महत्व रखता है । 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में रिंकी जब विदेश जाती है तो उसे अपनी माँ व्दारा परिवार के लिए किया गया त्याग छद्‌म लगता है । उसके अनुसार शिवा को अपने पति का त्याग कर रत्नेश से शादी करनी चाहिए थी क्योंकि उसे पता है कि उसकी माँ उसके पिता के साथ सुखी नहीं है । जबकि विदेश में ग्रेटा आस्टिन, मिसेज बर्नाड, मिसेज अंडरवुड आदि का जीवन उसे छद्‌म हीन लगता है । उसी के शब्दों में "नैतिक-अनैतिक,

उचित-अनुचित और थोथी सामाजिक प्रतिष्ठा की उधडी पैबंद लगी जिंदगियों से दूर, बेलाग, बोल्ड जिंदगियाँ...."[३६] ऐसी जिंदगी जीना वह पसंद करती है ऐसा सोचते समय वह यह नहीं सोचती कि उसकी माँ की वजह से ही उनका परिवार, परिवार बना रहा । अन्यथा वह बिखर जाता ।

रत्नेश माथुर के परिवार में सांस्कृतिक टकराव नजर आता है जहाँ वह खुद भारतीय संस्कारों से परिपूर्ण शिवा जैसी पत्नी चाहता है । उसकी पत्नी शैली विदेशी संस्कृति से प्रभावित होने की वजह से खुद की जिंदगी को अपने तरीके से जीना चाहती है। इसी को लेकर उनके बीच झगड़े होते है और इन झगड़ों का अंत तलाक में हो जाता है । उनके बच्चे भी विदेशी संस्कृति से प्रभावित होकर स्वतंत्र जीवन जीना पसंद करते हैं ।

आज भारातिय युवक विदेशी आत्मकेंद्रत संस्कृति को अपना रहे हैं । इस वजह से भारतीय संस्कृति में पारिवारिक ढाँचा चरमराता हुआ नजर आने लगा है ।

४.२.६ मानवीय मूल्य

मानवीय मूल्य वे होते हैं जो मानव को मानव बनाए रखने में सहायक होते हैं । बच्चा जब बड़ा होने लगता है तो परिवारवाले उसे संस्कारों की घुट्टी पिलाना शुरू करते हैं । यही संस्कार मानवीय मूल्यों के रूप में पहचाने जाते हैं ।

क) आस्था

मनुष्य का जीवन बड़ा सुंदर होता है, वह भगवान व्दारा मनुष्य को दिया हुआ वरदान है । इसे बड़ी संदरता से जीना या दुख में बिताना मनुष्य पर निर्भर रहता है । कई बार स्थितियाँ भी दुख या सुख का कारण बनतीं हैं । ' मेरे संधिपत्र' उपन्यास में आरंभ में रत्नेश माथुर अपनी पत्नी से निराश होता है तो शिवा उसे जीवन में आस्था रखने को कहती है तो अंत

में जहाँ शिवा अकेली जीवन जीने का भ्रम पाले हुए है, वहाँ रत्नेश माथुर उसे जीवन के प्रति आस्था रखने को कहते हैं ।

ख) कर्तव्यपरायणता

भारतीय परिवार में हर व्यक्ति के एक-दूसरे के प्रति कर्तव्य होते हैं और लोग अपनी जिम्मेदारी समझकर ये कर्तव्य पूरे करते हैं । 'अग्निपंखी' उपन्यास में जयशंकर के माता-पिता तथा परिवारवाले अपने कर्तव्यों से नहीं चुकते । उसके पिता पटवारी होने के बावजूद भी अपने संस्कारों को नहीं भूलते और अपने भाईयों के प्रति अपने कर्तव्य को निभाते हुए अपना काम करते हैं । खुद पटवारी होने का बड़प्पन उन्हें छू भी नहीं पाता । "सब है, पर बड़े-छोटे का लिहाज कभी नहीं छोड़ा । बाहर लाख हुंकारे, बड़े भाई के सामने कभी नजर नहीं उठाई और छोटे पर कभी गलत ऐतराज नहीं किया । बड़े के सामने छोटे का और छोटे के सामने बड़े का धरम निबाहा ।"[४०]

जब उसकी मौत होती है तो दोनों भाई जयशंकर की पढ़ाई ठीक से हो इसका खयाल रखते हैं और जयशंकर कमाने लायक होने तक उसकी माँ और उसके प्रति अपने कर्तव्य निभाते हैं। सूर्यबाला लिखती है -"जब तक पढ़ता-लिखता रहा, कभी कुछ नहीं कहा उन लोगों ने । रुपए-पैसे फीस-किताबों के लिए भी दुनिया के लोक-लाज से ही सही, जब भी माँगा, देते गए । किसी और मेहनत-मशक्कत के लिए भी नहीं कहा ।"[४१]

जयशंकर की माँ भी अपने परिवार एवं जयशंकर के प्रति सारे कर्तव्य उम्र भर निभाती रहती है।

ग) दया

'दया' मानवीय संवेदनाओं को बचाए रखने में मदद करती है । 'सुबह के इंतजार तक' उपन्यास में छोटे बुलू और मीनू की स्थिति को देखकर गुसाई दादा को उन पर दया आती है और वे उन्हें हो सकती थी उतनी मदद करते हैं । उनके व्दारा वहाँ से हटाने पर काकी मीनू और बुलू को बहुत मदद करती है । उसे उन दोनों बच्चों की दया आती है और वह उन दोनों के लिए जीवन जीने का सहारा बन जाती है । मीनू को काम देनेवाली भट्टानी भाभी को मीनू पर दया आती है और उसे वह अपनी पति की मदद से अच्छी नौकरी दिलवाती है । समाज में स्थित ऐसे दयालु लोगों के सहारे ही बुलू और मीनू का जीवन गुजरता है ।

घ) प्यार

प्यार मनुष्य को मनुष्य से जोड़े रखता है । उपन्यास में मीनू अपने परिवारवालों से बहुत प्यार करती है इसलिए परिस्थितियों को पहचानकर अपने माता-पिता को खुद से तकलिफ न हो इसका खयाल रखती है । उसका बिट्टू और बुलू के प्रति प्यार ही उसे मामा के घर अच्छा-अच्छा खाना खाने से रोकता है । बलात्कारित होने पर बुलू के प्रति प्यार ही उसे आत्महत्या करने से रोकता है ।

उन्हें अपने घर में आश्रय देनेवाली काकी मीनू के बारे में सबकुछ जानने के बाद भी उन दोनों से अपने बच्चों की तरह प्यार करती है । मीनू की गर्भावस्था की स्थिति में उन दोनों को सहारा देती है । मीनू से प्यार की वजह से ही उसके पड़ोसवाले एवं बुलू के दोस्त उसका खयाल रखते हैं और अपनी ओर से उन्हें जितनी हो सके उतनी मदद करते हैं ।

ङ) विश्वास

जीवन में एक-दूसरे के प्रति और अपने ऊपर रखा जानेवाला विश्वास बहुत महत्वपूर्ण होता है। रिश्तों की बागडोर सँभाले रखने का काम वश्वास ही करता है । 'सुबह के इंतजार तक' उपन्यास में नायिका अपने छोटे भाई बुलू पर पूरा विश्वास रखकर उसके साथ भाग जाती है। वह भी अपनी बहन का विश्वास नहीं तोड़ता। विश्वास की बुनियाद सच पर आधारित होती है । जब बुलू गुसाई दादा से झूठ बोलता है, तब गुसाई दादा सच जानने के बाद गुस्से से उन्हें धर्मशाला से निकाल देते हैं इसलिए इसके बाद मीनू अपनी सच्चाई किसी से छिपाना नहीं चाहती वह उसे लोगों का विश्वासघात समझती है । वह कोठरीवाली काकी से अपनी सारी सच्चाई बता देती है और उसका विश्वास जीतती है । इसी वजह से उसका जीवन सहज बन जाता है ।

च) सत्य

सत्य को भारतीय संस्कृति में ईश्वर का रूप माना गया है । और सत्य पालन परम तप । भीषण से भीषण कष्ट सहकर भी सत्य की रक्षा करना परम कर्तव्य माना जाता था । 'अग्निपंखी' उपन्यास में जयशंकर अपने घरवालों को अपनी परिस्थिति के बारे में सच्चाई नहीं बताता इसके परिणामस्वरूप उसे भयंकर कष्टों का सामना करना पड़ता है । 'सुबह के इंतजार तक' उपन्यास में ठीक इसका उलटा है । उपन्यास नायिका मीनू अपने साथ घटित हर सच को लोगों के सामने रखकर समाज व्दारा उसे उसी रूप में स्वीकार करने की अपेक्षा रखती है, और अपने संपूर्ण सच को बताते हुए स्वाभीमानी जीवन व्यतीत करती है । हालाँकि उसे सच बताने के कारण कई कष्टों का सामना करना पड़ता है लेकिन वह हार नहीं मानती ।

छ) त्याग

भारतीय नारी त्याग की मूर्ति रही है । 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास की नायिका शिवा भी त्यागी है । उसने अपने संपूर्ण जीवन में अपने सभी सपनों का त्याग किया है । शादी के बाद अपनी बुद्धिमत्ता, चपलता, किशोरावस्था, सादगी, सपने सबकुछ त्यागती चली जाती है । सास और पति की कठपुतली बनकर अपनी सौतेली बेटियों की असली माँ बन जाती है । अपनी सगी बेटी को केवल कुछ घंटे छोड़कर जीवन भर प्यार भी नहीं करती ताकि दूसरी बेटियों पर अन्याय न हो और पति तथा सास की नजरों में खरी उतरें । पति की सभी हिदायतों एवं आदेशों का पालन करती हुई जीती है और पति से कई बार अपमानित किए जाने पर भी अपना ही दोष मानती है । पति की मौत के बाद जब उसकी बेटियाँ रत्नेश माथुर से उसका रिश्ता जोड़ना चाहती हैं तब भी वह मन में होते हुए भी अपनी सास और पति की फोटो देखकर जीवन भर अकेली रहने का निर्णय लेती है। इस तरह से शिवा जीवन भर अपने सुखों का त्याग करती हुई अपनी जिंदगी से केवल समझौता ही करती जाती है ।

‘सुबह के इंतजार तक’ उपन्यास में माधुरी का पति एक बच्चे को पानी में डुबते हुए बचाने के लिए कूद जाता है । वह बच्चा उसे इस तरह पकड़ता है कि वह अपने साथ माधुरी के पति शंकर को भी लेकर डूब जाता है । इस तरह उस बच्चे को बचाने के लिए शंकर अपनी कुर्बानी देता है ।

ज) ममता

मातृत्व मनुष्य को ईश्वर व्दारा दिया गया वरदान है । मनुष्य की वासनाओं का पशु रूप जब नारी पर बलात्कार करवाता है तो वही मातृत्व उसके लिए शाप बन जाता है । इसी शाप की वजह से कई सारी महिलाएँ आत्महत्या करने के लिए मजबूर हो जाती हैं । जो इस स्थिति का डटकर सामना करने के लिए तैयार हो जाती हैं उन्हें कई तरह की मानसिक एवं शारीरिक यंत्रणाओं से गुजरना पड़ता है । ‘सुबह के इंतजार तक’ उपन्यास में मीनू बलात्कार

की शिकार होती है और गर्भवती बन जाती है । जब वह इसी कलंक के साथ जीवन चुनती है तब कई सारी यातनाओं को सहती है । इस कलंकित मातृत्व की स्थिति की वजह से उसे अपना घर छोड़ना पड़ता है, गुसाई दादा की धर्मशाला से निकाल दिए जाते हैं । गर्भावस्था की स्थिति से छुटकारा पाने के प्रयास में दो जगहों पर अपमानित होना पड़ता है । इसके अलावा समाज व्दारा दी जानेवाली प्रताड़नाएँ सहती हुई मीनू अपना कलंकित मातृत्व वहन करती है । जब वह मृत बच्चा जनती है तो एक ओर कलंकित मातृत्व से छुटकारा तो दूसरी ओर ममता भरा हृदय उमड़कर आता है । वह कहती तो है कि अब मैं मुक्त हूँ लेकिन माँ की ममता माँ ही समझ सकती है । मीनू के शब्दों में "मैं मुक्त थीं अब ...लेकिन फिर मेरे गले में दर्द के बगुले क्यों अटकने लगे हैं ? मुक्ति शब्द इतना क्रूर क्यों लग रहा है ?...काकी को मृत्यु-सुख की परिभाषा सुनानेवाली मैं अंदर अपनी ही तड़प क किर्चों से कितनी लहूलुहान हूँ ! उसके लिए जो मेरे शरीर का, मेरे अहसासों का, चिथड़े-चिथड़े हुए मेरे मातृत्व का - और सबसे बढ़कर मेरे दर्द का बराबर का कारण रहा ।..."[४२] कोठरीवाली काकी और माधुरी भाभी भी ममता के कारण ही मीनू की बच्चे की मौत से दुखी थे ।

भारतीय संस्कृति में माँ का स्थान सर्वोपरि होता है । धरती पर माँ ईश्वर का रूप समझी जाती है । दया, माया ममता से परिपूर्ण माँ के अस्तित्व में ईश्वर का अस्तित्व समझा जाता है । माँ का हृदय विशाल होता है। वह अपने बच्चे को अपने प्रणों से भी बढ़कर प्यार करती है । अपने बच्चे को संस्कारित कर मनुष्य बनाती है । उसके विकास के लिए दिन-रात चिंतित रहती है ।

सूर्यबाला के 'अग्निपंखी' उपन्यास में भी चित्रित जयशंकर की माँ ऐसी ही है । वह अपने बेटे का बड़ा खयाल रखती है । अपने पति की मौत के बाद जयशंकर के प्रति सारे कर्तव्य निभाती है । उसे तहसीलदार बनाने के, पति के स्वप्न को अपनी जिम्मेदारी मानकर उसकी

पढ़ाई-लिखाई में कोई कमी न रहे इसलिए घरवालों का रोष सहकर उसके पढ़ने के लिए आवश्यक चीजें जुटाने में कोई कसर नहीं छोड़ती । इसके बावजूद भी जयशंकर जब तहसीलदार नहीं बन पाता तब भी वह उसे कुछ नहीं कहती । वह अपनी माँ से जब रुखाई से पेश आता है तब वह उसकी बातों को अनदेखा करती है । वह हमेशा उन स्थितियों को दोष देती है जिनकी वजह से वह वैसा बना है । उपन्यास में जयशंकर की माँ के दूसरे पक्ष को देखा जाए तो जयशंकर की स्थिति के लिए कुछ हद तक उसकी माँ भी जिम्मेदार लगती है । जयशंकर कृषक परिवार से था । उसकी माँ को चाहिए था कि वह उसे खेत में भेजकर खेत में किए जानेवाले काम भी करने को कहें । अन्य जनों के साथ वह मिलजुलकर काम करें और साथ-साथ पढ़ाई भी करता रहे । इससे वह छुट्टियों के दिनों में काम भी कर पाता और बाकी समय में पढ़ाई । इससे परिवारजनों के बीच रहना वह सीखता और खेत में थोड़ा काम करने से घरवालों की आँखों में भी नहीं चुभता ।

४.२.७ संस्कार

संस्कार मनुष्य के जीवन में बहुत महत्व रखते हैं । वे मनुष्य विशेष की जीवन पद्धति के निर्धारक बनते हैं । 'सुबह के इंतजार तक' उपन्यास में मीनू की माँ पर हुए संस्कार उसे अपनी जीवन-पद्धति में बदलाव लाने नहीं देते । उनकी गली में खेलनेवाले बच्चों पर पीढ़ियों के संस्कार ही थे जो मीनू के माता-पिता का अभिवादन करने के लिए उन्हें बाध्य करते हैं ।

कई लोग परिस्थितियों के अनुसार अपने संस्कारों में बदलाव लाते हैं क्योंकि वह समय की माँग रहती है । जैसे मीनू को अपनी माँ के संस्कार अपने विकास में बाधा नजर आते हैं जिन्हें आवश्यकता के अनुसार निश्चित रूप से बदलना आवश्यक था इसलिए वह खुद उन संस्कारों के विरोध में बिगुल बजाती है ।

आज परिवार व्यवस्था में भारी बदलाव आ रहा है । लोग संगठित परिवार से एकल और एकल से अकेले होते जा रहे हैं । लोगों के चरित्र पर इसका बहुत प्रभाव पड़ रहा है । संगठित परिवार में सारे परिवारवाले किसी बच्चे के चरित्र को बचपन से लेकर बड़ा होने तक गढ़ने में लग जाते थे । गाँवों में माता-पिता के संस्कारों से बच्चा अपना चरित्र गढ़ता था । आज जहाँ माता-पिता दोनों नौकरियाँ कर रहे हैं वहाँ बच्चों पर ध्यान देने के लिए कोई नहीं रहता । ऐसे में उनपर अच्छे संस्कार कैसे हो सकते है ? आधुनिकता के नाम पर दूसरों का अंधानुकरण करनेवाले और पैसों के बल पर सबकुछ करवानेवाले माता-पिता अपने बच्चों पर क्या संस्कार करेंगे ? 'दीक्षांत' उपन्यास में शर्मा सर के पिताजी बचपन में उन्हें संस्कारों के घुँट पिलाते रहते है । वे "प्राप्त पुस्तकों से अर्जित ज्ञान और संस्कार के बल पर चरित्र को जीवन की सबसे बड़ी पूँजी माननेवाले, निस्वार्थी, नेकी और सच्चाई को चरित्र की उज्ज्वलता की पहली कसौटी फिर विनय और मितव्ययता!"[४३] मानते थे और यही संस्कार शर्मा सर पर किये थे । शहर जाते समय शर्मा सर को उनके पिताजी ने कहा था - "परिस्थिति और वातावरण से समझौता बुरा नहीं, बुरी है गिरगिट बनने की कोशिश और सबसे बड़ी बात याद रखना, जो सच है, उचित है, वह सच और उचित ही रहेगा । किसी भी परिस्थिति में अपने नफे-नुकसान के लिए इन शब्दों से खिलवाड़ या अनाचार मत करना।"[४४] इन्हीं संस्कारों से परिपक्व हुए शर्मा सर शहर की विडंबनाओं में फँस जाते हैं जिससे बाहर निकलने का कोई भी रास्ता उन्हें नजर नहीं आता ।

उपन्यास में स्थित बरुआ का बेटा शर्मा सर का विद्यार्थी है । बरुआ की तरह ही अन्य कई सारे विद्यार्थी अमीर घरानों से हैं जो पैसों के बल पर अपने काम करवाते हैं । उनके माता-पिता भी उनके चरित्रहीन होने के लिए उतने ही जिम्मेदार हैं जितने प्राध्यापक राजदान सिंह। दोनों की ओर से विद्यार्थियों की उद्दंडता को नजरंदाज किया जाता है जिसकी वजह से वे समय-समय पर घर में या परिवार में बच्चों पर उचित संस्कार न होने की वजह से बच्चे

गैर-वर्तन करते हैं । कई बार बड़ों की देखा-देखी में वे उद्‌दंड बन जाते हैं । उन्हें किसी का भय नहीं रहता । वे खुद को ही बड़ा समझते हैं और बचपन में ही गुंडागिरी करने लगते हैं । 'दीक्षांत' उपन्यास में स्थित शर्मा सर के विद्यार्थी इसी तरह के हैं । वे अपने शिक्षकों का आदर करना तो दूर उन्हें 'रंगा स्यार' या 'ब्लू जैकाल' जैसे नामों से संबोधित करते हैं । पढ़ाते समय पीछे से चॉक मारते हैं, पढ़ाते वक्त मजाक उड़ते हैं, क्लास छोड़कर जाने की हिम्मत दिखाते हैं । इतना ही नहीं बरुआ जैसा विद्यार्थी बीच सड़क पर धमकियाँ भी देता है । उन्हें पता है कि स्कूल का मैनेजमेंट या प्रशासन उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता क्योंकि वे अमीर बाप के बेटे हैं । आज के जमाने में पैसों के बल पर डिग्रियाँ खरीदी-बेची जा रही हैं । विद्यार्थी को ज्ञान हो या न हो पैसे लेकर उन्हें पास किया जाता है । इसका प्रभाव विद्यार्थी के चरित्र पर होता है । शर्मा सर के विद्यार्थी जीवन के बारे में लेखिका लिखती है -"छुटपन में, कक्षा एक-दो में भी जहाँ तक याद पड़ता है, उन्होंने कभी किसी की पट्टी नहीं छीनी, किसी की खडिया-दवात नहीं उल्टी, न किसी साथी से मार-जुझौवल, न धींगा-मुश्ती ..."[४५] ऐसे व्यक्ति की क्लास में उद्‌दंड बच्चों को देखकर उन्हें आश्चर्य होता है।

ईमानदार व्यक्ति के लिए शिक्षकी पेशा दिन-ब-दिन जटिल बनता जा रहा है । अपने कर्तव्य को निभाते हुए शिक्षकों को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है । लेखिका ने शर्मा सर के माध्यम से ईमानदार शिक्षक की विडंबना को वाच्यता प्रदान की है । लेखिका व्यंग्य भरे शब्दों में लिखती है -"कर्तव्य, नैतिकता, निष्ठा और अनुशासन आदि अब सिर्फ साहित्य और शब्द कोशों के महत्व के हैं ।"[४६] यही मूल्य शर्मा सर के जीवन की त्रासदी के कारण बनते हैं । आज स्थितियों की वजह से इन मूल्यों का क्षरण हो रहा है । इन्हीं मूल्यों को बचाने का लेखिका का प्रयास रहा है । वह लिखती है -"अवसाद, करुणा और व्दंव्द मेरे लेखन के मूल स्वर अवश्य रहे हैं । किंतु इन्हीं के बीच से मैं प्रायः मानवीय संबंधों और मूल्यों की महती प्रतिष्ठा को यथाशक्ति उजागर करने की चेष्टा करती रही हूँ । लेखन के

शुरुआती दौर से ही और अब तक मेरी कोशिश यही रही है कि इतनी विसंगतियाँ, विद्रूप और मोहभंगों के बीच भी मुझे जीवन-आस्था, सौहार्द्र और स्थायी मानव-मूल्यों की बात ही कहनी है । क्योंकि स्थितियों और परिस्थितियों के हिसाब से हम भले ही थोड़े झूठ, थोड़ी मक्कारी और फरेब की वकालत कर लें- किंतु जब जीवन की, मानवता की और शाश्वत मूल्यों की बात उठती है तो हम सच्चाई, ईमानदारी, निष्ठा, त्याग और आस्था के ही सामने माथा नवाते हैं ।"[४७] लेखिका की इसी दृष्टि की वजह से हम 'दीक्षांत' के अंत में जीवन के प्रति आस्था का उदय पाते हैं ।

आज भौतिक चकाचौंध की दौड़ में मनुष्य सुखी नहीं है । वह जितना पाता है उतना और पाना चाहता है । इससे उसका सुख और समाधान लुप्त हो जाता है । पहले जमाने में मानसिक समाधान को ही सुख समझा जाता था । प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के अलावा स्नेह, प्यार, आदर-सम्मान, दया, ममता, करुणा, क्षमा जैसे भाव एवं मूल्यों को जीवन में अत्यंत महत्व था और ये सब मिलने से लोग समाधान पाते थे । दूसरों का सुख देखकर खुद धन्यता महसूस करते थे । आज सबकुछ बदल गया है । आज सब कुछ पाने की दौड़ में हम अपने हाथों से सुख चैन भी गँवा रहे हैं ।

४.२.८ अंधविश्वास

भारतीय संस्कृति में कई सारे अंधविश्वास भी विद्यमान हैं । उनमें से एक है नजर लगना । सूर्यबाला के 'अग्निपंखी' उपन्यास में जयशंकर की छोटी चाची अपनी बेटी चंदा को बहुत सजा-सजाकर रखती है और उसके रोने पर या खाना न खाने पर उसे लगता है कि चंदा को किसी की नजर लग गयी है । इस पर जयशंकर की ताई कहती है -"अरे बच्चन को जितना सजाओ, बजाओ उतना ही नजर-गुजर का डर और अपने बालक सबसे ज्यादा

अपनी ही नजर में आएँ... तब सारे घर-ओसारे राई, नमक, प्याज, लहसुन गंधाती फिरोगी।"[४८]

मानव की सुख शांति में रोग बड़ी और प्राचीन बाधा है । आदिकाल से इनके आचार के लिए पीड़ित मानवता विविध विधान करती आयी है । रोगों के निदान के वैज्ञानिक विश्लेषण और औषधोपचार के साथ तंत्र-मंत्र का प्रयोग भी अति प्राचीन है । 'अग्निपंखी' उपन्यास में जयशंकर की माँ मानसिक धक्के से बिमार हो जाती है तो गाँववाले कुछ 'ऊपरी' जंजाल है कहकर भैरों को बुलाने का सुझाव देते हैं । "भैरों लोबान, धूप, दारू, सेंदुर सहित आया । धूनी सुलगाई । लाल-लाल आँखों और सेंदुर लपदप मुँह से लपटों के सामने खड़ा हो मंतर मार, आई-गई बलाय को ललकारने लगा । फिर भी बला टस से मस न हुई तो बेदी के सामने बाल पकड़कर खींचा, हदसाया । पर बला थी कि चुप तो चुप । भैरों की सारी ताड़नाओं का असर हुआ यही कि वे वैसी ही उस दिन की तरह बेहोश हो उलट गई ।"[४९]

४.२.९ प्रकृति प्रेम

प्राचीन काल से मानव और प्रकृति का अटूट रिश्ता रहा है । मनुष्य पर प्रकृति का गहरा प्रभाव पड़ता है । प्राकृतिक सौंदर्य के आकर्षण के फलस्वरूप मनुष्य उससे जुड़ा रहता है । विशिष्ट प्राकृतिक वातावरण में जीनेवाले लोग अपनी प्रकृति से प्यार करने लगते हैं । ' अग्निपंखी' उपन्यास में शुरुआत में गाँव की शाम का वर्णन मिलता है जो कुछ इस प्रकार है - "आम, महुए, बेर, कीकर, खेत-सिवान । बरगद और नीम की छाँह में सुस्ताते बैल और झुंडों में मिमियाती बकरियाँ । यहाँ-वहाँ नंग-धडंग कुदते-फाँदते बच्चे । निचली ऊँचाइयों पर, पेड़ों के आस-पास डैने फैलाकर, मँडराकर उतरते पंछी । दरबों में कुड़कुड़ाती मुरगियाँ, कबूतर । खेत-के-खेत ।"[५०] इससे अलग वातावरण में जब जयशंकर की माँ जाकर रहती है, तो उसे बार-बार अपने गाँव के वातावरण की याद आती है ।

४.२.१० मातृभूमी से प्रेम

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरियसी' ...जिसमें अपनी जन्मभूमी को स्वर्ग से भी महान माना है । ऐसा माना जाता है कि भारत की अधिकतर जनता गाँवों में निवास करती है । शहरों में या विदेश में बसने वाले लोग नौकरी की वजह से वहाँ रहने के लिए बाध्य होते हैं लेकिन उनके मन में अपनी मातृभूमी के प्रति बहुत प्यार होता है । सूर्यबाला के 'अग्निपंखी' उपन्यास में जयशंकर की माँ को अपना गाँव बार-बार याद आता है । मरते दम तक अपने गाँव का मोह उससे छूट नहीं पाता ।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि सूर्यबाला के उपन्यास साहित्य में हमें समाज एवं संस्कति में आनेवाले परिवर्तन नजर आते हैं । लगभग पचास सालों से लेकर आज तक हिंदू संस्कृति एवं समाज में जो बदलाव आ रहे हैं उनका प्रतिबिंब उनके उपन्यासों में दिखायी देता है । भारतीयों के विचार, आचार, स्थितियाँ, विदेशी संस्कृति एवं समाज का प्रभाव, बदलती मानवीय संवेदनाएँ आदि का विस्तृत वर्णन सूर्यबाला ने अपने उपन्यासों में किया है ।

सूर्यबाला के तीन उपन्यास नारी को केंद्र में रखकर लिखे गए हैं । अन्य दो उपन्यासों में आए हुए नारी पात्रों की विशेषताएँ भी इन पात्रों से भिन्न नहीं हैं । सूर्यबाला ने भारतीय नारी की गरिमामय छवि को अपने उपन्यासों में उकेरा है, इसलिए इनके नारी पात्र हर समय स्थितियों से समझौते करते हुए नजर आते हैं । ''सुबह के इंतजार तक' उपन्यास की मानू कुछ हद तक बोल्ड पात्र कही जा सकती है लेकिन अपने जीवन को दाँव पर लगाकर वह भी त्यागी बन जाती है । वह अपने भाई के साथ-साथ अपना भी खयाल रख सकती थी लेकिन ऐसा वह नहीं करती । घर से भाग जाने का बोल्ड निर्णय लेने के बावजूद अपने जीवन को लेकर केवल समझौते करती जाती है । 'यामिनी कथा' में यामिनी दूसरी शादी

करने का निर्णय तो लेती है लेकिन मानसिक उलझनों में उलझकर सुख से हाथ धो देती है। 'अग्निपंखी' का नायक घरवालों के खिलाफ आवाज तो उठाता है लेकिन शहर में जाकर परिस्थितियों में उलझता है और दुख ही पाता है । 'दीक्षांत' उनका बेजोड़ उपन्यास है लेकिन इसमें स्थित समस्या का समाधान ढुँढने के लिए प्रेरित नहीं किया है । 'मेरे संधिपत्र' की शिवा आज से पचास साल पहले की नारी है जो आदर्शवाद की पुतली है । यथार्थ जीवन में ऐसे पात्र मिलना मुश्किल है । आज संगणक का युग है, आज हर क्षेत्र में लोग दौड रहे हैं, अपनी क्षमता आजमा रहे हैं, संघर्ष कर रहे हैं ऐसे में स्थितियों से समझौते करने के पक्ष में नहीं रहते । ऐसी दुनिया में सूर्यबाला के उपन्यास आदर्शवादी लगते हैं जबकि आज यथार्थ की जरूरत ज्यादा है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१. डॉ. सूर्यबाला	मेरे संधिपत्र	पृ.सं. - ४८
२. डॉ. सूर्यबाला	मेरे संधिपत्र	पृ.सं. - ७५
३. डॉ. सूर्यबाला	सुबह के इंतजार तक	पृ.सं. - ८८
४. डॉ. सूर्यबाला	सुबह के इंतजार तक	पृ.सं. - ८६
५. डॉ. सूर्यबाला	सुबह के इंतजार तक	पृ.सं. - ११०
६ डॉ. सूर्यबाला	सुबह के इंतजार तक	पृ.सं. - ११०
७. डॉ. सूर्यबाला	दीक्षांत	पृ.सं. - ३६
८. डॉ. सूर्यबाला	दीक्षांत	पृ.सं. - ३८
९. डॉ. सूर्यबाला	अग्निपंखी	पृ.सं. - २४
१०. डॉ. सूर्यबाला	दीक्षांत	पृ.सं. - ३२
११. डॉ. सूर्यबाला	दीक्षांत	पृ.सं. - ८५
१२. डॉ. सूर्यबाला	दीक्षांत	पृ.सं. - ९९
१३. डॉ. सूर्यबाला	सुबह के इंतजार तक	पृ.सं. - ९१
१४. डॉ. सूर्यबाला	मेरे संधिपत्र	पृ.सं. - ९८
१५ डॉ. रोहिताश्व (आमंत्रक)	साहित्य सेतु	पृ.सं. -५६
१६. डॉ. सूर्यबाला	सुबह के इंतजार तक	पृ.सं. - ८५
१७ डॉ. सूर्यबाला	सुबह के इंतजार तक	पृ.सं. - ९०
१८. डॉ. सूर्यबाला	अग्निपंखी	पृ.सं. - २३

१९. डॉ. सूर्यबाला	दीक्षांत	पृ.सं. - ६५
२० डॉ. सूर्यबाला	दीक्षांत	पृ.सं. - १२३
२१. डॉ. सूर्यबाला	दीक्षांत	पृ.सं. - ३०
२२. डॉ. सूर्यबाला	दीक्षांत	पृ.सं. - ८६
२३. डॉ. सूर्यबाला	दीक्षांत	पृ.सं. - १७
२४. डॉ. सूर्यबाला	अग्निपंखी	पृ.सं. - १७
२५. डॉ. सूर्यबाला	सुबह के इंतजार तक	पृ.सं. - ८९
२६. डॉ. सूर्यबाला	सुबह के इंतजार तक	पृ.सं. - ११८
२७. डॉ. सूर्यबाला	सुबह के इंतजार तक	पृ.सं. - ११९
२८. डॉ. सूर्यबाला	सुबह के इंतजार तक	पृ.सं. - ९१
२९. डॉ. सूर्यबाला	अग्निपंखी	पृ.सं. - ३६
३०. डॉ. सूर्यबाला	अग्निपंखी	पृ.सं. - ७२
३१. डॉ. सूर्यबाला	मेरे संधिपत्र	पृ.सं. - ७५
३२. डॉ. सूर्यबाला	सुबह के इंतजार तक	पृ.सं. - ९४
३३. डॉ. सूर्यबाला	अग्निपंखी	पृ.सं. - ४०
३४. डॉ. सूर्यबाला	अग्निपंखी	पृ.सं. - ७७
३५. डॉ. सूर्यबाला	अग्निपंखी	पृ.सं. - २५
३६. डॉ. सूर्यबाला	दीक्षांत	पृ.सं. - २०
३७. डॉ. सूर्यबाला	दीक्षांत	पृ.सं. - २२

३८. डॉ. सूर्यबाला मेरे संधिपत्र पृ.सं. - १५

३६. डॉ. सूर्यबाला मेरे संधिपत्र पृ.सं. - ५५

४०. डॉ. सूर्यबाला अग्निपंखी पृ.सं. - १५

४१. डॉ. सूर्यबाला अग्निपंखी पृ.सं. - ४२

४२. डॉ. सूर्यबाला सुबह के इंतजार तक पृ.सं.-१३५

४३. डॉ. सूर्यबाला दीक्षांत पृ.सं. - १४

४४. डॉ. सूर्यबाला दीक्षांत पृ.सं. - १५

४५. डॉ. सूर्यबाला दीक्षांत पृ.सं.-०६

४६. डॉ. सूर्यबाला दीक्षांत पृ.सं. - २४

४७. डॉ. सूर्यबाला दीक्षांत की भूमिका पृ.सं. - ०७

४८. डॉ. सूर्यबाला अग्निपंखी पृ.सं. - २६

४६. डॉ. सूर्यबाला अग्निपंखी पृ.सं. - ६३

५०. डॉ. सूर्यबाला अग्निपंखी पृ.सं. - १३

३८. डॉ. सूर्यबाला	मेरे संधिपत्र	पृ.सं. - १५
३९. डॉ. सूर्यबाला	मेरे संधिपत्र	पृ.सं. - ५५
४०. डॉ. सूर्यबाला	अग्निपंखी	पृ.सं. - १५
४१. डॉ. सूर्यबाला	अग्निपंखी	पृ.सं. - ४२
४२. डॉ. सूर्यबाला	सुबह के इंतजार तक	पृ.सं.-१३५
४३. डॉ. सूर्यबाला	दीक्षांत	पृ.सं. - १४
४४. डॉ. सूर्यबाला	दीक्षांत	पृ.सं. - १५
४५. डॉ. सूर्यबाला	दीक्षांत	पृ.सं.-०६
४६. डॉ. सूर्यबाला	दीक्षांत	पृ.सं. - २४
४७. डॉ. सूर्यबाला	दीक्षांत की भूमिका	पृ.सं. - ०७
४८. डॉ. सूर्यबाला	अग्निपंखी	पृ.सं. - २६
४९. डॉ. सूर्यबाला	अग्निपंखी	पृ.सं. - ६३
५०. डॉ. सूर्यबाला	अग्निपंखी	पृ.सं. - १३

अध्याय ५. सूर्यबाला का कथा साहित्य : भाषा एवं शैली

साहित्य में भाषा संप्रेषण का माध्यम होती है । लेखक को अपने लक्ष्य तक पहुँचने में भाषा सहायक होती है। "भाषा ऐसे शब्द समूहों का नाम है जो एक विशेष क्रम से व्यवस्थित होकर हमारे मन की बात दूसरे के मन तक पहुँचाने और उसके व्दारा उसे प्रभावित करने में समर्थ होती है । अतएवं भाषा का मूलाधार शब्द है, जिन्हें उपयुक्त रीति से प्रयुक्त करने के कौशल को ही शैली का मूल तत्व समझना चाहिए । अर्थात् किसी लेखक या कवि की शब्द-योजना, वाक्यांशों का प्रयोग, वाक्यों की बनावट और उसकी ध्वनि आदि का नाम ही शैली है।"[१]

५.१ सूर्यबाला के कथा साहित्य की भाषा

सूर्यबाला समकालीन लेखिका है । समकालीन दौर में उपयोग में लायी जाने वाली अनेक

बोलियों से परिपूर्ण, संस्कृत निष्ठ हिंदी, अंग्रेजी मिश्रित हिंदी तथा उर्दू मिश्रित हिंदी का उपयोग उन्होंने अपनी कहानियों की कथावस्तू के संप्रेषण के लिए किया है । वातावरण के अनुकूल, पात्रों के अनुरूप, संवेदनाओं से परिपूर्ण, भावनाओं की गहराई के साथ भाषा का उपयोग सूर्यबाला के कथा साहित्य में हुआ है । आज हम देख सकते हैं कि अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव स्वरूप एवं विज्ञान तथा विज्ञान से संबंधित सभी क्षेत्रों में विकास होने की वजह से अनेक नए यंत्र अस्तित्व में आए हैं जिन्हें अंग्रजी नामों से ही अधिकतर लोग जानते हैं और उन्हीं शब्दों का अपनी बोलचाल की भाषा में उपयोग करते हैं । उन्हीं शब्दों का उपयोग कर सूर्यबाला पाठकों के करीब पहुँचना चाहती है इसी वजह से उनकी कहानियों में अनेक अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग मिलता है । उसी तरह आज हिंदी भाषा को पीछे छोड़ अंग्रेजी भाषा आगे निकली जा रही है और भारतीय लोग अंग्रेजी बोलने में धन्यता महसूस करने लगे हैं, इसलिए सूर्यबाला के शिक्षित पात्रों के माध्यम से अंग्रेजी वाक्यों का खुलकर उपयोग हुआ है।

उर्दू भाषा हिंदी की मुँहबोली बहन होने के कारण उर्दू भाषा का प्रयोग सूर्यबाला के कथा साहित्य में अनिवार्य रूप से हुआ है । कई सारे उर्दू शब्द हम उनकी कहानियों में देख सकते हैं । संस्कृत भाषा तो सभी भाषाओं की जननी मानी गयी है । हिंदी का जन्म भी संस्कृत से माना जाता है इसलिए और संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान होने की वजह से सूर्यबाला की कहानियों में आवश्यकता के अनुसार संस्कृत के शब्दों एवं शुभाषितों का उपयोग जगह जगह पर मिलता है । सूर्यबाला का 'दीक्षांत' उपन्यास इसका बेजोड़ उदाहरण कहा जा सकता है । हिंदी भाषा की कई सारी बोलियाँ हैं । इन बोलियों का उपयोग भी आवश्यकतानुसार हुआ है जिसकी वजह से वातावरण निर्मिती और कहानी में कथ्य को यथार्थ के निकट लाने में लेखिका को सफलता मिली है। सूर्यबाला की कहानियों में शुद्ध मानक हिंदी भाषा का उपयोग भी मिलता है । 'मेरे संधिपत्र', 'सुबह के इंतजार तक', 'अग्निपंखी', जैसे उपन्यासों में तथा 'मानसी', 'कात्यायनी संवााद', 'पूर्णाहुती', 'सलामत जागीरें', 'मातम', 'सुम्मी की बात' जैसी अनेक कहानियों में शुद्ध हिंदी भाषा का उपयोग किया है ।

सूर्यबाला की भाषा अपनी कहानियों के कथ्य को संप्रेषित करने में समर्थ है । इसे उदाहरण सहित यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ।

५.१.१ संस्कृत शब्द

संस्कृत कई भाषाओं की जननी मानी जाती है । हिंदी का विकास भी संस्कृत भाषा से ही माना जाता है इसलिए सूर्यबाला के कथा साहित्य में अनेक संस्कृत शब्द मिलते हैं, जैसे अनिर्वचनीय, अनुभूति, अभिभूत, निर्लिप्त, प्रतिकार, दंश, आर्द्र, आवेश, उग्र, वर्जित, तंतु, मथना, स्निग्ध, चेतना, आश्वस्त, संकुचित, मृदु, कृपा, वहम, अनुमान, व्यर्थ, तर्क, व्याप्त, निपुण, सम्मोहन, आकृति, मस्तिष्क, निरीह, स्वीकृति, अनिवार्य, आस्था, अवसाद, दृष्टि, आल्हाद, उभयनिष्ठ, कृतज्ञ, मंत्रबिद्ध, आसक्त, आबद्ध, अपलक, आभिजात्य, निषिद्ध, रोष,

छद्म, शिलालेख, निर्बाध, विस्तृत, दायित्व, तटस्थता, संकोच, अतीत, याज्ञवल्क्य, इन्द्रदान, मरीचिका, मुखमुद्रा, वितृष्णा, आगंतुक, नीरस, याचना, दिनचर्या, करुणा, बीभत्स, मुखमुद्रा, हवन, शेष, संकोच, अभिशाप, आहुती, समिधा, समर्पण, प्रणय, हतबुद्धि, तृप्ति, वैयक्तिक, प्रकोष्ठ, निष्ठा, परितृप्ति, अनुराग, सम्मोहित, निर्निमेष, मोहाविष्ट, विस्मृत, प्रणयोन्माद, सन्नद्ध, परिपक्व, निराश्रित, सेवा-शुश्रूषा, मूकदर्शक, शोकाकुल, पितृत्व, संभ्रांत, आत्मदंभ, निस्पृह, गृहस्थ, अशिष्ट, कपोल, पूर्वग्रह, तिरस्कृत, आपत्ति, महत्वाकांक्षा, असंपृक्त, व्दिधा, समापन, निस्तार, अपवाद, आशंका, प्रतिकूल, विकृत, निर्ममता, शेष, उत्फुल्ल, आगंतुक, अनुरक्त, स्तब्ध, स्वीकृति, सक्षेम, परितृप्त, परिपुष्टि, आत्मधिकृति, निरपेक्ष, निष्प्राण, तरकश, सद्भावना, अपरिमित, अभ्यस्त, आग्रह, भ्रम, आर्द्रता, निर्मम, पुनरावृत्ति, अन्वेषण, प्रलोभन, जिजीविषा, दिवंगत, प्रादुर्भाव, विमोह, तादात्म्य, वितृष्णा, विरक्ति, उत्ताप, दृढता, जघन्य, मृत, आत्मविकृति, पुनरुद्धार, चेतावनी, स्निग्ध, बुभुक्षित, पुष्टि जैसे अनेक शब्द उनके कथा साहित्य में मिलते हैं जिनकी सूची हनुमान की पूँछ की तरह बढ़ती जाएगी ।

५.१.२ उर्दू शब्द

सूर्यबाला ने अपनी कथा साहित्य की भाषा में अनेक उर्दू शब्दों का उपयोग किया है, जैसे - ख़िज़ाब, नज़ले-जुकाम, इलाज, वाहियात, काबिले तारीफ़, मजाल, हफ्ते, तजुर्बा, बेसाख़्ता, ज़बान, तारीफ़, शरारत, रुआब, बर्दाश्त, अलगनी, लतीफाबाज़ी, हिदायतें, गुंजाइश, क़ाबिलियत, लिफ़ाफ़ा, शुक्रिया, इशारा, फुर्सत, हर्गिज, इतमीनान, फिकर, नफ़रत, फुरसत, सख़्त, आफत, दिलचस्प, अगराना, फरमाइश, फर्क, गुमराह, अहमियत, मज़ाक, बेफिक्र, अंदाज़, नब्ज़, हौवा, मर्ज़, मशविरा, दहशत, कोहराम, गुज़र, रोज़मर्रा, इस्तेमाल, मनहूस, इलाज, बेकली, खब्त, हुजूम, मुखातिब, मातबरी, दराज, खामोशी, मातहत, हुकुम, लमहे, तलाश, तबदील, मशगूल,

खुश्की, मुआवजे, बेमुरौवत, ख्वाहिशें, खरचना, बेइज्जती, तफसील, नकाबपोश, ताउम्र, अश्वस्त, सब्र, गुंजाइश, बेसब्री, कशमकश, सरहद, आबोहवा, नियामत, वजूद, दस्तक, साजिश, कामयाब, खुफियागिरी, खामियाँ, रजामंदी, बेइंतहा, दफ्तरी, तलाश, खिताब, शुमार, खैराती, हिफाजत, हुक्मनामा, सख्त, गिरफ्त, खानापूर्ति, एहतियात, तसवीर, बगावत, शुबहा, इम्तहान, मारफत, इजहार, जुल्म, अजनबीयत, दहशत, बदहवास, बेरहम, बौकालाहट, फब्तियाँ, बसर, मुआयना, इलजाम, कैफियत, ख्वाहिश, ताज्जुब, आसमानी ख्वाब, तफरीह, मिल्कियत, फेहरिश्त, मिसरा, बेमुरव्वती जैसे अनेक शब्द हैं ।

५.१.३ युग्म शब्द

सूर्यबाला के कथा साहित्य में कई जगहों पर युग्म शब्द आए हैं, इन शब्दों से कथा साहित्य की भाषा में एक तरह की लय उत्पन्न हुई है । उनके संपूर्ण कथा साहित्य में इस तरह के शब्द मिलते हैं जैसे - नैतिक-अनैतिक, उचित-अनुचित, अदब-कायदे, रहन-सहन, तौर-तरीके, शिक्षा-दीक्षा, पहनने-ओढने, भरी-पूरी, चख-चख, सीखों-हिदायतों आदि । 'अग्निपंखी' उपन्यास में इसके अधिक उदाहरण मिलते हैं जैसे - थके-थकाए, ढोर-डंगर, खेत-सिवान, यहाँ-वहाँ, कूदते-फाँदते, रोब-दाब, मोटा-झोंटा, कॉपी-किताब, कोरट-कचहरी, समझता-बूझता, लिखा-पढ़ी, सानी-पानी, हलवाहों-मजदूरों, घर-बखरी, सिंगार-पटार, तेल-फुलेल, रची-बसी, उठते-बैठते, खाते-पीते, गँवई-जवार, बड़े-छोटे, लुच्चे-लफंगों, चरस-गाँजे, करम-कुकरम, सूनी-सनाकी, ताक-झाँक, अड़बी-तड़बी, खार-मिटाव, गाँव-सिवान, करने-मरने, कवच-कुंडल, कुल्ला-दातून, घर-बखरी, खर-पताई, जरते-मरते, तिलक-बरिच्छा, नेग-जोग, रूखी-सूखी, समझी-बूझी, खाते-बनाते, हँस-बोल, खटवार-पटवार, जाते-जवाते, गठरी-मुठरी, मान-मनौवल, ओसारा-आँगन, होश-हवास, खोद-विनोद, लुगड़ी-फगड़ी, देर-सबेर, ताने-उलाहने, जाते-जवाते, बेहयाई-बेशरमी, महल-दुमहला, कच्चा-पक्का, मिला-जुला, खेत-खलिहान, मेड़-मैदान,

सिकुड़ा-सिमटा, झिझक-संकोच, माँजी-धोई, कपड़े-लत्ते, चूरा-चारा, जोतने-बोने, पूछा-ताछा, ढलते-झलते, रस-गुड़, दूध-दही, गुड़-पानी, ठाट-बाट, पूछने-जाँचने, मियाँ-बीवी, बीनने-पछारने, धरना-सुखाना, कूटना-छाँटना, शुभ-सगुन, मेल-मुलाकात, भागने-दौड़ने, उमर-समय, धरती-माटी, गठरी-मुठरी, रात-बिरात, करने-धरने, रज्ज-गज्ज, खिलाना-पिलाना, कढ़ी-फूलौरी, चूल्हों-भट्ठों, खौलता-दहकता, नाते-रिश्ते, बाँट-चुँट, ढ़लते-झलते, पूछा-ताछा, पूछने-जाँचने, भीड़-भड़क्के, दूध-दही, रस-गुड़, हाड़-तोड़, तोपती-ढाँकती, छटे-छमाहे, खोज-खबर, घुमाया-फिराया, वारे-न्यारे, लहक-दहक, चिकनी-चुपड़ी, समझा-बुझाकर, नौकरी-चाकरी, कमाते-धमाते, आलतू-फालतू, थका-हारा, जग-जाहिर, टिक-टिक, सँबालते-सँभालते, टहल-टुहल, गड़ाए-गड़ाए, शरीर-सौष्ठव, मिलने-जुलने, सिखाने-समझाने, अलाय-बलाय, कोयला-पानी, साधा-बँधा, बाकायदा-बदस्तूर, बनाव-सिंगार, उलटना-पलटना, जुड़ने-बिखरने, केहाँ-केहाँ, सुख-सुकून, रँगा-चुँगा, मिलती-जुलती, काटती-कपटती, जाने-अनजाने, निरीह-निस्तेज, हलके-फुलके, घर-परिवार, हँसने-बोलने, देहरी-आँगन, मुक्त-उमुक्त, छौंकती-बघारती, सँवाराती-समेटती, धोने-पोंछने, झेंप-संकोच, लाड़-दुलार, हारी-थकी, पाट-पूट, थका-माँदा, सोचती-समझती, तर-बतर, सिमटी-दुबकी, भाग-दौड़, सार-सँभाल, रंग-बिरंगा, ताने-उलाहने, कहती-सुनती, टूटी-अधटूटी, क्षत-विक्षत, आर-पार, मिलते-जुलते, गरजते-तरजते, जोड़-तोड़कर, देखना-सँभालना, सुई-वुई, मरहम-पट्टी, भूल-भुलाकर, मिलाने-फलाँगने, आढ़े-टेढ़े, कटे-बँटे, थमी-जमी, ठेलती-धकियाती, हृष्ट-पुष्ट, ऊबड़-खाबड़, सुथरी-सँवरी, कटे-फटे, सीधी-उलटी, बहलाने-फुसलाने, खाते-पीते-सोते, दही-बताशे, सहज-स्वच्छंद, विश्वासों-खिताबों, बतियाते-खेलते, छिन्न-भिन्न, ढका-मुँदा, अगली-पिछली, आधी-अधूरी, अर्चन-वंदन, पहनाव-ओढ़ाव, क्षत-विक्षत, कल-पुरजे, ऊबड़-खाबड़, तितर-बितर, बात-बिना-बात, हो-हल्लड़, चॉक-डस्टर, अनाप-शनाप, जोड़-तोड़, साबुन-पानी, आलथी-पालथी, सूटेड़-बूटेड़, डरे-सहमे, समेट-समाट,

हंडे-परातों, भरे-पूरे, चाटा-पोंछा, छठे-छमासे, गठरी-मुठरी, खाने-पहनने, मैले-कुचले, लस्त-पस्त, लुज्जी-मिजी आदि ।

५.१.४ परिवर्तित शब्द

अशिक्षित तथा गाँव में बोलियों में बोलने वाले लोग जब अंग्रेजी शब्दों का उच्चारण करते हैं तो शब्दों का सही ज्ञान न होने की वजह से उनके उच्चारण में अशुद्धता निर्माण होती है । सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है, इसी वजह से छोटे बच्चे एवं गाँव के लोग अंग्रजी शब्दों का उच्चारण करते हुए उनका रूप परिवर्तन होता है साथ ही अन्य भाषाओं के उच्चारण में भी जब अशुद्धता आती है तो उनका लहजा बदल जाता है जैसे- टेबुल, पैरालिसिस, कोरट, इस्तिरी, नाखून पॉलिश, टिरामों, गवंडर (गवर्नर), होएगी, ऐस(ऐश), लुआठी, उम्मेद(उम्मीद), बकसी, टैंपू, डिजैन, चारज, परम्रम, किरकेट, लांबूट(लांगबूट), इतबार(ऐतबार), नियाव(न्याय), साखी(साक्षी), मिशटिक, शास्तरों , नौंस्कार, इंगलीस, इश्टीमर, इश्टोरी, परक, प्रकीति, साच्छी, बकसिया, बेसरमी, सूटर, गिलास, सिल्कीन बुशर्ट, बकसी, कठकरेजी, पलस्तर, असाढ़, पंडी जी, सग्गे, अस्तुति, मिलिस्टर, बिच्युट(बिस्कुट), सिलिक, दरवज्जे, आदि ।

५.१.५ गढ़े हुए शब्द -

इन शब्दों को पढ़कर ऐसा महसूस होता है कि पात्रों को यथार्थ रूप में चित्रित करने के लिए उनकी भाषा में इन शब्दों का प्रयोग हुआ है । ये शब्द लेखिका ने खुद गढ़े हुए महसूस होते हैं जैसे- घर-घुस्सर, मैजिकोपचार, बड़प्पनप्रद आदि ।

५.१.६ देशज शब्द

सूर्यबाला ने अनेक देशज शब्दों का भी उपयोग बड़ी सुंदरता से किया है, जैसे - लिलार, लतरी, खर-मिटाव(नाश्ता), लोटे-बटलोही , कूढ़मगज, पढ़वइया, परले साल, लसटँगे, दमघोंटू, दयानतदारी, बस्ता, गाँव-जवार, कुल-मरजाद, हलकानी, पछाँह, बतकचरी, चिलकारी, महतारी, बेसरमी, लोफड़ई, शुक्कर, बुशर्ट, चरित्तर, टोंटा, ढरकना, कुठिला, कठकरेजी, तिसरकी, हलकान, सकार, ढरकूँगी, पोथी-पत्रा, धरम, टटरा, मड़इया, अउरत, अहिवाती(सुहागन), बस्साता आदि ।

५.१.७ ध्वन्यात्मक शब्द -

सूर्यबाला के कथा साहित्य की भाषा की यह अनोखी विशेषता रही है कि उन्होंने अनेक जगहों पर ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग आवाजों एवं विशेषणों के रूप में किया है । कुछ ध्वन्यात्मक शब्द इस प्रकार से हैं - गिजगिजाहट, झुरझुराती, कुनमुनाना, भुनभुनाई, चिटककर, दरक-दरककर, गल-गलकर, छलछलाई, मिनमिनाना, झनझनाती, खुनखुनाती, धड़धड़ाता, फलफलाता, धुकधुकाते, टनटनाता, नुकनुकाये, भुनभुनाकर, झलझलाकर, खुरखुराती, भरभराकर, घरघराहट, सरसराती, फुसफुसाए, सरसराहट, बिलबिलाकर, चिपचिपाती, दपदपाता, भुनभुनाए, फलफलाकर, ठिहठिहाकर, चभचभती, दुरदुराते, घुनघुनाया, तमतमाती, दनदनाती, खिलखिलाहट, हिनहिनाती, तरतराते, चिंचियाती, ठिनठिना, ठकठकाता, चिरचिराई, कुरकुराए, चमचमाते, मिचमिचाकर, फरफराने, सरसराने, बलबलाना, झरझराती, भुरभुराकर, खनखनाती, छलछलाती, किलकिलाती, फड़फड़ाया, तमतमाहट, भुरभुराकर, झनझनाकर, फुसफुसाए, कुरकुराहट, भकभकाता, घनघनाया, झलझलाती, नकनकाई, दनदनाहट, सरसराए, भलभलाता, छलछलाता, गहगहाता, हरहराती, टिकटिकाया, चहचहाती, धड़धड़ाकर, गनगनाकर, ठकठकाई, बलबलाते, चिरचिराती, सरसराहट, तलफलाहट, डुगडुगाती, तलफलाती, लपलपाया, तरतराई,

नकनकाती, तरतराए, ठिलठिलाकर, सनसनाकर, फरफराए, लचलचाई, खटखटाती, किचकिचाती, सरसराया, खनखनाती, झिरझिराती, धड़धड़ाए, छरछराती, छपछपाते, किलकिलाते, कड़कड़ाती, हरहराता, थरथराते, झिरझिराती, सनसनाते, फुफकारती, चिंचिआहट, बिलबिलाती आदि ।

५.१.८ अंग्रेजी शब्द

सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य में अनेक अंग्रेजी शब्दों का उपयोग किया है जैसे –

बैंड, सीरियस, मॉडर्न, बिजनेस टूर, हॉबी, वर्कशॉप, कैनवास, प्लीज, फनी, एम्बैरेस्ड, ब्राइट, कलर्स, प्रिंट, शॉक, डिस्टर्ब, सिंक, स्टार्च, स्टोर, डॉक्टर, टेलीग्राम, कैप्सूल्स, विटामिंस, नेमप्लेट, सूटकेस, सिचुएशन, क्लाइमेट, ड्राइंगरूम, फीवरिश, थर्मामीटर, वाइफ, नैपकिन, नॉलेज, इक्जाम, प्लेट, अंकल, कंट्रोवर्सी, फाइनल, डिपेंड, मूवी, हिपोक्रेसी, परफेक्ट, पार्क, प्लेटफॉर्म, प्लास्टिक, बुलेटप्रूफ, पाइप लाइन, वेटरी, वर्कर, चिप्स, रेस्टूरंट, स्टोर, ड्राइंगरूम, टॉयलेट, फ्रॉक, सेक्शन, स्टेशन, किचेन, रेजव सीट, अल्युमिनियम, सर्टिफिकेट, केमेस्ट्री, बायलॉजी, थैंक्यू, वाशबेसिन, बुशर्ट, स्टडी, टोस्ट, सॉस, ब्रेकफास्ट, आयरनिंग, कॉरसपेंडेंस कोर्स, चैप्टर, कबर्ड, सेट, स्टैंडर्ड, गुड, किचेन, टैरेस, लोडिंग-अनलोडिंग, सेल, शर्ट, लाइटर्स, मेट्रीमोनियल, रिडिकल्स, रिलेशनशिप, रेलेक्सेशन, चेकअप्स, नर्सिंग होम, बुकिंग, डिलिवरी, टेपरिकॉर्डर, माइक, इंटरवल, स्टार्ट, एंकरेज, नर्सरी, ऑफर, कंपनी, ट्रिप, एप्लीकेशन, एक्सप्लोइट, डाइवोर्स, क्लर्क, एंबरेसिंग, कंसर्न, एडमिशन, फीस, कोचिंग, प्रॉब्लम्स, क्विज, कोर्स, क्रिकेट, ऑब्जेक्शन, प्राइवेसी, ऑपरेशन, शॉक, प्रैक्टिकल, रिस्क, नैपकिन, ग्रीड, पिकनीक, थियेटर, पिक्चर, कॉन्टेक्ट, कंक्रीट, कॉम्प्लीमेंट, साल्व, रेलिंग, सैलून, मेस, इंपर्सनल, ग्लैमर, ओवरटाइम, वायवा, फंक्शंस, स्टियरिंग, इग्जीक्यूटिव, किडी कॉर्नर, आइस्क्रीम, ओवर क्वालिफीकेशन, सीनियर कॉलेज, कांटीनेंट, हसबैंड, थिकस्किड, अटेंडेंस, लेक्चर, सायकोलॉजी,

स्टोव, सॉसपैन, माचिस, फुलस्टॉप, परमिट, गैस, प्रॉबलम्स, पोजीशन, थैंक्यू, मिनी-वैन, ट्रॉली, फिक्स, बिजी, डिस्कस, हैव फन, वेरायटी, इंटरटेनमेन्ट, हाउजी, ब्यूटी कांटेस्ट, मैजिक-शो, मोबाइल, सिक्योरिटी गार्ड, लाउडस्पीकर, डोनेशन, बर्थडे, ब्रेकफास्ट, रिड्यूस, क्रेज, नॉट, वार्डरोब, ऑरिजनल, पोर्टिको, यूनिफॉम, शोफर जैसे अनेक शब्द उनके उपन्यासों एवं कहानियों में मिलते हैं।

५.१.६ अंग्रेजी वाक्य

सूर्यबाला के 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में कई सारे अंग्रेजी वाक्य आए हुए हैं जैसे - सच अ नाइस मूवी !(७), 'नाट अ सॉफिस्टीकेटैड एंटरटेनमेंट !'(८), 'आई लव टु टाक अबाउट हर, टु थिंक अबाउट हर, टु ड्रीम अबाउट हर।' (६), 'शी इज देयर स्टेप मदर । वैरी इंटेलीजेंट गर्ल । ऑपरचुनिटी मिलती तो कहाँ से कहाँ पहुंच जाती ।'(१४) 'सुबह के इंतजार तक' उपन्यास में आवश्यकता नुसार अंग्रेजी वाक्य मिलते हैं, जैसे - 'वी वांट यंग ब्लड ।'(८८) सूर्यबाला की अनेक कहानियों में भी इस तरह के वाक्य मिलते हैं, जैसे- "इटस आल राइट..."[२] "टुडे वी आर गोइंग टू सी अदर गणेशाज'-"बेरी बिग-बिग गणेशाज...नाट लाइक दिस"[३] "नेवर गेट अटैच्ड टु एनीथिंग"[४] "हैट्स ऑफ टु योर ग्रेट मदर रोहित !"[५] "यू वर रॉन्ग, माई डियर"[६] "आई शुड नॉट मिस द अपॅरचुनिटी"[७] "यू हैव टू बी केयरफूल"[८]

सूर्यबाला ने सामान्य पाठकों को ध्यान में रखते हुए कई अंग्रेजी वाक्यों का अर्थ भी कोष्ठकों में दिया हुआ मिलता है, उदाहरण के लिए- "डोंट हैव द सेंस दैट द ड्राइवर (इतनी भी समझ नहीं कि ड्राइवर)..."[६]

'रेस' कहानी में 'लेट्स सी हू विस द रेस' (साथी, देखना है, कौन जीतता है इस दौड़ में)[१०]

'टु वाच अ फनी साइट इज इटसेल्फ अ फन' (कोई बेतुकी चीज देखना भी तो अपने आप में फन है)"[११]

'इनफैक्ट आई शुड बी सॉरी फॉर ट्रबलिंग यू' (तकलीफ तो मैं आपको देता हूँ ।)[१२]

'कतारबंद स्वीकृतियाँ' में स्वॉट इज सिन ? टेलिंग लाई (झूठ बोलना), यूजिंग बैड वर्ड्स (गंदी बात बोलना), स्टीलिंग (चोरी करना)[१३]

'बट वी आर नॉट सपोज्ड टु सिंग दीज सांग्स, सिस्टर ।' (लेकिन हमें यह गीत गाने का अधिकार नहीं है)[१४]

'सिंधु वांट्स यू टू कम ऑन हर बर्थ डे । वुड यू प्लीज कीप द चाइल्ड्स विल ?' (सिंधु अपने जन्मदिन पर आपको निमंत्रित करती है । क्या आप बच्ची का मन रख सकेंगी ?)[१५]

'माई चाइल्ड शुड नॉट बी सैड सिस्टर ।' (मेरी बच्ची कभी दुखी न हो)[१६]

'हाऊ इज माइ चाइल्ड डूइंग दीज डेज ?' (मेरी बच्ची कैसे चल रही है इन दिनों)[१७]

'कहाँ तक' कहानी में –'यू वुड लुक लाइक अ लिजर्ड ।' (बिलकुल छिपकली दिखाई दोगी) ।'[१८]

"दैन डोंट लेट एनीबडी नो अबाउट दिस (तब किसी को इस बारे में कुछ पता न लगे)[१९]

"वीमेन आर ऑलवेज टिमिड, सर !" (औरतें हमेशा डरपोक होती हैं)[२०]

५.१.१० मुहावरे

सूर्यबाला के कथा साहित्य में अनेक मुहावरे मिलते हैं, जैसे – 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में बलैया लेना(३), शामत आना(१०), किले फतह करना(१५), औकात में लौटना(१५), दहला मारना(१८), आँख तरेरना(२४), हैरत होना(३०), चुगली खाना(३३), कायल होना(३४), गुलाल

के गुबार उड़ना(३६), सागर मथ आना(४६), आँधी गिरना(७१), छप्पर फाड़कर बरसना(७१), आपे से बाहर होना(८८), फफक फफक कर रोना(८६), 'अग्निपंखी' उपन्यास में खून-पसीना एक करना(१४), साँप लोट जाना(१५), जुगत भिड़ाना(१५), हाड़ तोड़ मेहनत करना(१५), अपने पाँवों में कुल्हाड़ी मारना(१६), पाँव तले की दूब बनी रहना(१६), सोना बरसाना(१७), हलकान होना(१७), कलेजे पर पहाड़ रखना(२१), कलेजे में हुड़क उठना(२२), आँख की किरकिरी निकल जाना(२२), कलेजा खुरचना(२२), धुन का पक्का होना(२२), हुमस-हुमसकर रोना(२२), चैन की नींद सोना, लोहा लेना(२७), पत्थर पे दूब जमना(२८), पहाड़ सी जिंदगी काटना(२८), हौसले पस्त करना(३२), सिर खपाना(३६), ढिंढोरा पिटना, कान खडे होना(४५), गदगद होना(४५), हुलिया टाइट होना(४६), आपा खोना(५०), धुन पकड़ लेना(५०,) तीर-तरकस खाली होना(५१), वारे-न्यारे होना(६१), कान लहक-दहक उठना(६१), टस से मस न होना(६३), दहाड़ उठना(६५), आवे में धधकना(६७), सिर से पाँव तक दहलना(७४), जिंदगी हलकान होना(७८), सुबह के इंतजार तक' उपन्यास में हवन करना(८६), बिटर-बिटर ताकना(६४), लंबा हाथ मारना(६५), ढिंढोरा पीटना(१०१) खुशी से उमग उठना(१०२), आँखों में एक चमक कौंधना(१०२), चेहरे पर हवाइयाँ उड़ना(१०२), रुपयों का जुगाड़ करना(१०२), चेहरे का रंग उड़ना(१०३), कतरा जाना, छलनी कर डालना(१०४), आँखें चुराना(१०७), मोरचे पर डटे रहना(१०६), कीचड़ उछालने से बाज न आना(११६), छाँव खो देना(१२०), हवा होना(१२१), ताँता लगा रहना(१२१) कब्र खोदना(१२०), आग में झोंक देना(१२२), छलाँग लगाना, जिंदगी बख्शना(१२२), तीर कमान से छूटना(१२३), दिल बैठता चला जाना(१२४), द्रवित हो उठना(१२६), ऊभ-चूभ होना, साँस उखड़ना(१२७), आँगन का बिरवा उखाड़ना(१२८), भैंसा हाँकना, दहल जाना(१२६), मर्म पर चोट करना(१३२), दर्द के बगुले अटकना(१३४), दाँतों तले उँगली दबाना(१३८), म्याऊँ हो जाना, डंके की चोट पर बोलना(१४०), रोयाँ-रोयाँ दहक उठना(१४१), ऊभ-चुभ होना(१४२), दुखती रग पर हाथ

धरना(१४५), रोब मारना(१४६), ठठाकर हँसना(१५५), शेखी मारना(१५७), 'यामिनी कथा' उपन्यास में ताकते रहना(२७), केंचुल उतार फेंकना(३१), कसौटी पर खरा उतरना(४०), सिरा हाथ में आना(४४), पैसा पानी की तरह बहाना(४८), डाँव-डाँव भटकना(४६), रेत की तरह मुट्ठी से सरकना(५१), वजूद में समेटना(५२), मुँहतोड़ जवाब देना(५३), आँखों से ओट होना(५४), लहूलुहान होना(५६), खून छरछरा आना(५६), छलनी होते चले जाना(५६), टकटकी लगाना(५७), डहक-डहककर रोना(५६), पासा पलटना(६७), वास्ता नापना(७०), मोर्चा लेना(७३), अपने पैरों पर खड़ा होना(७२), हकबका जाना, तल्खी पर उतर आना(७५), धक से रह जाना(७६), बेड़ा खींच ले जाना(७८), आशंका व्यापना(८३), काठ मार जाना(८४), सिर-आँखों पर लेना(८४), हमेशा के लिए फ्रीज होना(८७), खब्त सवार होना(६८), पिंड छुड़ाना(६८), चिनगारी पर पानी डालना(१००), दुतकार देना(१००), शब्द आवें में धधकना (१०६), खरगोश-सा दुबकना(१०६), धैर्य जवाब दे जाना(१८), अंधेरी खंदक में बंधक रखना(५८), जिंदगी के पन्ने पलटना 'दीक्षांत' उपन्यास में आँच में लहकना(४), हद से गुजर जाना(४), आँखें चुराना(५), अपने हाथों अपनी इज्जत उछालना (४), तीनों लोकों का सुख मिलना (११), दूध का धुला(१३), तीर मार लेना(१७), जुगत बैठा लेना(१७), ओखली में सिर देना (२३), ऊँट व्दारा पहाड़ी का मजा चखना(२४), फिकरा कसना(२६), ताव खा जाना(३१), घाव पर नमक छिड़कना(३३), एड़ी-चोटी का पसीना एक करना(४५), उतावली पर पानी पड़ना(४८), खैनी फांक लेना(५२), गेहू के साथ घुन का पिसना(५७), सरे बाजार नंगा कर दिया जाना(५६), आवे में धधकना(५६), उबल पड़ना(६४), बगलें झाँकना, बखेड़ा खड़ा करना, जान जोखिम में डालना(६५), जीना हराम होना(६६), ताक पर रखना(७०), भुने गोश्त की महक लगना(७१), बिना बात तिल का ताड़ बनाना(७४), दहला मारना, सिट्टी-पिट्टी गुम होना((७५), लिफ्ट न देना(८१), मुहरा बनना(८६), बलि का बकरा बनाना(६०), जप्त कर जाना, लगाम थामना(६२) आँख की किरकिरी बनना, गला घोंट

देना,(९३), इज्जत माटी के मोल बिकना, पगड़ी उछालना, पेट पर लात मारना(११९), खैरख्वाह बनना, हौसले बुलंद करना(१२३) आदि ।

सूर्यबाला की कहानियों में भी कई सारे मुहावरे मिलते हैं, जिनकी सूची हनुमान की पूँछ की तरह बढ़ती जाएगी इसलिए कुछ ही उदाहरणों को यहाँ दिया जा रहा है, जैसे – जिंदगी का बेड़ा पार लगना, बिलबिला उठना, रोयें कांप जाना, पैसा पानी की तरह बहाना, निहाल होना, घिग्घी बंध जाना, घर के भेदिये होना, किला फतह करना, कोल्हू पेरना, पसीना-पसीना होना, हाथ धोकर पीछे पड़ना, घर की चौहद्दी नापना, रोटी का आसरा लगाना, भेजा चाटकर रखना, आंख गुरेरना, हथियार डालना, पावों में पंख लगना, सांप को दूध पिलाना, घर गुनगुना उठना, हवा गरमाने लगना, आवाज गले के अंदर दफन होना, दीदे चमकाना, पत्ता काटना, गधे को भी बाप कहना, मुँह चुराना, लेने के देने पड़ जाना, माथे पर शिकन पड़ना, दब्बू बन दुबक जाना, गुस्सा पी जाना, जान की बाजी लगाना, छलाँग लगाना, इज्जत धूल में मिलाना, आँखें खुशी से छलकना; अपना रास्ता नापना, दिमाग चाटना, दिमाग की लगाम खींचना, मजा किरकिरा करना, कलेजे में नश्तर चुभना, हाँक देना, मुँह फुलाना, टोपी उछालना, धौल जमाना, कलेजा मुँह को आना, बगलें झाँकना, छठी का दूध याद कराना, लिफ्ट देना, तिल का ताड़ बनाना, कलेजा मुँह को आना, अकल की दुश्मन, चकमा देना, भैंस के आगे बीन बजाना, आँखों में खून उतर आना, उम्मीदों पर पानी फिरना, पानी-पानी होना, कन्नी काटना, आटे-दाल का भाव पता चलना, आसमान नाप आना, पत्थर पर दूब जमना, ओखली में सिर देना, कपास को माचिस दिखाना जैसे अनेक मुहावरे मिलते हैं ।

५.१.११ कहावतें

सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य में अनेक कहावतों का प्रयोग भी किया है । 'अग्निपंखी' उपन्यास में अनेक कहावतें मिलती हैं, जैसे – ढाक के तीन पात, भगवान के राज में देर है

अंधेर नहीं(२२), हाथ कंगन को आरसी क्या?(२३), जली तो जली, पर सिंकी भली(४१), न घर के रहे न घाट के(४१), जवान जहान हुआ(४२), काला अक्षर भैंस बराबर(५६), 'सुबह के इंतजार तक' उपन्यास में समझदार को इशार काफी(१०२), सौ चुहे खाकर बिल्ली चली हज को(१३६), अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता(१४०), एक मछली सारे तालाब को गंदा करती है(१४१), झूठ बोले कउआ काटे (२५), लोहे को लोहा काटता है(७७), चोर की दाढ़ी में तिनका(११६), एक पंथ दो काज(११७) आदि ।

सूर्यबाला की कहानियों में भी कहावतें मिलती हैं जो इस प्रकार हैं - आँख की ओट तो दुनिया की ओट, काले पत्थर पे शक्कर फुटाने, आँखों के सामने छोटा न करना, छुपी रुस्तम होना, टस से मस न होना, समझदार को इशारा काफी, होनहार बिरवन के होत चीकने पात, दूध का जला होना, साँच को आँच, गेहूँ के साथ घुन भी पिसेगा, दूर के ढोल सुहावने, देर आयद दुरुस्त आयद, विनाश काले विपरित बुद्धि आदि ।

५.१.१२ नारे

सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य में नारों का भी बहुत सोच समझकर उपयोग किया है, जैसे - कम बच्चे, ज्यादा खुशहाली; कम संतान, सुखी इनसान, सादा जीवन उच्च विचार, हिंदू-मुसिलिम-सिख-ईसाई - आपस में सब भाई-भाई, 'तानाशाही नहीं चलेगी ! रायजादा मुर्दाबाद ! जो हमसे टकराएगा, चूर-चूर हो जाएगा... आदि

५.१.१३ गालियाँ -

सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य में भावानुरूप भाषा का प्रयोग करते हुए गालियों का उपयोग भी किया है, जैसे- साला, सूअर, गधा, रंगा-स्यार, ब्लू जैकाल, स्साला, बदमाश, चोर, उचक्का, उल्लू का पट्ठा, गधे का बाप, नकारा, जानवर, हलकट, इडिएट, चोट्टिनों,

बदजबान, बदतमीज, बेवकूफ, उल्लू के पट्ठे, हरामी, मक्कार, हरामखोर, चुड़ैल, फुलिश, शिट, स्टूपिड, नॉनसेंस, सैतान की खाला, जाहिल, कमबख्त, कमअक्ल, सन ऑफ बिच, ब्लडी स्वाइन, नालायक, निकम्मा आदि ।

५.१.१४ सिनेमा के डायलोग

विश्व स्तर पर हिंदी सिनेमा ने आज अपनी छाप जमायी है । अहिंदी भाषी लोग भी सिनेमा की खातिर हिंदी सीख रहे हैं ऐसे में बोलते-बोलते ही लोग कई सिनेमा के डायलोग कह जाते हैं । लोगों की इसी प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य में डायलोगों का उपयोग किया है, जैसे - तेरा क्या होगा कालिया ?, मोगाम्बो खुश हुआ ! आदि ।

५.१.१५ घोषणा

सूर्यबाला ने एक जगह पर घोषणा के प्रारूप को भी अपनाया है । 'कौमुदी : एक प्रश्न' कहानी में घोषणा आयी है । नायिका घोषणा करती है -"बाअदब, बामुलाहिजा होशियार!....हर किसी को खबरदार किया जाता है कि अब से कोई भी लम्बा-नाटा, गोरा-काला, नौकरीयाफ्ता या बेकार...बी.ए., एम. ए. पास या फेल लड़का उसके माँ-बाप, चाचा, ताऊ, बहनें और भाभियाँ, किसी कौमुदी को उठा-बिठा, चला-फिरा या नाप-जोख कर रिजेक्ट करने की जुर्रत नहीं कर सकती..."[२१]

५.१.१६ विज्ञापन

आज की दुनिया विज्ञापन की दुनिया है । संचार माध्यमों के माध्यम से दिनों दिन विज्ञापन का प्रचार प्रसार हो रहा है ऐसे में सारी दुनिया विज्ञापनों से बहुत प्रभावित हो रही है ऐसे में साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है । सूर्यबाला ने विज्ञापनी भाषा का

उपयोग अपनी 'सुनो समित, सुनो सुलभ' कहानी में किया है, - "मेहरबानो, कद्रदानो ! इस निलामी की सबसे दिलचस्प चीज यह है....इस औरत को देखिए, उम्र कुल तीस के आस-पास, शक्ल और सेहत से दुरुस्त, ऐब कोई नहीं, साथ में एक बच्चा । बेवा नहीं, परित्यक्ता। जी हाँ, मुँह न बनाएँ, चाल-चलन और बोलचाल में सभ्य, शालीन । संबंध-विच्छेद का कारण ? जी नहीं, कुछ ऐसा-वैसा न सोचें । बस यों ही । यों विदेश में जाकर पति की किसी दूसरी औरत से आशनाई। तो मेहरबानो, एक हजार एक, एक हजार दो, एक हजार तीन ।"[२२]

५.१.१७ प्रतीक योजना

साहित्य लेखन एक कला है और कला में सौंदर्य भरने के लिए एक कलाकार जितना प्रयत्नरत रहता है उतना ही रचनाकार अपने लेखन को सुंदर बनाने के लिए प्रयत्नरत रहता है । साहित्य की अनेक विधाओं के अनुरूप रचनाकार सौंदर्य प्रसाधनों का उपयोग करता है। कथा साहित्य के इन्हीं प्रसाधनों में एक साधन प्रतीक योजना है । प्राचीन काल से साहित्य में प्रतीकों का उपयोग होता आ रहा है । युग के अनुसार प्रतीकों में जरूर बदलाव आए हैं । त्रिभुवन सिंह के अनुसार "यह युग आंकड़ों का युग है जिसमें लाखों करोड़ों का हिसाब किताब और आदान-प्रदान कागज पर लिखी दो चार पंक्तियों में हो रहा है । अतः स्वाभाविक है कि साहित्य की व्यापकता को प्रतीकों के माध्यम से सीमित होना पड़े ।"[२३] डॉ नगेंद्र साहित्यीक प्रतीकों के बारे में लिखते हैं, - "प्रतीक एक प्रकार से रूढ़ उपमान का ही दूसरा नाम है जब उपमान स्वतंत्र न रहकर पदार्थ विशेष के लिए रूढ़ हो जाता है तो यह प्रतीक बन जाता है ।"[२४]

प्रतीक अर्थ को अभिव्यक्त करता है । जो प्रतीक जितने अधिक अर्थों को अभिव्यक्त करे वह उतना ही श्रेष्ठ कहलाता है । साहित्य में प्रतीक योजना अनुभूति की सत्यता को व्यक्त करने

के लिए की जाती है । कुछ ही शब्दों में रचनाकार बहुत कुछ कह जाता है और साहित्य के सौंदर्य में वृद्धि होती है । सूर्यबाला ने भी अपने साहित्य में प्रतीकों का उपयोग किया है । उनके उपन्यासों के नाम प्रतीकात्मक हैं । उनका पहला उपन्यास 'मेरे संधिपत्र' का शीर्षक शिवा व्दारा किए जानेवाले समझौतों का प्रतीक है जो व्यंजना प्रधान है । 'सुबह के इंतजार तक' शीर्षक में सुबह, आशा का संभावनाओं का प्रतीक है जिसमें मीनू अंत तक सुखमय जीवन का सुहावना सपना देखती है । वह पत्र में लिखती है- "देख, मैं एक सत्य स्वीकार रही हूँ कि अंतिम क्षण तक तेरे उज्ज्वल सुखमय भविष्य का बंदनवार मेरी आँखों में टँगा रहेगा । बस कुछ ही महिने और, फिर तेरी (मेरी भी कह ले) साधना पूर्ण होगी । वह कितनी बड़ी उपलब्धी होगी, ..." (१६२) इसका मतलब है मीनू अपने और बुलू के जीवन की सुबह के इंतजार में है । 'दीक्षांत' भी प्रतीकात्मक शीर्षक है । दीक्षांत समारोह में शिष्य अपने गुरु को गरुदक्षिणा देता है । 'दीक्षांत' उपन्यास में अंत में विजयेंद्र के पिता अपने गुरु के पौत्रों की शिक्षा की जिम्मेदारी खुद लेता है और उपन्यास का सुखद अंत होता है । 'यामिनी कथा' में 'हवन कुंड' को प्रतीक के रूप में लिया है जिसमें यामिनी अपने सुखों की आहुती देती रहती है । उनकी कहानियों में अनेक प्रतीक आए हैं जैसे 'बिन रोई लड़की' कहानी में एस्ट्र्स के फूलों का गुच्छा लड़की की सादगी के प्रतीक के रूप में आया है, 'बिहिश्त बनाम मौजीराम की झाडू' कहानी में झाडू व्देष, ईर्ष्या को हटानेवाले तत्व के रूप में आयी है, 'चोर दरवाजे' मानवीय घुटन के प्रतीक है, 'मटियाला तीतर' देबू के गाँव से जुड़े हुए संबंध का प्रतीक है, 'वे जरी के फूल' में जरी के फूल खुशहाली का प्रतीक है । 'गैस' मानवीय जीवन की मूलभूत सुविधाओं का प्रतीक है । 'झील' भावनाओं का प्रतीक है, 'राख' मानवीय आस्थाओं के मिटने का प्रतीक है, 'खोह' भ्रामक स्थितियों का प्रतीक है । इस तरह से सूर्यबाला के कथा साहित्य में प्रतीक योजना का प्रयोग मिलता है ।

सागर के नीचे अपरिसीम आकाश...चाँद तारों से गुंथा हुआ... कभी आकाश के एक टुकड़े मात्र से निरासक्त रहनेवाली मैं आज अनंत व्योम की स्वामिनी थी ।(७४) "हठात मम्मी के चेहरे पर सफेद बादलों के ढेर सारे रेशे बिखरे थे । फिर जल्दी से बादलों के रेशे चीर कर सूरज चमका था, "झगड़ा? छिः !"(३४)

ऐसे अनेक बिंब सूर्यबाला के कथा साहित्य में भरे पड़े हैं जिनके उदाहरण हनुमान की पूँछ की भाँति हैं ।

५.१.१९ सूक्तियाँ

सूक्तियाँ गागर में सागर भरने का काम करती हैं । सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य में अनेक सूक्तियों का प्रयोग किया है जैसे- 'अग्निपंखी' उपन्यास में - पैसा पैसे को बनाता है(२१), गाँव घर देता है, सहर चुसता है(५२), 'सुबह के इंतजार तक' में जैसा समय वैसा दृष्टिकोण(१३८), 'दीक्षांत' उपन्यास में 'भय बिनु प्रीति न होय !'(१०), समाज सच के सामने झुकता है, सच समाज के सामने नहीं (१५), व्हेयर देयर इज विल, देयर इज वे(२१), जहाँ से धुआ आता है, आग होती ही है(८१), सूर्यबाला की कहानियों में भी सुक्तियों का प्रयोग हुआ है जैसे - नकारे का साथ समझो नरक का वास आदि ।

५.१.२० अंधविश्वास

भारतीय समाज में बहुत सारे अंधविश्वास भरे पड़े हैं । उनमें से नजर लगना यह भी एक अंधविश्वास ही समझा जाता रहा है । नजर लगने से सामान्य मनुष्य में बदलाव आता है और वह असामान्य व्यवहार करने लगता है या बिमार पड़ जाता है जिसके लिए नजर उतरने की आवश्यकता होती है । यह नजर उतारने के लिए विशेष प्रकार के वाक्यों का उपयोग होता है जिसका जिक्र सूर्यबाला के 'अग्निपंखी' उपन्यास में हुआ है-

‘ आठ को, बाट को, कुँइयाँ पनहाट को

जे मोरे भइया को मारे दीठ

ओकर फूटे दुन्नों आँख...

दुहाई महावीर बाबा की, दुहाई भैरों बाबा की...’(३८)

५.१.२१ नीति वाक्य –

सूर्यबाला संस्कृत भाषा का ज्ञान रखती है इसलिए उनके साहित्य में संस्कृत के नीति वाक्यों का उपयोग हुआ है । ‘दीक्षांत’ उपन्यास में अनेक संस्कृत के नीति वाक्य आये हैं जैसे – सा विद्या या विमुक्तये...मां फलेषु कदाचन...जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी...’(१२)

५.१.२२ अनेक भाषाओं एवं बोलियों का प्रयोग

सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य में अनेक भाषाओं एवं बोलियों का उपयोग किया है । इससे उनके साहित्य में यथार्थ उभरकर आता है । कथ्य की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए इन भाषाओं का उपयोग उनके साहित्य में हुआ है ।

क) पंजाबी भाषा – सूर्यबाला ने अपनी कहानी ‘साँझवाती’ में पंजाबी भाषा का प्रयोग किया है। सिक्ख संप्रदाय के परिवार की यह कहानी है, जिसमें मानक हिंदी भाषा के साथ-साथ पात्र अपनी पंजाबी भाषा भी बोलते हैं। इसकी कुछ पंक्तियों को देखा जा सकता है –

“आ गए सी...”

“ले, तभी तो पूछ रहा हूँ । की गल्लए, कुड़िए ! राजी-खुशी ?”

बहत्तर साल की ‘कुड़ी’ खुशबू के हिंडोले पर झूल गयी –

"राजी-खुशी"

"रब्ब दी मेर (मेहर)(८१)

इस कहानी की भाषा में कई सारे पंजाबी शब्द आए हैं -कित्थे, गड्डी, गल्त, बण, इत्ती, कैते, अब्मी, बेगम, सत श्री अकाल, बौत, रैना आदि ।

ख) बांग्ला भाषा का प्रयोग - 'हाँ, लाल पलाश के फूल नहीं ला सकूँगा' कहानी में बंगाली पात्र आए हुए हैं जिनकी वजह से बाँग्ला भाषा का उपयोग किया गया है और साथ में उसका अर्थ भी लिखा है -'बोलबो ना बाबा - तोमार शांगे कैंथा बोलबो ना । (जाओ, नहीं बोलूँगी, तुमसे बात नहीं करूँगी, बाबा !)'[२७]

'बाबा, की होलो' (बाबा, क्या हुआ)?

'हाँ-हाँ, निए ऐशो खूकी । (हाँ-हाँ, ले आओ, खूकी) !'[२८]

ग) मराठी भाषा का प्रयोग - 'जेब्रा' कहानी में मराठी भाषा का उपयोग हुआ है, जहाँ जेब्रा कहता है -'काम पाहिजे'[२९]

घ) गुजराती भाषा - 'थाली भर चाँद' कहानी में गुजराती भाषा का प्रयोग हुआ है -'सूँकरी बेनजी ! मीना नो ताप चढ़े छे - नथी आती ।', सूँ बेन ! तमारा घँणी बी फैक्टरी मा काम करे छे ? तो मेरे घँणी का भी काम लगाने को बोलो ना?', 'तमे तो बेन बुंबई ही जाओ जी! तमारा एजूकेशन और इधर का इशटैंडर्ड बरोबर बैठने का नथी । मेरा बात सुनो, तमे अपने सेठ नो बोल के बुंबई में ही एक कोठी खरीदी करो न...'[३०]

बोलियों का प्रयोग

सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य में अनेक बोलियों का प्रयोग भी किया है । पात्रों की भूमिका के अनुरूप शुद्ध हिंदी एवं बोलियों का उपयोग उनके साहित्य में नजर आता है । जैसे 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में शहर के अभिजात घराने के शिक्षित पात्र शुद्ध हिंदी का प्रयोग करते हैं तो उनके घर के नौकर बोलियों का प्रयोग करते हैं । रामकली रिंकी को कहती है 'ई घंघरिया बांध के फौउज में जायेंगी ? भगोना तो गैस से उतार न पावें, ढाई पसेरी की बंदूक उठायेंगी ।"(४७)

'रहमदिल' कहानी में बोली का ऐसे प्रयोग हुआ है -

"अरे, तो क्या पुलिस पकडिस ? काहे ?"

"नहीं - रेलवईवाले । पार्सल बाबू के कमरे के बाहर निबुवों के टोकरे रखे रहे न, उन्हीं में से छेद करके निबुवा निकालते रहे, रोजा खोलने की खातिर ।"[३१]

आज फिल्मों के माध्यम से हिंदी का प्रचार प्रसार बढ़ गया है । अधिकतर फिल्मों में मुंबईया हिंदी का उपयोग किया जाता है, जिसका प्रभाव लोगों पर पड़ता है । अपने पात्रों की भाषा में स्वाभाविकता लाने के लिए सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य में इस तरह की भाषा का उपयोग किया है, जैसे - 'जेब्रा' कहनी में जेब्रा की भाषा में मुंबईया हिंदी आयी है - 'आठ आना जास्ती दो न !', मेरे कूं मांगता है ।'[३२] 'मरा नासीर फुटा...बाजू वाला माउशी गरम चीज खाने को मना किया है'[३३] 'सुनंदा छोकरी की डायरी' में मुंबईया हिंदी आयी है । उदा.- 'आज मैं कितने सुब्बे-सुब्बे उठ गई । खुशखुश बाल बनाया । पीला रिबन बाँधा । माँ के काम वाली बाई का दिया फ्रॉक पेना । बाहर आई तो बाजू वाला करीम काका मेरे कू देखके भोंपू का माफिक हँसता था । हो-हो, सुनंदा छोकरी । ये मइ क्या देखता रे - इस्कूल

का लाल रिबन नहीं, नीला स्कट नई । आठ बजे का बदले सात बजेइच तू चमचम फिराक पेन के तैयार.....आज इस्कूल में फंक्शन होता क्या रे ? मइ सऽब समजता...तेरे को बाख्शीश मिलता न ? तबीच तो तू खुशी के मारे मेरे से पाव पन लेने को नई आई...'[३४] इसी तरह काम करनेवाली सुनंदा कहती है – 'अब्मी तो मैं अक्खा काम शीक गई । कुतरा को पन घुमा के लाती । उसका बाल बनाती, बाथ देती । उसकूँ अंडा उबाल के खिलाती । कुतरा पन खूब मस्त । कपास का गुल्ला सरीखा । मेरा ऊपर लोटता, पोटता, मेरा गोदी में सिर रखके सोता । एकदम शंबू सरीखा। मैं कुतरा को अंडा देती न तो मेरे कूँ शंबू का याद आता । उसको पन अंडा खूब पसंद । पन उसकू किदर मिलता ? एक बारी करीम काका खिलाया था, तब से कितना पूछता, नंदा ! करीम काका को पूछ न – कब अंडा देगा ? मैं हँसती – करीम काका अंडा नहीं देता, मुर्गी अंडा देती – खी –खी–खी–खी ....'[३५]

'नीली थैली वाला पैराशूट' में आया की भाषा मुंबईया है – 'हमारा सोना बेबी, चांगली बेबी।'[३६] 'सिंड्रेला का स्वप्न' कहानी में इस तरह की भाषा के कई सारे उदाहरण मिलते हैं – 'तुमको काम करने का वास्ते एक छोकरी माँगता था न, रको इस छोकरी को ।'[३७]

'अब्बी मेरे को कुछ नहीं आता, अभी तो मैं फोकट में पगार लेगी ।'[३८]

'हाँ, मैं पढ़ेगी । पढ़ेला होने से मैं भी तुम लोग जइसी हो जाएगी न ।'[३९]

५.१.२३ भावानुकूल भाषा

आज विज्ञान एवं संगणक के दिनों दिन होते विकास की दुनिया में लोगों का जीवन जटिल बनता जा रहा है। इससे लोगों के व्यवहार में क्लिष्टता आने लगी है और इसका प्रभाव उसकी भावनाओं और विचारों पर होने लगा है, इसलिए अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करना सहज काम नहीं है ऐसा महसूस होने लगा और अपने विचारों एवं भावों को सही रूप

से अभिव्यक्त करने के लिए उसने अनेक तरह के विराम चिन्ह, कोष्ठक, डॉट, आवाजें जैसी बातों को अपनी भाषा में स्थान दिया । इसी तरह अपने भावों की सही अभिव्यक्ति के लिए सूर्यबाला ने भी कोष्ठकों में संकेत दिए हैं, जैसे – 'सुबह के इंतजार तक' उपन्यास मे अपनी माँ के बारे में मानू लिखती है – 'सबसे बड़ी विड़ंबना यह कि जिन लोगों पर माँ अपनी यह छवि उकेरने की कोशिश करतीं (अनजाने ही सही), वे सब इन सारे रहस्यों से नितांत अपरिचित और पूरी तरह उदासीन थे ।'(६०) 'यामिनी कथा' में यामिनी कहती है–'लेकिन वहाँ पहुँचने तक नैपी बदली जा चुकी थी और चुनचुन पूरी तरह जग गया था (निखिल की मुखमुद्रा के हिसाब से तुरंत नैपी न बदलने के कारण) और अब बहलाया, पुचकारा, दुलारा जा रहा था ।'(६६), यामिनी सोचती है – 'मेरे पास अपनी जमीन का भी तो हाथ भर का ही सही, एक टुकड़ा होना चाहिए, जहाँ मेरी इच्छाएँ (अधिकार न सही) अपनी थिगलियों में ही सही, दो घड़ी को सुस्ता सकें ।...........दरअसल इस जैसी ऊसर, बंजर टुकड़े की तरफ तो कोई आँखें उठाकर देखता भी नहीं (निखिल की तो बात ही क्या !) लेकिन अपने टुकड़े के विस्तार की कल्पना और योजना तो खुद इसी की थी, वही छोटे-छोटे अपरिमित लोभ...ग्रीड...'(१००) 'सुबह के इंतजार तक' में बुलू कहता है –'शायद मेरी कोठरी का पूरी तरह अनौपचारिक, अपनत्व भरा माहौल ही उन्हें खींचता था । यहाँ तक कि कभी चाय, दूध या वनस्पति न होता (और चारों की तबीयत पराँठे के लिए मचलती होती) तो दीदी सीधे-सीधे हँसती हुई डिब्बा आगे कर देती ।'(१५३) 'सुबह के इंतजार तक' उपन्यास में मानू लिखती है–'बस कुछ ही महीने और फिर तेरी (मेरी भी कह ले)साधना पूर्ण होगी ।'(१६२) 'दीक्षांत' उपन्यास में शर्मा सर कहते हैं – बाकी लेक्चर शांति से चला । (समय ही कितना बचा था) लेकिन मस्तिष्क झंझावातों के बीच बुरी तरह झकझोर उठा था।'(७) शर्मा सर सोचते हैं – शायद इस साल कोई चमत्कार हो ही जाये । प्रिंसिपल राजदान मैनेजिंग कमेटी में उनके नाम की पैरवी कर ही दे । (चमत्कार होते नहीं क्या दुनिया में !) उसी

तरह जिस तरह पिछले वर्ष अप्रैल में छटनी की नोटिस नहीं थमायी' ।(८) सूर्यबाला ने अपनी कहानियों में भी इस तरह की भाषा का उपयोग किया है । 'साँझवाती' कहानी में इसका प्रयोग बहुत प्रभावी रूप से हुआ है – 'अरी तो रोटी क्या सिर्फ रोटी खाने को कैते है ? अब्मी तो कित्ती सारी चीजें हैं रोटी के नाम पर ...'(होंगी पर तुम्हें तो रोटी का स्वाद हमेशा रोटी में ही आया, या फिर कुरकुरे पराठों में)[४०] 'साँझवाती' कहानी में तो दुख की गहराई को कोष्ठक के माध्यम से व्यक्त किया है-

" वह तो कबाड़ों से अँटा पडा है..."

'इतना नहीं कि एक कबाड़ और न आ सके ..."

रुंधे गले का सैलाब होठों ने भींचा, सम्भाला ।

(यह पूरे कुटुंब का सरताज सामानों से अँटे स्टोर में !)[४१]

सूर्यबाला की अनेक कहानियों में भी यही प्रवृत्ति नजर आती है, जैसे 'मुंडेर पर' कहानी में नायिका क्रोधित होकर कहती है –' रोशनी के गोल दायरे में समाधिस्थ चेहरा जादू की तरह गायब । नींद उचट गयी न । (तुम्हारा क्या गया !),[४२] 'साँझवाती' कहानी संग्रह में 'सुमिन्तरा की बेटिया' में उसकी दोनों लड़कियाँ, पियरिया और झुमरिया अपने टटरे में आकर इत्ती खुश हो गयीं जैसे दीवानेखास में पहुँच गयीं हो – और मारे खुशी के (यों भी, मुझे भी अपने टटरे में आया देख) ज्यादा लड़ने-झगड़ने और दुलराने लगीं'(१६), 'विजेता' में 'जब भी माँगो-.... " हाथ बडा तंग है इधर (जैसे छोटे-बड़े की सगाई और विलायत का खर्चा मेरी ही पगार के बूते चलता हो)(२५), वही तोता रटंत कि इकट्ठे लेके जाना । ऊपर से खड़ूस बूढ़ा वैद, जब तक जगे, दम लगाके मालिश कराये (आधा दम तो मेरा निकाल ले)

(२५), तो क्या मैं समझता नहीं ? सोचते होंगे, गया तो भला(हजारों की पगार मार लेंगे मेरी) और न गया तो.. (सारी उमिर गरम फुलके सेंक के खिलाता रहेगा)(२६),

'गजानन बनाम गणनायक कहानी में ये भाव अपने आप में व्यंग्य लेकर उतरे हैं – 'पर उतना साथ भी कहाँ, तुम उतनी नीचे ट्राली में, और मैं यहाँ ऊपर वैन में"– (शिष्टाचार ने गणपति को यह कहने से रोक दिया कि कहाँ राज भोज, कहाँ..) ।'[४३]

"यहाँ जो मेरे पास तीन-चार गृहस्थ सोते हैं न, उनमें से दो के पास मोबाइल है । देखते ही मुझे आपकी बात याद आ गयी सोचा आपके पास तो मोबाइल होगा ही होगा । (गणनायक ने मन ही मन सिक्योरिटी गार्ड के मोबाइल का आभार माना कि इज्जत बच गयी ।)[४४]

'कंगाल' कहानी में मजबूरी का भाव उतर आया है – 'सुनते ही दीदी ने जल्दी से आकर उन्हें डपटा – 'आते ही तंग करने लगे ! मामाजी जरूरी काम से गए थे । उन्हें इतना टाइम कहाँ था ।'(काश, इंदु दीदी कह पाई होतीं – 'उनके पास इतने पैसे कहाँ थे !'),[४५] 'इसके सिवा' कहानी में बोरियत का भाव उतर आया है – 'अखबार में कुछ नयापन न लगने पर (क्योंकि वह उसे सुबह ही पढ़ चुके हैं) चुपचाप उठकर उधर अपनी चप्पलें ढूँढ़ने लगते हैं।"[४६] 'रमन की चाची' कहानी में अपनी माँ की चालाकी और चाची के प्रति प्यार की भावना से लिखा गया यह वाक्य है – 'गंदी रूमाल भी अम्मा झटपट धोकर सुखा देतीं । (जबकि पसीने से भभकती कमीज, बनियाइनें, तौलिए, पैंट, कमीजें सब चाची धोतीं)'[४७]

आधुनिक कथा-साहित्य में आधूरे वाक्यों और अस्पष्ट संकेतों व्दारा भावों को उजागर करने का अभिनव प्रयोग रचनाकारों व्दारा किया जा रहा है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के माध्यम से इस प्रकार के प्रयोगों को बल मिला है । भावनाओं की गहरायी में खोये हुए पात्र जब अपनी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं तो अधूरे वाक्यों और अस्पष्ट संकेतों के माध्यम से कुछ न कह्कर भी बहुत कुछ कह जाते हैं । अपने पात्रों की अनुभूति की अभिव्यक्ति में

स्वाभाविकता लाने के लिए रचनाकार अपनी कृति में अस्पष्ट ध्वनियों और अधूरे वाक्यों का डॉट लगाकर प्रयोग करते हुए मिलते है । सूर्यबाला एक संवेदनशील कथाकार है, इसलिए उनके कथा साहित्य में पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण आना स्वाभाविक है । उन पात्रों के स्वभावगत वर्णन में स्वाभाविकता लाने के लिए कई बार अधूरे वाक्यों और अस्पष्ट ध्वनियों का उपयोग उन्होंने किया हुआ मिलता है । 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में ऋचा के माध्यम से शिवा का वर्णन करते हुए लेखिका लिखती है, 'अचानक लगा, मेरे बालों पर फिरती उनकी हथेली चौंककर रुक गयी हो । दरवाजे के पास सरसराहट सी लगी, जैसे एक जोड़ी आँखें दरार से झाँक रही हों । फिर जाने क्या हुआ कि हथेलियों को जैसे इलहाम आया हो, वे चलती रहीं.....चलती रहीं....'(४),"मेरा नाम क्यों जोड़ दिया आपने ? आपके बिजनेस वाले आदमी हैं । मैं भला...."(२६) "उस रात जब जब रत्ना कुलबुलायी, मैं जगकर आँखें भर भर उसे देखती रही । फिर बहुत हौले से उसे अपनी छाती में समेट, उसके खूब मुलायम रेशमी बालों में उंगलियाँ फंसा बुदबुदाती रही, "रत्ना...रत्ना...र..त्नेऽऽऽऽ श...."(७४) इन वाक्यों से शिवा की भावनाओं का वर्णन मिलता है ।

'दीक्षांत' उपन्यास में शर्मा सर आशान्वित होकर कहते हैं – 'राहत ! राहत !! राहत !!! अचानक उन्हें लगा, शब्दों में कितना बल है । इन शब्दों के पंखों पर वे कितने हल्के हो आये हैं ...'(६)

'अग्निपंखी' उपन्यास के अंत में बिमार माँ की स्थिति को मार्मिक बनाने के लिए लेखिका ने इसी प्रकार का वाक्य लिखा है – 'सऽऽब डूब रहा है । सऽऽब डूऽऽब ...रऽऽहा है....'(८१)

'सुबह के इंतजार तक' उपन्यास में मीनू को मामी व्दारा बताए जाने वाले कामों के बारे में लेखिका लिखती है– 'मानू ! पिंकू के लिए एक बाबा सूट सिल दे; आज कचौरियाँ बना ले; मेरी यह साड़ी कब की अधूरी पड़ी है– पूरी कर दे.... इस रेडियो के लिए एक नया कवर

सिल दे; सर्दियाँ आ रही हैं, मामा के लिए एक पूरी बाँह का स्वेटर........'(६४) बुलू अपनी बहन को पैसे के इंतजाम के बारे में समझाते हुए कहता है – 'पैसे हैं मेरे पास – हफ्ते, दस दिन भर को.....और फिर गिराज तो हर शहर में होते होंगे, दीदी ! वहाँ भी कोई-न-कोई गिराज मिल ही जाएगा...... फिर कुछ दिनों बाद तो तुम भी....." वह कहते-कहते हिचका, "तुमने कहा था न – फिर हम दोनों मिलकर......."(११२)

'दीक्षांत' उपन्यास में ऐसे बहुत अधूरे वाक्य मिलते हैं जिनके माध्यम से भावों को व्यक्त करने की कोशिश लेखिका ने की है । बच्चों की उद्दंडता से परेशान शर्मा सर चीखकर कहते हैं – 'खाऽ ऽ मो ऽ ऽ श...'(५७) अंतीम समय में बीमार शर्मा सर की पीड़ा को व्यक्त करते हुए लेखिका लिखती है – आँखों में गीलापन उतराया और होंठ बुदबुदाये, वि ऽ ऽ न ऽ ऽ य ऽ ऽ बि ऽ ऽ ल्लू ऽऽऽऽऽ....'(१०१)

सूर्यबाला की कहानियों में भी अधूरे वाक्य एवं विराम चिन्हों व्दारा बहुत कुछ कहने की कोशिश हुई है । जैसे 'मुक्ति पर्व' कहानी में सुशांत एवं माधवी की व्यथा को व्यक्त करने के लिए लेखिका ने अनेक चिन्हों का उपयोग किया है । जैसे –"तो....तो....संदीप ठीक कह रहा था..."[४८] "बहुत थका हूँ माधवी......अब सोऊंगा....."[४९]

"भाभी ! गजब हो गया......दैट बास्टर्ड .....दैट सन ऑफ ....हैज एक्सपल्ड...."[५०]

'विजेता' कहानी में आश्चर्य व्यक्त करते हुए आया है – "क्या ऽ ? क्या ऽ ऽ ? क्या ऽ ऽ ऽ ऽ !"[५१]

'अठारह वर्ष बाद' कहानी में माँ के आश्चर्य को व्यक्त करते हुए लिखा है – 'आह, ...वे शैतानियाँ....और ये आँसू...यह पत्थर-सा निष्ठुर, कभी माँ का, हाल तक न पूछनेवाला उद्दंड रो भी सकता है क्या ?'[५२]

'व्यभिचार' कहानी में हँसी की आवाज इस तरह से आयी है –'खिक्–खिक्–खी–खी–खी–खी'[४३]

५.१.२४ पात्रानुकूल भाषा

सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य में पात्रों के वर्ग, आयु, वातावरण, प्रसंग आदि के अनुकूल भाषा का उपयोग किया है । 'यामिनी कथा' में छोटे पुतुल और विश्वास के बीच हुए संवाद का यह उदाहरण देखा जा सकता है –

"यामिनी ! आज तो तो भई दोसा खाने चलना है ।'

'शोशा पपा ?'

'और चॉकलेट, आइसक्रीम भी खाई जाएगी ।'

'छण्पूछं ममा ?'

तुम क्यों उछल रहे हो ? तुम्हें कौन ले जा रहा है ?'

कों ? कों पपा ?' (क्यों पपा ?)

'इसलिए कि तुम्हारी टीचर कहती हैं, पुतुल गंदा बच्चा है ।'

'दुत्ता पपा !' वह उछलकर हँसता, 'चीचल तो कैती है – कुट–कुट बवाय' (क्यूट गुद बॉय) ।(४७)

'माय नेम इश ताता' कहानी में भी ताता के तुतले बोलों के अनुरूप भाषा आयी है । उदाहरण के लिए ताता और दादी के संवादों को देखा जा सकता है –

'दादी, तुम कौन ओ ?'

'अपनी ताता की दादी और तुम्हारे पापा की मम्मी ।'

'तुम मम्मी ओ ? फिल तुम ऑफिस चली जाओगी ?'

'नहीं, मैं नहीं जाऊँगी ऑफिस ।'

'क्यों ? मम्मी लोग तो सारे दिन ऑफिस में रैती हैं ।'

'हाँ, लेकिन दादी लोग ऑफिस नहीं जाती ।'

'फिल तुम घम्में (घर में) क्या कलोगी ?'

'मैं ताता के संग खेलूँगी ?'[५४]

सूर्यबाला की 'मटियाला तीतर' कहानी में भी पात्रों के अनुरूप भाषा का प्रयोग हुआ है । गाँव से शहर में आया हुआ देबू अपनी मालकिन से बातें करते हुए अपनी बोली का प्रयोग करता है और उसकी मालकिन शुद्ध हिंदी का ।

"हमारे याँ लुगायाँ रोटी मणाती हैं, मरद नई । हमारी रोटी में इत्ता टाइम भी नई लगता । मेरी माँ तो भौत जल्दी मणा देती है ये डब्बल, खरी-खरी रोटियाँ । वो तो कटरे से छोटी बाई को लिये-लिये ही लकड़ियाँ भी बीन लाती है । फिर मै जब तक बाई को खिलाता, फुसलाता हूँ वो चट से चूल्हे में लकड़ियाँ जोड़ रोटी तैयार कर देती है । हमारे ऐसी गैस नई होती । चूल्हे पे मणाती है मेरी माँ रोटियाँ । चूल्हा आप समजते हो ?"

"हाँ, जानती हूँ; लेकिन गैस तू कैसे जानता है ?"

जाणता हूँ । इन ठेकेदारनी की माँ के घर में देखी है । मैं तो एक और गैस भी जाणता हूँ। हमारे याँ बारातों में भी सिर पे गैस के हंड़े लेके चलते हैं । मैं, भैंरों, काड्या, उसकी माँ - सब लेके चलते हैं शादियों में ।"

"तू ढो लेता है ? वो तो बहुत भारी होता है ।"

"फिर क्या ? मेरी माँ तो एक बार चक्कर खा के गिरने वाली थी, तब मैंने ही तो उसके सिर का हंडा अपणे सिर ढोया ।"[५५]

इसके अलावा 'विजेता', 'सुखांतकी', 'सुनंदा छोकरी की डायरी', 'भुक्खड़ की औलाद' जैसी अनेक कहानियों में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है जिससे कहानियाँ यथार्थ के धरातल पर पहुँची है ।

सूर्यबाला ने पात्रानुकूल भाषा का उपयोग करते हुए अपने पात्रों की स्वभावगत विशेषताओं का ध्यान भी रखा है । कई सारे लोग 'डोमिनेटिंग' किस्म के होते हैं जो दूसरों से बातें करते समय दूसरों को बोलने का मौका ही नहीं देते, खुद ही बोलते चले जाते हैं । ऐसे पात्र भी सूर्यबाला की कहानियों में आये हैं । उनकी प्रवृत्ति के अनुरूप लेखिका ने भाषा का प्रयोग किया है । 'भुक्खड़ की औलाद' कहानी में इसका उपयोग इस तरह से हुआ है – बैजनाथ का परिचय देते हुए नायिका की माँ कहती है –'अरे अपने दातादीन का छोटा लड़का है बिट्टो ! तुझे दातादीन कोचवान की याद है कि नहीं ? अब तो रिक्शा खींचता है । क्या देख रही है ? लगता नहीं न दातादीन का बेटा यह ? लगेगा भी कैसे? कहाँ वह खाया-पीया गये जमाने का गठा शरीर....कहाँ यह भुक्खड़ की औलाद ! ....लेकिन दातादीन भी अब वह दातादीन नहीं रहा बिट्टो ? झूल-सा गया है...पूछेगी, क्यों ? अरे, यही बुढ़ौती और औलाद का दुख....

"पिछले हफ्ते जाने कहाँ से इतने सालों बाद घर का अता-पता पूछता पहुँच गया...और लगा तेरे बाबुजी के नाम की दुहाई देने.....पूछेगी क्या ? अरे यही कि इस बैजनाथ का कहीं ठिकाना लगवा दूँ, नहीं तो यह 'हठ्ठी' किसी नदी या पोखर में छलाँग लगा देगा ।"[५६]

'न किन्नी न' कहानी में भी इसका उपयोग हुआ है । किन्नी की मौसी लड़के से बातें करते हुए उसे बोलने का मौका ही नहीं देती – 'कौन ? बगल के कटरेवाली का ही भतीजा

है ? बैठो-बैठो । कहाँ पढ़ते हो? यानी साइंस से ? यानी कि रिसर्च ? मतलब इसके बाद डॉक्टर बन जाओगे न ? हाँ, समझती हूँ भई ! कहाँ मकान है ? कितने भाई-बहन हो ? अच्छा, पिताजी क्या करते हैं ? नहीं हैं ?...च्च...च्च ।'[४७]

'उत्सव' कहानी में - 'कौन ? तनेजा साहब ? दीपावली मुबारक आपको भी - अरे इसकी क्या जरूरत थी ? पर वाकई है बेहद खुबसूरत ! कहाँ से मँगवाया ? कटक से ? हाँ, चाँदी की नक्काशी तो वहीं की लगती है....अच्छा थैंक्स ! अरे खुल्लर भाई । यूँ बाहर खड़े दीपावली की मुबारक कैसी ? दो मिनट बैठिए तो - देखिए, इस फारमैलिटी की क्या जरूरत थी - मिठाइयाँ तो काफी थीं- रिंग, विंग नहीं चलेगी -आप तो जिद करते हैं । अच्छा जी - थैंक्यू वेरी मच ।

येस ? कहाँ से आए हैं ? ए.के. इंटरप्राइजेज से ? ओ. के. थैंक्यू । हैप्पी दीपावली टु यू आलसो.....

जी ? साहब ? साहब नहीं हैं...दीपावली का गिफ्ट ? थैंक्यू, नमस्ते । मगन भाई, आप हैं ? तो अंदर तो आइए - मैंने समझा कोई और है । ये बाई नई है न ! इसे क्या मालूम किसे अंदर आने देना है, किसे बाहर से टरकाना है... अरे नहीं जी, कृपा कैसी ? आप लोग तो इतने पुराने 'वैल-विशर' ठहरे, अब बताइए इतनी बड़ी-सी कीमती चीज आप उठा लाए । और नहीं कहूँ तो जानती हूँ आपको तहेदिल से दुख होगा । ऊपर से आप कहते हैं, भाभीजी ने अपने पैसे से खरीदी मेरे लिए....थैंक्यू-थैंक्यू अ लाट ।'[४८]

५.१.२५ सांकेतिक भाषा

भाषा एवं भावों में सौंदर्य लाने के लिए, कथ्य को नई दिशा प्रदान करने के लिए, भावों की सूक्ष्मता को अभिव्यक्त करने के लिए सूर्यबाला ने अपने कथा सहित्य में बड़ी सुंदरता से

सांकेतिक भाषा का उपयोग किया है । 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में यह भाषा पाठक को गुदगुदाती है और साथ ही नायिका शिवा के अचेतन मन का जायजा देती है । जैसे 'मम्मी की आँखें तब भी हँसती रहीं, हंसती रहीं - बहुत गहराई से ।'(५), मम्मी सचमुच खुब हँसीं, हंसते-हंसते चली गयीं....एक पहेली छोड़ कर...'(५), 'पर वह मुस्कान अथाह समंदर के ऊपर तैरती किश्ती सी लग रही थी...'(६), 'साथ तो बहुत कुछ रख दिया है, भाभी । बस, इतना बोझ ही संभल सकेगा मुझसे ?" (३७)' 'इसे फेंक दे । तारीखें बीत चुकीं । पेज अभी तक फड़फड़ा रहा है ।" (३८) "पहले कहा न, मेरे पास कोई आकाश नहीं था, लेकिन उस शाम पीली सिंदूरी किरनों से बुना हुआ पतंग सा नाजुक, एक आकाश का टुकड़ा मेरे हाथों में अनायास आ गया था । दुकान छोड़कर मैं कुछ क्षण को बहकी थी और लपककर वह पतंगी आकाश समेट लिया था ।"(७२) इन पंक्तियों से शिवा और रत्नेश के बीच के प्रेम भावों की ओर लेखिका संकेत करती है ।

सूर्यबाला की कहानियों में भी सांकेतिक भाषा का प्रयोग हुआ है । 'सुनंदा छोकरी की डायरी' कहानी में अनाथ सुनंदा के दुख को लेखिका ने इस प्रकार संप्रेषित किया है - " मैं चुंगीवाला इस्कूल में जाती । मेरी पैली वाली भानू टीचर मेरे कूँ आज देखी - वो मेरे को पेचानी तो प्यार से पूँछी - अरे, नंदा तू ? फिर पढ़ने को आई क्या, शाला में ?...मैं बोली - नई, झाडू देने को - खी..... अरे, मेरे हँसने को क्यों हुआ रे ? मैं कितना कोशिश किया पर हँसने को आयाच नहीं ।"[४६]

'कतारबंद स्वीकृतियाँ' कहानी में भावनाओं के जंजाल में भटकने वाली सिस्टर एंसी के मन का सांकेतिक भाषा में चित्रण किया है, उदाहरण है -"फिर, वे तेजी से म्यूजिक रूम में चली गईं । ढेर-के-ढेर स्वर प्यानो से उछालने लगी थीं । उन्हीं स्वरों की बौछारों में दूधिया बेतरतीब आवाजें झलकने लगी थीं । सिस्टर एंसी आँखें बंद किए उन बौछारों में छुपने के

लिए जगह तलाश रही थी ।...उँगलियाँ उच्छृंखल हो रही थीं । बार-बार लग रहा था...कहीं अनजाने ही धर्मगीत की ट्यून बजाते-बजाते 'मेरा जीवन कोरा कागज' वाली ट्यून न बज जाए, वैसे ही जैसे अनजाने उँगलियाँ माथे और कंधों को छूकर क्रॉस बना देती हैं...नहीं, नहीं...प्रभु ![६०]

सिस्टर एंसी का सिंधु के पिता के प्रति प्यार सांकेतिक रूप में प्रकट हुआ है -'और लौटकर डॉरमेटरी की सीढ़ियाँ चढ़ती मैं एकाएक रुक सी गई हूँ । मुझे लगता है मेरे कदम भी वैसे ही पड़ रहे हैं, वैसे ही बोझिल हैं जैसे उसके; तभी तो नीचे बैठे-बैठे भी मुझे लगता रहा कि वह ऊपर कमरे में अकेला कैसे, क्या कर रहा होगा ? सबकुछ मैं नीचे बैठी-बैठी अनुभव कर रही हूँ । उसके साथ बितता उसका हर पल मेरे अहसासों में डूबता जा रहा है और मैं हर क्षण अपनी जगह उसी से महसूस करती जा रही हूँ ।'[६१] 'न किन्नी न' कहानी में आकाश के प्रति आसक्त किन्नी में प्यार की वजह से आये हुए बदलावों को चित्रित करती है। कहानी में कहीं भी स्पष्ट रूप से यह जाहिर नहीं होने देती कि आकाश और किन्नी के बीच गाढ़ा प्यार है । लेकिन किन्नी के व्यवहार में आया हुआ बदलाव यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि वह आकाश से प्यार जैसी भावना रखती है । किन्नी महसूस करती है - 'मैं और ज्यादा सीधी और शालीन हो गई । चिंटू-मिंटू की आसमान-फाड़, जिदियाती चीखों पर खीझने के बदले मैं उन्हें पुचकारकर बहलाने-फुसलाने लगी हूँ । भाभी की अनखाती बुदबुदाहटों पर ध्यान न देकर खुद चौके में सारी रोटियाँ उतार खुशी-खुशी पढ़ने भी बैठ जाती हूँ । अब कहीं उद्विग्न, लस्त-सी पड़ी रहने के बजाय बिना मौसी के आए भी मेजपोश धो देती हूँ, पूरानी जिल्दों से धूल झाड़ देती हूँ । आँगन के एक कोने में लगी मालती की लता को तराशकर पानी डाल देती हूँ । कई बार मौसी की लाई रोजी की नाइटी काटकर मिंटू-चिंटू की फ्रॉकें भी बना देती हूँ । अलसाई, ऊबी, उद्विग्न किरन अब सुगंध के एक घेरे में तिराती रहती है ।'[६२]

'व्यभिचार' कहानी में भी नायिका का अपने पाठक-प्रशंसक के प्रति उपजा हुआ प्रेम और अपने पति के प्रति प्रतिबद्धता इस वाक्य से संकेतित होती है - "हाँ, शिखा जो हवा के साथ भभकती हुई बहकने लगी थी, अब दीये में जितना तेल है, उसी के साथ चुपचाप जलेगी !'[६३]

५.१.२६ चित्रात्मक भाषा

समकालीन कथा साहित्य में चित्रात्मक भाषा का प्रयोग बहुत अधिक मात्रा में मिलता है । साहित्य को पढ़ते समय साक्षात् उसका चित्र सामने खड़ा करनेवाली भाषा को चित्रात्मक भाषा कहा जाता है । सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य में चित्रात्मक भाषा का उपायोग कर पाठक के मानस पटल पर अनेक चित्र उकेरे हैं । जैसे -'यामिनी कथा' में निखिल बेपरवाही से कहते हैं, "अँ हाँ - और क्या- चुनचुन बेटे - सॉस - सॉस चाटेगा? ऐं ? देख, ऐसे ।' और उँगली से थोड़ी सी कैचप चुनचुन के गोल होंठों के बीचोबीच पोत देते हैं । चुनचुन अजीब खटमीठा सा मुँह बना होंठों से चुगलाता है, फिर खुश होकर चाटने लगता है ।'(१८) सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य को सजीव बनाने के लिए चित्रात्मक भाषा का उपयोग किया है । 'यामिनी कथा' यह दृश्य जीवित हो उठा है - ' पुतुल के जन्म के कुछेक महीने बाद । मैं पुतुल को नहला-सुखाकर पाउडर लगा रही थी कि घंटी बजी । व्यस्तता के बीच जाकर दरवाजा खोला ही था कि पुतुल ने अंदर के कमरे से जोर से किलकारी मारी थी; जैसे 'क्या कर रही हो, जल्दी आओ' और मैं उलटे पैरों अतिव्यस्त-सी वापस कमरे में आ गयी थी । वैसे ही जैसे घर का ही कोई आया-गया हो । पीछे-पीछे विश्वास एकदम बदले हुए घर, माहौल में । बेड, कपड़े, रैक, ऊपर-नीचे- हर कहीं पुतुल के कपड़े, खिलौने, छोटी तकिया, पाउडर, लोशन, पालना... समूचा घर पुतुल के कब्जे में । विश्वास कौतुक से देखते रह गए थे ।'(४१) सूर्यबाला ने अपनी कहानियों में भी चित्रात्मक भाषा का उपयोग किया है । 'गैस' कहानी में नायिका की परेशानी का शाब्दिक चित्र हम यहाँ देख सकते हैं - 'किचेन से सुन।

इस्तीफे के नाम पर उसकी नस-नस थरथरा उठी, बदन में आतंक की सुरसुरी-सी दौड़ गयी ।...पिंकी को बुला, चाय दो प्यालों में छान दी । एक प्याला उसके हाथ ही महेश के पास भेज दिया । दूसरा चुपचाप शांत होने की कोशिश में होठों से लगा लिया । लेकिन घूंट भर गुटकने के साथ ही अनायास दो बड़े आँसू प्याले में लुढ़क आये ।'[६४]

'गुजरती हदें' में घर का चित्र उभरा है - 'टैक्सी रुकी । बड़े भैया और मामा सामान निकालने में मदद करने लगे । मैंने भरपूर नजरों से इतने दिनों का छूटा घर देखा । अनजाने चौंक पड़ा - दस सालों पहले का वह रंग-बिरंगा, रँगा-पुता घर कैसा अधेड़-सा लग रहा था । पीतल के कुंडे ढीले हो झूल गए थे । मुख्य व्दार के ऊपर बैठाई गणेश की मूर्ति की सूँड आधी टूट गई थी । ढेर सी कुलबुलाती यादें कुंडे के साथ ही खटखटा गई । लेकिन दरवाजा खुलने के साथ ही पुरानी सीलन भरी गंध उन्हें उड़ा ले गई ।'[६५]

५.१.२७ तर्कनिष्ठ भाषा

अपनी बात को साबित करने के लिए और उलझी हुई मानसिकता को स्पष्ट करने के लिए सूर्यबाला ने इस तरह की भाषा का उपयोग किया है । सूर्यबाला संवेदनशील कथाकार होने के कारण उनके पात्रों को व्दंव्द के कई स्तरों से गुजरना पडता है ऐसे में निर्णय के समय कई बार बुद्धि भावों पर विजय पाती है और तर्क प्रस्तुत करने लगती है ऐसे समय इस तरह की भाषा का उपयोग दिखायी देता है । इसी तरह अपनी बात मनवाने के लिए जब इनके पात्रों व्दारा प्रयास होते हैं तब इस तरह की भाषा का उपयोग इनके पात्र करते हैं जैसे - 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में जब रत्नेश माथुर शिवा को अधिकार से अपने साथ चलने को कहते हैं तब दोनों के बीच हुए संवादों में इस तरह की भाषा के उदाहरण मिलते हैं -

शिवा- "जानते हैं, अधिकारों की सीमा बढ़ाकर आदमी अपना बोझ ही बढ़ाता है, उपलब्ध कुछ नहीं होता ।"

रत्नेश- "अधिकार नहीं दावा कह लीजिए, अगर आपको लगता हो कि छीन कर हथियाने की कोशिश कर रहा हूँ, लेकिन उपलब्धि की अपनी अलग अलग परिभाषा भी तो हो सकती है। एक के लिए जो कुछ नहीं, दूसरे के लिए वह बहुत कुछ हो सकता है ।"

शिवा- "फिर भी अधिकार और दावे भी वहीं आजमाये जाने चाहिए, जहाँ श्रम सार्थक हो । बंजर-बंध्या धरती पर की गयी कोशिश तो व्यर्थ ही..."

रत्नेश - "तो मैं धरती को नहीं, अपने पौरुष को दोष दूंगा । पर मुझे अपने पौरुष पर विश्वास है । देखूंगा, धरती का हठ जीतता है या मेरा पौरुष ।"(८३)

'चिड़िया जैसी माँ' कहानी में अपनी माँ को समझाते हुए नायक के माध्यम से तर्कपूर्ण भाषा का उपयोग किया है -'बस, यही तो तुम्हारी सबसे बड़ी भूल थी माँ ! एक माँ होकर भी तुम इतना नहीं समझ पायी कि माँ हमेशा एक ही होती है । माँएँ कई नहीं हुआ करतीं । तुम चाहे जितना लद लुटा डालो, बीस-बाईस वर्षों तक जन्मदायिनी माँ के साथ रही बेटी, हफ्तों-महीनों के अंदर किसी अन्य स्त्री को अपनी माँ कैसे मान बैठेगी ? सुनो और समझो माँ ! तुम किसी बहु के लिए दुनिया की सबसे अच्छी 'सास' भले हो सकती हो, माँ से बढ़कर हो सकती हो, लेकिन 'माँ' नहीं । इसी बात को उलटकर कहूँ तो 'बहू' को भी तुम, बेटी से बढ़कर भले मान लो लेकिन 'बेटी' नहीं हो सकती वह तुम्हारी ।'[८६]

५.१.२८ संगीतात्मकता

सूर्यबाला के घर में संगीत का वास था जिसका प्रभाव उन पर जरूर रहा है । कई तरह के रागों का ज्ञान वे रखती हैं । कई तरह के गाने, शेर, शायरी, कई भाषाओं के गाने, सूर, स्वर, आलाप आदि उनकी भाषा की विशेषता बनकर कथा साहित्य की भाषा में उतर आयी है । इतना ही नहीं बच्चों के लिए गायी जाने वाली लोरियाँ, खेल के समय गाये जानेवाले

गीत, चिढ़ाने के लिए इस्तेमाल किए जानेवाले गीत, संदर्भों के अनुसार अनेक हिंदी कविताओं की पंक्तियाँ, श्लोक, गढ़ी हुई कविताएँ, अनेक उत्सवों एवं पर्वों पर गाए जानेवाले गीत इसके अलावा अनेक तरह की आवाजें उनके कथा साहित्य में मिलती हैं जो उनकी भाषा को गरीमामय बनाती है और भाषा में एक अलग ही लय उत्पन्न करती है ।

'अग्निपंखी' उपन्यास में होली के अवसर पर गाया जाने वाला गीत आया है –'होली खेलें रघुबीरा अवध में, होली खेलें रघुबीराऽऽऽ'(२७)

'यामिनी कथा' में छोटे बच्चों के साथ खेलते हुए गाया जाने वाला गीत आया है – 'अटकन-पटकन दही-बताशे, इंटी-पिंटी ...'(१०४)

'सुबह के इंतजार तक' में 'इम्तहाए इश्क है, रोता है क्या...आगे-आगे देखिए होता है क्या!'(१४१)

'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में गालिब का शेर –'जान तुम पर निसार करते हैं, हम नहीं जानते वफा क्या है।'(८४)

'दीक्षांत' उपन्यास में सूर्यबाला ने अनेक काव्य पंक्तियों के संदर्भ भी दिए है जिनके जरिए संगीतात्मकता आयी है, जैसे – 'चींटी को देखा, वह सरल-विरल काली रेखा...!'(०६) 'विचार लो कि मर्त्य हो । न मृत्यु से डरो कभी । वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।'(१८), हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती, स्वयं प्रभा, समुज्ज्वला, स्वतंत्रता पुकारती।(१८) जैसी कविताओं का संदर्भ सामाजिक एवं राष्ट्रीय मूल्यों को प्रेरित करने के उद्देश्य से आया है।

'कपड़े' कहानी में रोते बच्चे को चुप करने के लिए गाया जानेवाला गीत आया है –

'कटोरी टूटी-जी एक कटोरी टूटी, मुन्ने की बहू रूठी, ओय मुन्ने की बहू रूठी ।

काहे बात पे रूठी, जी काहे बात पे रूठी - दही दूध पे रूठी जी दही दूध पे रूठी...'[६७]

सूर्यबाला ने अपनी कहानियों में भी अनेक कविताओं का संदर्भ आवश्यकता के अनुसार लिया है, जैसे- निराला की ये पंक्तियाँ -

'रवि हुआ अस्त, ज्योति के पत्र पर लिखा अमर,

रह गया राम-रावण का अपराजेय समर ।'[६८]

महादेवी वर्मा की पंक्तियाँ -

'साथ है तुम....बन सघन तम...

सुरंग अवगुंठन उठा गिन आँसुओं की रेख लेते

यह सजल मुख देख लेते-[६९]

तुलसीदास की चौपाई का भी उल्लेख मिलता है -

'ठुमुकि चलत रामचंद्र, बाजत पैंजनियाँ....

तुलसीदास अति अनंद, देख के मुखार बिंद

धाय मातु गोद लेत, दसरथ की कनियाँ'[७०]

चिढ़ाने के लिए इस्तेमाल किए जानेवाले वाक्य भी देखे जा सकते हैं जैसे - 'दीक्षांत' उपन्यास में अपने शिक्षकों को चिढ़ाते हुए विद्यार्थी तरह-तरह की आवाजें निकालते हैं, जैसे - 'कुकडू कू', ...हिन...हिन...हिन...हिन -दुर्र...दुर्र...दुर्र...'(५)' इसी में 'गंजू, मंजू की दूकान, कौआ ले गया पानदान ।'(७)

'दिशाहीन' कहानी में –'सीसी भरी गुलाब की, सीसा चटक गया ! जुम्मन मिया की दाढ़ी में चुहा लटक गया!'[७१]

'सौगात' कहानी में चुहे व्दारा की जानेवाली आवाज –'खट-खट...खुट-खुट...खुडक-खुडक...'[७२]

सूर्यबाला के घर में संगीत का वास था इसलिए उन्हें राग, ध्वनियों का ज्ञान है । इसी का प्रभाव उनकी कहानियों पर भी मिलता है । 'राग खमाज...सासा...रेऽऽ ममऽपऽनीऽऽसा.....नाथ अनाथन की सूध लीजो । होरी, फाग, धमार – हो जिन डारो रंग मानो गिरधारी मोरी बात...'[७३] सुबह गायी जानेवाली प्रार्थना की पंक्ति-'जागिए रघुनाथ कुंवर....पंछी बन बोले...'[७४] 'सौगात' कहानी की रेवती की इकहरी पायल की आवाज – 'छुनन....छुन....छुन'[७५]आदि का संदर्भ मिलता है ।

छायावादी कवियों के काव्य में जिस प्रकार संगीतात्मकता मिलती है उसी तरह सूर्यबाला की कहानियों में भी ध्वन्यात्मक शब्द आये हैं, जैस – 'टप टप टप' बारिश की बूँदें टपकती हैं

सूर्यबाला अपने कथा साहित्य के माध्यम से अपने पाठकों में ईश्वर के प्रति आस्था पिरोना चाहती है जिसकी वजह से उनके कई पात्र ईश्वर की प्रार्थना करते हुए नजर आते हैं । 'सुनंदा छोकरी का डायरी' कहानी में स्कूल के बच्चे प्रार्थना गाते हैं –'मझधार से तू कर दे बेड़ा पार – दुनिया के पालनहार....'[७६]

'गौरा गुनवंती' कहानी में गौरा की ताई प्रार्थना करती है- "करुनाऽऽ सिंऽधऽ जगत जस लीजेऽऽ, नाथऽ अनाथनऽ की सुध लीजे.....की सुध लीजे ।"[७७]

'कतारबंद स्वीकृतियाँ' में सिस्टर एंसी और बच्चे प्रार्थना गाते हैं –

'मुझे खुले आसमान के नीचे, अकेले बियाबानों में घूमना पसंद है
तुम शायद सोचो कि मेरा कोई दोस्त नहीं, लेकिन मेरा एक साथी है

जो पहाड़ों में, जंगलों में, बियाबानों में

हर कहीं मेरे साथ है.....

हाँ, हम कभी अकेले नहीं, ईश्वर साथ है...यह सच है, यह सच है कि प्रभु हमेशा हमारे साथ है ।'

'नेवर आयम अलोन, गॉड इज माय फ्रेंड । नेवर आयम अलोन... ।'[७८]

स्कूल में गायी जानेवाली प्रार्थना है - 'सद्धर्म है रक्षक परम, आचार उसका मूल है - निज धर्म को ही भूल जाना, यह भयंकर भूल है !'[७९]

'रमन की चाची' -'स्याम पैदल न चले साइकिलिया बिना... ।'[८०]

'दीशाहीन' कहानी में बच्चे प्रार्थना गाते हैं-

'पितु मातु सहायक स्वामि सखा

तुम ही इक नाथ हमारे हो,

जिनके कुछ और आधार नहीं

तिनके तुम ही रखवारे हो ।"[८१]

'मानसी' कहानी में प्रातःकाल किरण की माँ कंणा गाने का रियाज करते हुए प्रार्थना गाती है-

'यह प्रभाती ज्योतिधारा....

कर रही अभिषेक अर्चन -

प्रभु तुम्हारा आज वंदन -

आज वंदन - आज वंदन....'[८२]

आज हिंदी फिल्मी गीत बहुत प्रसिद्ध हैं । लोग उन्हें बड़े चाव से सुनते हैं । इनका उपयोग भी आवश्यकता के अनुसार सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य में किया है । जैसे 'कौमुदी :

एक प्रश्न' कहानी में 'तुम इतना जो मुस्करा रहे हो, क्या गम है जिसको छुपा रहे हो....'[८३]

'अनाम लमहों के नाम' कहानी में -

'संकेत मिलन का भूल न जाना

मेरा प्यार न ठुकराना.....

जब दीप जले आना.....आना...जब दीप जले आना ।'[८४]

'बांधो न नाव इस ठांव बंधु...

पूछेगा सारा गांव बंधु...'[८५]

'मैं जिंदगी का साथ निभाता चला गया .....

'गम और खुशी में फर्क न महसूस न हो जहाँ

न महसूस हों जहाँ - न महसूस हों जहाँ..

मैं दिल को उस मुकाम पे लाता चला गया....'[८६]

'उठ जाग मुसाफिर भोर भई अब रैन कहाँ जो सोवत है'[८७]

गढ़ी हुई कविता के उदाहरण को इस प्रकार से देखा जा सकता है -

'गणपट्टी । आवर वेरी होली डिट्टी । मदर पार्वटी, फादर शिवा । गणपट्टी बप्पा मोरया ।'[८८]

बच्चों के खेलते हुए गाए जानेवाले कई सारे गाने आज भी भारतीय समाज में मिलते हैं जिनका उपयोग सूर्यबाला के कथा साहित्य में मिलता है - 'इसके सिवा' कहानी में -

'हम-तुम गुँइयाँ, मछली की चुँइयाँ ।

अपने ऽऽ ब्याह में, बुलाना गुँइयाँ,

क ऽऽऽ ढी-भात खिलाना गुँइयाँ'[८९]

भूखा बच्चा घर आकर खाना माँगते हुए कहता है-

'अल्लिफ-बे अब्ब

माई खाना देगी कब्ब ?

बेटा पढ़के आइबे तब्ब... ।'[६०]

सूर्यबाला की कहानी में बँगला भाषा का भी उपयोग हुआ है जहाँ कई सारे बँगला गाने भी आए हैं । हिंदी के पाठकों के लिए लेखिका ने गानों के साथ कोष्ठकों में उसका अर्थ भी दिया है । 'हाँ, लाल पलाश के फूल नहीं ला सकूँगा' कहानी में बँगला गाने के साथ उसका अर्थ भी दिया है -

'पौषतोदेर डाक दियेछे आय रे

चोले आय, आय-आय....

डाला मोदेर भोरे छे आज पाका फेंशोले मोरी

आय, आय, आय-

अर्थ है - पूस का महिना बुला रहा है- आओ चले आओ, पकी हुई फसलों से हमारी डलियाँ भर गई हैं । आओ, आओ, आओ ![६१]

'आज धानेर खेते रौद्र छायार -

लूको-चुरीर खैला रे माई लूको चुरीर खैला

जाबो ना आज घरे रे भाई, जाबो ना आज घरे ।

अर्थ है- आज धान के खेत में धूप और छाँव लुका-छिपी खेल रहे हैं । आज तो घर नहीं जाएँगे रे भाई, आज तो नहीं जाएँगे ।'[६२]

एई कोरेछो भाले निठुर रे - निठुर रे ...

अर्थ है - यही अच्छा किया । निष्ठुर तुमने ....यह अच्छा ही किया ।[६३]

५.२ शैली

समकालीन दौर में अधिकांश रचनाकार मानव जीवन की घटनाओं को सजीव रूप में अपने साहित्य में प्रस्तुत करने की कोशिश कर रहे हैं । अपनी रचनाओं में कला के साथ-साथ यथार्थ को स्थापित करने के लिए उसने अभिव्यक्ति की अनेक पद्धतियाँ विकसित की हैं । सूर्यबाला ने उनके माध्यम से मानव के व्यक्तित्व एवं जीवन के संगठनात्मक और निर्माणात्मक तत्वों को विभिन्न कोणों एवं विभिन्न आयामों से विभिन्न रूपों में अपने कथा साहित्य में उभारने का भरसक प्रयास किया है । यह करने के लिए उन्होंने जो शैलियाँ अपनायी हैं, वह इस प्रकार हैं-

५.२.१ 'मैं' शैली

कथाकार कथा में कथा को आगे बढ़ाने के लिए एक तो नैरेटर बनता है या कभी वह 'वह' का प्रयोग कर कथा-सूत्र को आगे बढ़ाता है । जे. डब्ल्यू बीच ने आधुनिक उपन्यासों के बारे में कहा है, - "ज्यों-ज्यों उपन्यास कला का विकास हुआ है त्यों-त्यों उपन्यास लेखक की छाया कम होती चली गयी है । उपन्यास कला की प्रौढ़ता को प्राप्त होने का ही यह परिणाम हुआ है, कि अब यह मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के लिए कथा को श्रृंखलाबद्ध करने के लिए अथवा रहस्य के स्पष्टीकरण के लिए स्वयं उपन्यास के रंगमंच पर प्रकट होना आवश्यक नहीं समझता ।"[६४]

सूर्यबाला के कथा साहित्य में जिन शैलियों का प्रमुख रूप से उपयोग हुआ है उनमें से एक है 'मैं' शैली । इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

'यामिनी कथा' में - यामिनी कहती है - 'मैं नाश्ते की प्लेटें, प्याले, चम्मच हटाती टेबल साफ करने लगती हूँ। फिर शीशी, बोतलों, डिब्बों से भरे किचेन का प्लेटफॉर्म । और फिर कुछ लमहों के लिए अपने आप को एकदम फिजूल सा महसूस करते हुए किचेन के बीचोबीच खड़ी रह जाती हूँ ।'(२२)

'जेब्रा' कहानी में जेब्रा कहता है,- बाबू साहब देवता समान आदमी है भइया जी ! मेरी माँ बताती है और माँ को बड़ी बीबीजी ने बताया है । मैं तो सिर्फ कुन्नू बाबू के साथ खेलने के लिए रखा गया हूँ ।'[६५]

'इस धरती के लिए' कहानी पूर्णतः इसी शैली में लिखी गयी है । 'मुझे मालूम है, आप मेरी आवाज सुनकर चौंक जाएँगे ।... आप क्या, आज के इस सभ्य, सुसंस्कृत, तार्किक और वैज्ञानिक समाज का कोई भी व्यक्ति विश्वास नहीं कर पाएगा कि इन संगमरमरी, गगनचुंबी, अतिशालीन, अतिसंभ्रांत अट्टालिकाओं के बीचोबीच, हरी मखमली घास के कोट-पतलून से लैस, यह लॉन अपने दुख - सुख, अपने आतम की कथा, कहना, बाँटना चाहता है । बहुत सारी असंभव चीजों को संभव कर दिखाने वाली ये वैज्ञानिक तकनीकें भी कभी स्वीकार नहीं पाएगी यह ।'[६६]

'एक लॉन की जबानी' कहानी में खुद लॉन अपने एहसास प्रकट करता है - 'मैं ? कोई मामूली शख्सियत नहीं हूँ । इस महानगर की सबसे धनीमानी और अत्याधुनिक बस्ती के बीचोबीच, अर्द्धचंद्राकार नहीं बल्कि अर्द्ध अंडाकार फैला, 'लॉन' हूँ मैं ।

तीनों तरफ एयरकंडीशनरों और 'रूफ गर्डनों' से लदीफँदी बिल्डिगें और चौथी तरफ अँगूठी के नगीने-सा स्वीमिंग पूल । इस सबके बीचोबीच, ठंडी बयारों लॉन स्प्रिंक्लर की फूहारों के मजे लेता खूब नरम गुँथमुँथी घासोंवाला, स्वस्थ, गदबदा, नहाया-धोया मस्त पड़ा रहता हूँ।'[६७]

इसके अलावा 'कात्यायनी संवाद' जैसी कई सारी कहानियों में इस शैली का उपयोग किया गया है ।

५.२.२ निवेदन शैली -

सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य में अनेक शैलियों का उपयोग किया है उनमें से एक है निवेदन शैली । अपने उपन्यास 'यामिनी कथा' में लेखिका लिखती है - 'अंतराल फिर पसरने लगेगा । निखिल थोड़ी देर संवादों के बीच समाए इस खोखलेपन को चुनचुन पर उड़ेलते ममत्व और उसकी किलकारियों से भरते फिर वापस अखबार उठा लेंगे ।

तुम चुनचुन की किलकारियों और बाकी चारों ओर फैली संवादहीनता की असहज स्थितियों के बीच उधार की मुसकान लिए बैठी रह जाओगी रह-रहकर चुनचुन को बहलाने के लिए चुटकी बजाती हुई ।

थोड़ी देर बाद पुतुल उठेगा - 'मम्मा, मैं चलता हूँ । अगले हफ्ते ही आज लाए पेपर्स साल्व कर जमा करने हैं और टेस्ट्स भी हैं ।'.........फिर निखिल उठेंगे - 'अच्छा भई चुनचुनजी, चलो, तुम्हारी आँख में दवा डाल दी जाए । तुम्हारी ममी को तो याद रह नहीं पाता ।' आगे का हाल खुद तुम्हारे शब्दों में-'(२२)

सूर्यबाला की कई कहानियों में यह शैली मिलती है । 'गैस' कहानी के आरंभ में इस शैली का उपयोग किया गया है -'शहर के एक छोर पर उसका घर है, दूसरे छोर पर गैस वाले साहनी का ऑफिस - और रिक्शा है कि उल्टी तरफ से आते तेज हवा के झोंकों के बीच तेज चल ही नहीं पा रहा ।'[६८] 'सुमिन्तरा की बेटिया' कहानी में इस शैली का कई जगहों पर उपयोग हुआ है । लेखिका लिखती है - 'वह अपने घर को 'टटरा' कहती थी । उसका घर था भी टटरा ही । अपने उसी टटरे के बीच से वह पैरों में मोटे-मोटे गिलट के कड़े-

छड़े और झाँझरे झमकाती आँधी-तुफान-सी आती और ओसारों में लगी धान-जौ की ढेरियाँ तथा ओखली-मूसल सहेज लेती । दो-चार मल्लाहिनें, नौकर और भी आगे-पीछे बैठते-उठते होते । वह सबसे हँसी-ठिठोली करती लगातार खिलखिलाती रहती ।'[९९]

'बिहिश्त बनाम मौजीराम की झाड़ू' कहानी में इस शैली का प्रयोग हुआ है - 'मौजीराम झाड़ू लगा रहा है । किसी सड़क, चौराहे या फटेहाल फुटपाथ पर नहीं, बल्कि डायमंड-टॉवर्स के विशालकाय कॉम्प्लेक्स में । एक तरफ कतार की कतार शोख, भड़कीले रंगोंवाली चमचमाती इंपोर्टेड गाड़ियाँ- और दूसरी तरफ डूप्लेक्स फ्लैटोंवाली डायमंड टावर्स की आलीशान, संगमरमरी इमारतें । बीचोबीच मौजीराम झाड़ू लगा रहा है । जैसे झाड़ू नहीं लगा रहा, तख्ते ताऊस से हीरे बुहार रहा हो । या फिर अपनी प्रेमिका के बाल सँवार रहा हो ।'[१००]

'उजास' कहानी की शुरुआत ही इस शैली से हुई है । लेखिका लिखती है - 'उतरी शाम, अपनी बेहद सँकरी-सी बालकनी में, चाय की खाली प्याली थामे खड़ी थी मारिया । सामने दूर, बस्ती पार, मलबे में तब्दील हुई झोपड़ियों के सन्नाटे में सूरज डूब रहा था । इस शहर का सूरज डूबता है यहाँ ! उगता कहाँ है, उसे नहीं मालूम । मारिया सिर्फ थकी या उदास नहीं थी । एक झुँझलाहट-भरी बेचैनी तारी थी उसपर....बेवजह । बिना बात ।

आज तो माँ ने सालन में रसा पतला होने की शिकायत भी नहीं की थी, न पिता ने दाढ़ों के दर्द का रोना रोया था ! सुबह-सुबह, उन दोनों के लिए गरम पानी का पतीला गुसलखाने में पहुँचाते हुए दूध भी नहीं उफना था । न नाश्ते के समय केतली से चाय छानते हुए टोस्ट जले थे । और तो और, भागते हुए ही सही, स्टॉप पर टाइम से बस भी मिल गई थी ।'[१०१]

५.२.३ पूर्वदिप्ती शैली

सूर्यबाला ने अपने सभी उपन्यासों में घटनाओं के वर्णन की एकरसता को तोड़ने के लिए इस शैली का उपयोग किया है जिसके माध्यम से पाठक पात्रों के अतीत से परिचित होता है ।

उनके सभी उपन्यासों के प्रमुख पात्र अपनी वर्तमान स्थिति का उद्‌घाटन करते हुए अपने अतीत का अवलोकन करते हुए नजर आते हैं । 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में ऋचा अपने अतीत में झाँककर कहती है - 'वह दिन मेरे शिशु संसार का महान पर्व था, जब पहली बार मम्मी को देखा था....रंगीन लट्टुओं की रोशनी में कंदील सी झिलमिलाती हमारी हवेली के सामने इंग्लिश बैंड की कतारें आकर रुक गयी थीं, अनार छूटे थे, बंदूकें दगी थीं और फूलों से सजी कार फाटक से होती हुई सदर दरवाजे तक रेंगती हुई रुकी थी ।'(३) 'सुबह के इंतजार तक' उपन्यास की तो शुरुआत ही इस शैली से होती है । जहाँ उपन्यास की मीनू अपने अतीत की कहानी कहती है - 'मेरा अतीत यानी जीवन का वह दायरा जहाँ हम सब - यानी माँ, पिताजी, बुलू, छोटा बिट्टू और मैं - मानू, अलग-अलग न रहकर बस एक उदास खामोश सन्नाटे में बदल जाते हैं ।

जाने क्यों अब भी, कल्पना में भी अपने अतीत के घर का कुंडा खटखटाने से पहले लगता है, उस घर पर कोई अन्याय करने जा रही हूँ । कुंडा खटकेगा तो दरवाजा एकदम से नहीं खुलेगा । पहले बुलू आकर दराजों से झाँकेगा, फिर वह माँ से फुसफुसाएगा । माँ जल्दी से झिल्लड़ पेटीकोट पर लपेटा दो हाथ का टुकड़ा फेंक, एक फटी पर धुली सी साड़ी पहनकर दरवाजा खोलेंगी, तब तक पिताजी तमाम छेदोंवाली बनियान के ऊपर धारीदार कमीज डाल लेंगे । बुलू कोने में पड़ी खाट की चादर खींच, मैले तकिए को ढाँक देगा - बस, कुंडा खटखटाने से खुलने तक हमारी गतिविधियों का यही क्रम रहता था ।'(८५) यह लम्बा उद्धरण निम्न मध्यवर्गीय स्थिति की दयनीयता को अनावृत्त कर देता है और साथ ही मीनू की मनोदशा की खिड़कियाँ भी खोल देता है । सूर्यबाला के कथा साहित्य के अधिकतर पात्र वर्तमान स्थिति से विराम लेकर अपने अतीत में विचरते हैं। 'सुबह के इंतजार तक' की मीनू अपने अतीत की कहानी काकी को सुनाते हुए स्मृतियों में खो जाती है - 'कि कैसे लाचार माँ ने मामा-मामी के साथ भेज दिया, कैसे स्वयं मामी की चतुराई उन्हें धोखा दे गई, कैसे

सामाजिक वर्ग-बोध के प्रति सजग माँ, मेरी स्थिति का कोई समाधान न ढूंढ सकी, उल्टे यह धक्का उन्हें ही धीरे-धीरे दलदल में फँसाने लगा और कैसे मुझे मेरी आत्मविकृति, माँ को उनकी भीरूता और ग्लानि से बचने के लिए बुलू मुझे लेकर एक रात इस अनजान शहर में भटकने के लिए आ पहुँचा'(२०)

'दीक्षांत' उपन्यास में जगह जगह पर शर्मा सर के चरित्र को स्पष्ट करने के लिए इस शैली का उपयोग किया गया है । इसी का एक उदाहरण इस तरह से है - 'विश्वास ही नहीं होता, ये वे ही हैं न ? वही यानी बला का फुर्तीला, तेज, चमकती आँखों वाला वह लड़का जो हाई स्कूल में मेरिट में था, इंटर में पोजीशन पायी थी, बी. ए. में आनर्स और एम. ए. में विश्वविद्यालय में दूसरी पोजीशन और जैसे किसी पुरानी फिल्म की ताजा प्रिंट चालू हो जाती है ।' इस तरह शर्मा सर बार-बार अपने अतीत में खो जाते हैं ।

''बधाई हो, भूषण !'

'कांग्रेचुलेशन, विद्याभूषण ?'

'वाह बेटा, सुनकर तबीयत खुश हो गयी, मास्टर जी की तपस्या सफल हुई, उनका नाम रोशन कर दिया तुमने, मास्टर साहब की यही दिली ख्वाहिश थी ।"(३३) इसी उपन्यास के परिशिष्ट में सूर्यबाला पूर्वदिप्ती शैली का उपयोग करती हुई लिखती है - 'कल रात जब विजयेंद्र इस दुःखद घटना का जिक्र कर रहा था तो अचानक मेरी आँखों में एक धुँधले अतीत का अक्स उभरने लगा । मुझे याद आया, कक्षा आठ की अनिवार्य संस्कृत पढ़ाने के लिए पिताजी ने जिन गुरु जी को रखा था, उनके साथ चमकीली आँखोंवाला, उनका छोटा बच्चा, 'भूषण' भी आया करता था । जो गुरु जी के कहने पर 'उत्तररामचरित' के पंक्तिबद्ध श्लोकों का भावभीना सस्वर पाठ करके सुनाया करता था । पिता जी उस अधतोतली कच्ची आवाज पर अभिभूत हो लेते थे । बहुत प्यार करते उस बच्चे को और अक्सर गुरु जी के

वापस जाते समय मुझसे अमरूद-आम तुड़वाकर 'भूषण' की जेबों और थैले में रखवा दिया करते...'(१२८)

सूर्यबाला ने अपनी कहानियों में भी पूर्वदिप्ती शैली का प्रभावशाली प्रयोग किया है । 'गौरा गुनवंती' कहानी के आरंभ में ही यह शैली मिलती है - "अचानक लगता है, अथाह वात्सल्य से भरे दो होंठ मेरी हथेलियों से चिपक गये हैं । हथेलियों पर पड़ी आड़ी-तिरछी वयस्क रेखाएँ धुँधली पड़ती जा रही हैं । सगई की चौतरफे हीरे वाली दमकती मेहंदी-रची नन्हीं-नन्हीं हथेली गुलाब-सी हो गयी है और उन पर वही होंठ ...उन होठों के ममत्व से रची ये मेहंदी की बेलें ... मैं छज्जे-आँगन, कहीं भी खेलती रहती, आवाज आती - कौन, बेटा मुझे सुरती खिलायेगी ? सब खेल में मस्त रहते, मैं धीरे-धीरे पहुँचती, ताई मेरी नन्हीं हथेली पर सुरती की शीशी उलट कर सीधी करती, फिर अपने दानों हाथों से हथेली मुँह तक ले जा सुरती फाँक लेती, धीमे-से मेरी हथेली चूम कर, हाथ ऊपर उठा कर इशारा करती-इत्ता बड़ा-सा हो जाये मेरा बेटा ! लाड़ में ताई के मुँह से अकसर ही 'बेटा' सुनती और अपनी गीली-सी हथेली को फ्राक में पोंछती शरमा कर खेलने भाग जाती।'"[१०२]

५.२.४ रेखाचित्र शैली

शाब्दिक चित्र को रेखाचित्र कहा जाता है । सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य में चरित्र के चित्रण में रेखाचित्र शैली का उपयोग किया है । अपने 'यामिनी कथा' उपन्यास में इस शैली का प्रयोग करते हुए वह लिखती है - 'चुनचुन कुनमुनाया तो आहिस्ते-आहिस्ते उसके बालों में हाथ फेरती रही । नन्हे-नन्हे, हलके भूरे-से नरम-नरम पतले बाल । पुतुल छोटा था तो उसके बाल कितने घने, काले थे - एकदम विश्वास के बालों की तरह। बाएँ कान के पीछे नन्हा सा मस्सा । विश्वास उसे देख-देखकर अनायास और गर्वित होता । भिंचे होंठों का रखाव भी विश्वास जैसा- और चीखता कितनी तेज था ।'(३८) लेखिका कैंसर से पीड़ित

विश्वास का रेखाचित्र खिंचते हुए लिखती है- 'एक महीने बाद जब उसने दरवाजा खोला था तो सामने विश्वास नहीं, विश्वास का सिमटा, सिकुड़ा आकार-सा खड़ा था, कांतिहीन, निस्तेज। वह खिंचा-रुँधा-सा शरीर झूल-सा गया था ।'(५०)

'जेब्रा' कहानी में जेब्रा का रेखाचित्र खिंचते हुए लेखिका लिखती है- 'वही चौड़ी, काली, सफेद आड़ी धारियोंवाली उसकी पसलियों से चिपकी हुई बांहदार बनियान, फटा-सा नेकर-बेतरतीब सन के गुच्छों से रूखे उलझे बाल, जरूर हमेशा की तरह ही लजियाता, खिसियाता-सा चला जा रहा होगा ।'[१०३] 'कपड़े' कहानी में चंदन का रेखाचित्र खिंचते हुए लेखिका लिखती है- बारह-तेरह साल का दुबला-पतला लड़का पीले, भदरंग चारखाने की झिल्लड़ कमीज और तमाम सारे खोंच लगा पाजामा पहने, दुबली साँवली हथेलियाँ जोड़े जाने कब से 'नमस्ते' जैसी किसी मुद्रा में खड़ा था ।'[१०४] 'कौमुदीः एक प्रश्न' कहानी में कौमुदी का चित्र खिंचते हुए लेखिका कहती है- 'कहाँ वह दुबली-पतली सी, रंग उधड़े सलवार-कमीज में हमेशा हँसने-हँसाने वाली चुलबुली लड़की कहाँ यह - भरी-भरी सिन्दूरी माँग, मंगलसूत्र, बिछुये और महावर रचे पैरें वाली सद्यः ब्याहता...'[१०५] 'भुक्खड़ की औलाद' कहानी के बैजनाथ का रेखाचित्र खिंचती हुई लेखिका लिखती है -'सिर से पैर तक....मटमैला उटंग-सा पाजामा और आधी बांह की झुल्ली-सी कमीज....सिर पर ढ़ेर सारे अधपके खड़े-खड़े बाल और उसके बीच दुबला, सूखा-सा चेहरा...और उस चेहरे के बीच से फूटी खिसियानी-सी हँसी ।'[१०६]

'हाँ, लाल पलाश के फूल नहीं ला सकूँगा' कहनी में लेखिका ने नायक के घर के आजूबाजू का शाब्दिक चित्र खिंचा है - 'वह सामनेवाला लाल, हरी मुंडेरोंवाला पुख्ता ईंटों का मकान, रंग-रोगन से चमकते दरवाजे, खिड़कियों के पल्ले, अलगनी पर सूखती रंग-बिरंगी छीटोंवाली साड़ियाँ और लाल अँगोछे, आँगन के पीछेवाली अँधेरी कोठरी, जिसमें व्दारिका साव चाँदी

गलाया करते थे । मेहराबदार खंभों और मोटे छड़ोंवाली खिड़कियोंवाला रामसहाय वकील बी.ए., एल-एल.बी. का मकान । साइनबोर्ड का एक सिरा बरसात में डोरी गल जाने से एक ओर को झूल सा गया है । फिर चूने-बजरी और पुरानी ईंटों की चिनाई से खड़ी की गयी स्काउट मास्टर रामलखन की कोठरी । इसके बाद एक-दो हवेलियाँ और अचानक मकान के नाम पर मलबे के ढ़ेर पर खड़ी दो पूरी और एक आधी ढ़ही कोठरियों को देखकर दृष्टि ठहर जाती है । धँसती सी छत और चिटकती पत्थर की पाटियों के बीच से अतीत का कोई टुकड़ा एकदम सामने आकर चिटकने लगता है ...दृष्टि बलात् पानी खाए, सड़े किवाड़ों को खटखटाने लगती है । फिर जैसे कोई उत्तर न पा टूटी ईंटों और मलबे में उग आई घास के ढ़ेर पर दिमक लगी खोखली धरनी और पत्थर की पटियों के बीच बनवारों सी विचरना चाहती है ।'[१०७] इसी कहानी में राखाल बाबू का चित्र खिंचती हुई लेखिका लिखती है - 'गौरवर्ण, उन्नत ललाटवाले राखाल बाबू आज भी उसी चौकी पर थे। जगह-जगह से सिले हुए कुरते-पाजामे में । चश्मे की एक कमानी धागे से बँधी थी । नीचे हैंडिल टूटा हुआ कप रखा था । रक्तहीन जर्जर शरीर और चेहरा टूटन और विषाद का एक 'स्टिल' मात्र ।'[१०८]

'जश्न' कहानी में बूढ़ी का वर्णन करती हुई लेखिका लिखती है - ' धोकर निचोड़े गए कपड़ों-सी काया ! झुर्रियों की थैली-सा चेहरा । भर माँग सिंदूर और झलर-मलर साड़ी में दुलहन जैसी शरमाए जा रही है । उमंग और उछाह समेटे नहीं सिमट रहा; मनुआँ हुलास से बेकाबू; बस, यह देह ही बेवफाई पर उतर आती है न !'[१०९]

'सुखांतकी' कहानी के नायक का चित्र बड़े व्यंग्यात्मक ढंग से खींचा है - 'यह तो वैसा कुछ फटेहाल दीखता भी नहीं - बाकायदा पैंट पहने हुए है, लिवड़ी-मुसी जरूर है, पर फटी तो नहीं न - और ऊपर से एक अदद चीकट कमीज भी । दाहिनी कलाई में अल्युमिनियम की

एक चेन भी 'जंजीर' फिल्म के पोस्टर वाली स्टाइल में झूल रही है । लो, 'स्टाइल' भी किसी हिरो से कम नहीं और पैरों में लतरी सी ही तो क्या - चप्पलें तो है न !'[११०]

'सलामत जागीरें' की माँ का चित्रण देखिए - 'वह पतले नाखूनी काले किनारे की सफेद साड़ी पहने, सफेद बालों को खींचकर पीछे छोटी सी जूड़ी बनाए, पोपले मुँह कुछ-न-कुछ बुदबुदाती इस देहरी से उस देहरी, इस आले से उस आले लगातार डोल रही है...अपने उसी कक्ष में, पृथ्वी की तरह निरंतर ।'[१११]

५.२.५ व्यंग्यात्मक शैली -

कथ्य को प्रभावशाली बनाने के लिए व्यंग्य एक सशक्त माध्यम है । स्वयं व्यंग्यकार होने के कारण सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य में जगह-जगह पर आवश्यकतानुसार इसका बहुत सर्जनात्मक उपयोग किया है । 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में शिवा के व्दारा बेटा न जनने के कारण अपने पोते के जन्म पर खुशी मनानेवाला उसका पति व्यंग्यात्मक लहजे में कहता है - "जन्म भर तो अपने बेटे का इंतजार करता रहा, अब बेटी के बेटे पर ही सोचा हौसला निकाल लूं ।"(४८) 'अग्निपंखी' उपन्यास में भी जगह-जगह पर व्यंग्य की चोट की गयी है। छोटको शहर से लौटी जयशंकर की माँ शारीरिक रूप से दुर्बल हुई देखकर कहती है - "लगता है, अफसर बेटे के साथ सहर बहुत घूमी । घूमते-घूमते दुबरा गई । हवा-पानी लगा नहीं । झटकी लगती हो । बहुत खाया अपच हो जाता है ।"५३) ये पंक्तियाँ छोटको का जयशंकर की माँ के प्रति व्देष एवं ईर्ष्या को उद्घाटित करती हैं ।

'दीक्षांत' उपन्यास में बहुत सारी जगहों पर व्यंग्य उभर कर आया है । बिसारिया कॉलेज एवं उसके प्रिंसिपल पर व्यंग्य करते हुए लेखिका लिखती है - 'इस टेबल पर उन इने-गिने धन्नासेठों की साहबजादियां हैं जिन्हें मेट्रोमोनियल के जरिये आये तमाम पैगामों में से अब तक कोई जंचा नहीं इसलिए एम.ए. पास करने के बाद बोरियत का जिक्र चलने पर

बिसारिया कॉलेज के प्रिंसिपल उर्फ 'राजदान अंकल' ने फौरन इंटरव्यू काल भिजवा दिया । इसी टेबल पर संपन्न घरानों की वे विदुषी गृहिणियाँ भी हैं... जिनके लिए घर अब बेहद ऊबाऊ संकरा-सा दायरा बनकर रह गया है और जो किटी पार्टियों, सोशलवर्कों और सामाजिक उद्धार की सारी जिम्मेदारियों का ठेका संभालने के बाद भी अपनी आइडेंटिटी की कलंगी संवारने के लिए बिसारिया कॉलेज जैसी संस्थाओं में बाअदब बुला ली जाती हैं ।'(२०) लेखिका ने आज के जमाने पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि -'दार्शनिक लहजे में कहूँ तो उसका सबसे बड़ा अपराध यही था कि उसने कुछ भी नहीं किया था यानी आमतौर पर स्कूल-कॉलेजों या किसी भी संस्था में टिक पाने के लिए जो हथकंडे अपनाये जाते हैं, उनमें से कुछ भी नहीं, कोई हथियार नहीं प्रयोग में ला पाया और फिर एक बात और समझ लो कराने और करने वाली बात आजकल पूरी तरह महत्वहीन हो चुकी है । अपराध और सजा के बीच कोई सीधी लिंक कहाँ रह गयी है... सब अपनी स्थिति पर निर्भर करता है...'(६०)

सूर्यबाला ने अपनी कहानियों में भी बहुत उत्कृष्ट रूप से व्यंग्य का उपयोग किया है । 'गजानन बनाम गणनायक' कहानी पूर्णतः व्यंग्यात्मक कही जा सकती है । गणेश चतुर्थी के अवसर पर गणपति की पूजा करनेवाले प्रमुख आराधक पर व्यंग्य करते हुए लेखिका लिखती है - 'प्रमुख आराधक का सम्मान 'टॉवर' के सबसे धनाढ्य सेठ और सेठानी को दिया गया था । सेठ जी पहली नजर में पचास-पचपन के, दूसरी नजर में साठ-पैंसठ और तीसरी नजर में एकदम पचहत्तर के लगते थे । गणनायक ने चौथी नजर उनपर न डाल, सेठानी की उम्र अंदाजने में लगा दी । सेठानी बड़ी सुघड़ तराशी काया वाली पैंतीस, चालीस की तन्वंगी थी । पत्नी भी सेठ जी की सिर्फ इसलिए लग रही थी क्योंकि सेठ जी, सोद्देश्य, लोगों के बीच उनकी तरफ देख कर पति सुलभ भाव से मुस्कुरा लेते थे और उन्हें अपनी पत्नी होना सिद्ध कर देते थे ।'[११२] और एक प्रसंग है- 'खुले अहाते में अब फास्ट म्यूजिक वाले कैसेट बज

रहे थे । सारे नौजवान, नौजवान बने अधेड़ और युवतियाँ बनी प्रौढ़ाएँ नृत्य कर रही थीं । लड़के-लड़कियों का झुण्ड तो इतने अजीबोगरीब ढंग से समूचे शरीर को झटक रहा था जैसे किसी उन्मादी व्याधि से ग्रस्त हों । गणनायक ने ऐसा नृत्य कभी नहीं देखा था, सुना अवश्य था कि उनकी पिता की बरात में, उनके गणों ने बड़े विकट हाव-भाव और मुद्राओं वाले नृत्य का कार्यक्रम प्रस्तुत किया था । क्या मालूम वे ही गण अपने स्वामी के पुत्र के महोत्सव में आ गये हों । लेकिन गणनायक को तो यह सत्य विदित होना चाहिए था ।'[११३]

और एक उदाहरण देखिए - "तभी लाउडस्पीकरों से आते तेज संगीत के साथ नृत्य स्पर्द्धा प्रारंभ हुई । हर बार कैसेट पर नया गीत लगने के साथ एक नयी बालिका मंच पर आती और तेज चलती धुन पर अपनी देहयष्टि को तोड़-मरोड़ कर ऐसे उच्छृंखल, अभद्र हाव-भावों का प्रदर्शन करती कि इंद्र के दरबार वाली रम्भा, उर्वशी भी लज्जित हो जायें । गणनायक स्तब्ध, विस्मित थे । अपने माता-पिता और परिचितों के समक्ष बार-बालाओं सी प्रणयातुर मुद्राएँ प्रदर्शित करने वाली छोटी-छोटी बच्चियों पर ...शिव...शिव...'......शिव-शिव यह कोई दूसरा लोक, ब्रम्हांड है । यहाँ भगवानों का सोचना प्रभावहीन होने लगा है और इनसानों ने सोचना बंद कर दिया है ।'[११४]

समाज में आनेवाले एवं भारतीय लोगों के जीवन में आनेवाले परिवर्तनों पर व्यंग्य करते हुए लेखिका लिखती है - 'वे लोग एक-दूसरे के प्रति अपने धर्म, कर्तव्य और एटीकेट्स, सामाजिक जिम्मेदारयों से पूरी तरह वाकिफ थे और इस फर्ज को निभाने के लिए 'बेस्ट विशेज, थैंक्यू, कंडोलेंस' आदि खुशी-गमी के हर मौके के 'कार्ड' बराबर एक-दूसरे को भेजकर अपनी शुभेच्छाएँ जाहिर करते रहते थे । यह काम बड़ी आसानी से हो जाता। साल-छह महीने में एक बार हर तरह के कार्डों पर अपने हस्ताक्षर करके रख दिए जाते और पूरे साल जरूरत के मुताबिक संबद्ध लोगों को भेजे जाते रहते । कभी घर के बड़े होते बच्चे,

कभी बीवियाँ या फिर थोड़े पढ़े नौकर, बचे समय में यह काम खुशी-खुशी कर दिया करते । समूह-भावना और परंपरा के निर्वाह की दृष्टि से क्रिसमस, न्यू ईयर या दीवाली 'ईव' भी मानाई जाती । उस शाम 'चंद्रा टावर' के टेरेस पर रंगबिरंगी बिजली की झालरें और दैत्याकार स्पीकर लगा दिए जाते । सबके इकट्ठे होने पर हार्ड और सॉफ्ट ड्रिंक सर्व हो जातीं । तरह-तरह के पार्टी-गेम्स खेले जाते । उसके बाद वेज-नॉनवेज खाने और जोक्स का दौर चलता, थोड़ी-बहुत शेरो-शायरी भी । फिर सारे मर्द शेयर मार्केट और सारी औरतें 'पार्लर' और 'बुटीक्स' डिस्कस करती लौट पडतीं । सिर्फ कम उम्र की युवा पीढ़ी सारी रात लेटेस्ट पॉप और 'हार्ड मेटल' की हंगामाखेज धुनों पर ब्रेक, शेक और रॉक का कहर बरपाती रहती ।'[११५]

'मातम' कहानी में मरणोपरांत किये जानेवाले क्रियाकर्मों पर व्यंग्य किया है -'महिलाएँ दान में दी जानेवाली चीजों की लिस्ट बनाने लगीं - पलंग, गलीचे, चादर, तकिये, अर्तन-बर्तन, साबुन-तेल, कंघी-शीशा, शाल-दुशाला। किसी ने जोड़ा -"ट्रे और नैपकिन भी ।...इतना बड़ा नाम था, एक सोने की अँगूठी भी दान कर दी जाती तो शोभा बढ़ती । तो लिखो न, उन बेचारी ने तो सब हमीं पर छोड़ा है । चाहे वजन में हलकी हो, पर भड़कीली दिखे । नाम बढ़ेगा, शोहरत होगी ।'[११६] सूर्यबाला की 'समापन', 'गुफ्तगू', 'दूज का टीका' जैसे अनेक कहानियाँ व्यंग्य से भरी पड़ी हैं ।

५.२.६ पत्र शैली

सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य में पत्र शैली का भी प्रयोग किया है । 'यामिनी कथा' उपन्यास में जहाज पर गए विश्वास के निर्देश भरे पत्र आते हैं -'मुझे खुशी है कि तुम्हें मन बहलाने और समय काटने के लिए अब एक माध्यम मिल जाएगा । बच्चे को लेकर तुम काफी व्यस्त हो जाओगी । इसलिए दूसरी व्यर्थ की चीजों में सिर खपाने और उल-जलूल

तर्क-वितर्क में उलझने के लिए समय नहीं रहेगा । जब, जिस चीज की जरूरत हो, माँ से कह देना । मुझे भी लिख सकती हो । किसी शिकायत का मौका मैं तुम्हें नहीं देना चाहता । बच्चे के लिए भी तो कुछ जैसा जरूरी समझो, ले लेना । पैसों के बारे में न कभी तुम्हारा हाथ पकड़ा है, न पकड़ूँगा...खूश रहो और मुझे भी खूश रहने दो.... मेरा खयाल है, एक बच्चे की माँ बनने के साथ ही तुम्हें मेच्योर भी होना चाहिए ।'३६) सुबह के इंतजार तक' उपन्यास में मीनू अपने भाई बुलू को पत्र लिखकर छोड़ती है 'मेरे भैया बुलू ! लगता है, मेरे जीवन का निर्णायक क्षण आ पहुँचा है । निर्णय क्या होगा, उसके लिए मैं उतनी चिंतित नहीं; लेकिन उस निर्णय को तू कैसे झेल पाएगा, यह मेरे लिए ज्यादा कष्टकर है । अस्पताल से बचकर लौट आयी तब तो यह पत्र तेरे हाथों पड़ने से पहले ही फाड़कर फेंक दूँगी; पर मान ले, इस पत्र की नियति तेरे हाथों खुलना ही हो तो ? और इतना बुद्धू तो तू है नहीं- ढेर सा समझाऊँगी तो कुछ तो तेरे पल्ले पड़ेगा ही ।..............मान ले, मुझे यह रोग नहीं होता, तब भी मेरी आयु तो यहीं शेष होती न! यही अहसास शायद मुझसे यह पत्र लिखवा रहा है ।'(१६२)

सूर्यबाला ने अपनी कहानियों में भी इस शैली का उपयोग किया है, जैसे 'मुंडेर पर' कहानी में नायिका को मिले हुए पत्र का संदर्भ आया है 'लेकिन उसके भी काफी दिनों बाद एक पत्र मिला... "पूरी जिंदगी में अपने अतीत का एक बहुत छोटा, अबोध टुकड़ा ही मैंने अपने नाम रख छोड़ा था....मैं.... अबोध इसलिए कि तब शब्दहीन था...सब कुछ बेनाम रह गया था...उस अतीत को कोई नाम दे सकूँ, इससे पहले ही सब छूट गया था । वह जालीदार खिड़की, वह छोकरा, वह चाबी और... और भी बहुत कुछ था जिनके लिए आज तक शब्द ढूँढ रहा हूँ... पर आपने कैसे जाना ? कल्पना यथार्थ भी पढ़ लेती है ?"[१७] 'दिशाहीन' कहानी में भी इस शैली का प्रयोग हुआ है । 'दिशाहीन' के नायक के पिता उसे पत्र लिखते है -'तुम्हारी राजी-खुशी का हाल मिला । यह जानकर अफसोस हुआ कि तुमने फिर पैसे मँगवाए हैं । मैंने

तुम्हें इतने दिनों घर के हालात के बारे में कुछ नहीं लिखा, न अब ही लिखता । लेकिन मजबूर होकर लिखना पड़ रहा है । तुम्हारे बड़े भाई अपनी औरत समेत अलग हो गए हैं ....जिस दिन से भाई अलग हुए हैं, तुम्हारी माँ सदमे से खाट पर पड़ गई हैं । कभी लड़कियों की शादी को लेकर, कभी तुम्हारी पढ़ाई को लेकर रात-दिन रोती हैं । कुछ समझ में नहीं आ रहा क्या करूँ । अपना समाचार देना ।'[११८]

'दादी और रिमोट' कहानी में भी इस शैली का उपयोग हुआ है । गाँव में रहनेवाली दादी के हितचिंतक उसके बेटे को पत्र लिखकर अपनी माँ की जिम्मेदारी सँभालने को कहते है - 'आगे समाचार यह है कि आपकी माँ को सहेर जाने के लिए हम लोगों ने राजी कर लिया है । अब आप फौरन से पेस्तर आओ और 'डायरीक्ट' लिवा ले जाओ । अपनी जमीवारी सँभालो । काहे से कि आप जान लो, उमिर और बुढ़ाया सरीर अब पूरी तरह पक के चू पड़ने को है लेकिन मानतीं फिर भी नहीं । टोल-पड़ोस का हेत-हवाल लेने, गिरती-भहराती हर कहीं पहुँच जाती हैं ।...दो-तीन मर्तबा तो ऊँचे-खाले लुढ़क भी चुकी हैं । अब मलहम पट्टी और डाक्टर-वैद का उतना सारंजाम हमारे बस का कहाँ ?

'और सहेर में जानो कि आपका आलीसान मकान, नौकर-टहलुए, सान-सौकत के सारे बंदोबस्त ।...तो आप जाँगर-पौरुष से थकी अपनी बूढ़ी माता की सेवा करके इहलोक, परलोक सुधारो और हम भी आपकी थाती आपको सुपुर्द कर गंगा नहाएँ । इसलिए चिट्ठी को 'तार' जानो और आकर उन्हें अपने साथ ले जाओ । इस बार वे जरूर चली जाएँगी ।...'[११९]

सूर्यबाला की 'चिडिया जैसी माँ', 'समापन', आदि कहानियों में भी पत्र शैली का उपयोग हुआ है।

५.२.७ आत्मालाप शैली -

सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य में पात्रों के विचार और उनके व्यवहार में स्वाभाविकता लाने के लिए आत्मलाप शैली का उपयोग जहाँ-तहाँ किया हुआ मिलता है । 'मेरे संधिपत्र' में शिवा अपनी स्थिति का आत्म-विश्लेषण करती हुई कहती है- "फिर कितना वरद मातृत्व है मेरा, कितना सुखद पत्नीत्व ! पत्नी की हर सुख-सुविधा का ध्यान रखने वाले, न जोर से दहाड़ने वाले, न ठठाकर हंसने वाले, दबी जुबान से माँ की हर आज्ञा शिरोधार्य करने वाले । दूसरी औरतों की तरफ भी हंसी मज़ाक तो दूर, आंख उठाकर देखना भी नहीं । बेहद सीधे, सुखी, आराम पसंद आदमी । नहीं, उन्हें कोई दोष नहीं दे सकती । शरीर और मन से जितने कुछ पर उनका अधिकार था, सब कुछ दिया था उन्होंने मुझे ।'(८१) उसके व्दारा अपने अचेतन मन के दरवाजे को बंद रखने की कोशिश से परिचित कराती हुई लेखिका लिखती है - "नहीं दुख भला क्या होगा..... दोनों बच्चियाँ अच्छी हैं नौकर चाकर भी मानने वाले.... बस । इसके बाद की सीमा में खुलने वाला दरवाजा बंद रहता । उस पर हमेशा एक तख्ती लगी रहती 'अन्दर आना मना है' कब उस दरवाजे को खोलकर कितना कुछ झाड़ती-बुहारती रही, कोई जान न पाता । कभी-कभी लगता, कहीं मम्मा की वत्सला दृष्टि उस दरवाजे की सांकल खट-खटा न दे । मैं सचमुच घबरा जाती । कभी-कभी हँसी भी आती कि देखूँ इस स्वच्छता अभियान के बाद इस कमरे में बंद क्या रहता है ।'(२८) 'यामिनी कथा' में तो यामिनी का आत्मलाप उसकी मानसिक स्थिति को उघाड़कर रख देता है। इतवार के दिन पुतुल और निखिल के बारे में सोचते हुए यामिनी कहती है - 'बनो मत। तुम्हें मालूम नहीं था कि आज इतवार है । पुतुल जान-बूझकर आज दिन भर पढ़ेगा, खूब पढ़ेगा । ब्रेकफास्ट के समय शुरू किया हुआ चैप्टर उसे खत्म करना ही होगा । फिर तुम्हें क्यों उसके बिना चैन नहीं पड़ पा रहा था ? क्यों सारी बेकली, सारी दयनीयता बटोर उसे बुलाने पहुँच गई थी, निखिल की तरफ से संकेत पाते ही ? तुम क्यों बेचैन रहती हो कि

पुतुल आए और किसी तरह संग साथ बैठे । और दोपहर को भी तुम्हें मालूम है, वह कॉरसपेंडेंस कोर्स का नया सेट लाने जरूर ही जाएगा । लौटते समय भी वह अपनी समझ से पूरी कोशिश कर शाम की चाय का समय बिताकर ही लौटेगा । लेकिन तुम जाने किस लाचारी के तहत उसका इंतजार करोगी, करती रहोगी । जान-बूझकर अपनी शक्ति भर चाय का समय आगे-पीछे खिसकाती रहोगी ।'(२०), 'दीक्षांत' उपन्यास में भी शर्मा सर की पीड़ा को व्यक्त करने के लिए सूर्यबाला ने प्रस्तुत शैली का बड़ी मार्मिकता से प्रयोग किया है । अपनी समस्या को सुलझाने के लिए प्रयत्नरत शर्मा सर को अचानक चंद्रभान सिंह की याद आती है और वे मन में कहते हैं - 'क्यों न चंद्रभान सिंह से ही अपनी दुश्चिंताओं का निवारण पूछें...चले जाते हैं एक दिन उनके पास.... कॉलेज में तो उनके पास मिनट भर बैठते ही अफवाहों का बाजार गर्म हो जायेगा एक-एक आँख में चार-चार आँखें उगाकर लोग देखे-अनदेखे का नाटक कर रहस्य भापने की कोशिश करेंगे । तो, चंद्रभान सिंह के घर भी तो जाया जा सकता है । कॉलेज में ही किसी दिन जरा अकेले में जाकर कह देंगे एक आवश्यक कार्यवश आपके घर आकर मिलना चाहता था । हा, घर पर ही मिलकर कहना ठीक रहेगा ।'(७७) शर्मा सर की मानसिक अवस्था का चित्रण भी लेखिका ने इसी शैली में किया है । शर्मा सर आत्मालाप करते हुए कहते हैं - 'ऐसा...ऐसा तो पहले कभी नहीं हुआ था ? कहीं मेरी समूची चेतना, समूचा वजूद अपना संतुलन खोता तो नहीं जा रहा है न...नहीं, मैं हूँ तो अपनी पूरी संज्ञा, पूरी चेतना के साथ... लेकिन सारे अर्धविक्षिप्त और पागल भी तो यही सोचते हैं कि वे पूरी चेतना में पूर्ण संतुलित हैं...'(९७) अपनी आत्महत्या की बात मन में आने पर स्वयं को समझाते हुए वह कहते हैं -'ठहरो विद्याभूषण ! कैसा समापन और कैसी यवनिका...तुम्हारे नाटक की करुणतम यवनिका तो गिरेगी नहीं, उठेगी तुम्हारे इस आत्मदाह के साथ.... सिर्फ बेगमबुर्जी से कूद पड़ने से ही तुम इस दुखांतकी का सुखद अंत कर पाओगे क्या ? क्या अब तक की संत-साहित्य शोध की परिणति यही होनी

थी।....चीख-चीखकर हृदय दहला देने वाली कुंती की चीखों में ।....विनय की भीगी कमीज की अस्तीन में ? बिल्लू की हिचकोले खाती सिसकियों में ?'(९९) 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में लेखिका ने कई जगहों पर इस शैली का उपयोग किया है । शिवा के आत्मकथन में इस शैली का प्रयोग करती हुई वह लिखती है - "कैसे इतनी असहज हो उठी कि शिष्टाचार की औपचारिकता निभाने में भी डर गयी । यह तटस्थता है या अतिसतर्कता? जो कुछ भी है, उसका कारण ? मेरी दुर्बलता ही न ! 'नहीं...' मेरा अभिमान चीख उठा । तब आखिर क्या है जो मुझे इतनी जल्दी असहज कर जाता है ?"(९५)इस तरह से सूर्यबाला ने प्रस्तुत शैली के माध्यम से अपने पात्रों के अनेक भावों को अभिव्यक्त किया है ।

५.२.८ चेतना प्रवाह शैली

इस शैली की विशेषता यह है कि कहानी में पात्र बार-बार अपने अतीत में झाँकता है और अपने वर्तमान में आता है । सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य में चेतना प्रवाह शैली का उत्कृष्ठ प्रयोग किया है । उनके उपन्यास 'यामिनी कथा' की शूरुआत ही इस शैली से हुई है, जो यामिनी की मानसिक अवस्था के उद्घाटन में सहायक हुई है- 'निखिल चुनचुन को बाँहों में झुलाकर जोर से उछाल रहे हैं- जैसे विश्वास पुतुल को - सालोसाल पहले । चुनचुन किलकारी मारकर हँस रहा है - जैसे सालोसाल पहले पुतुल किलकता था !'(१७) पूरे उपन्यास में यामिनी का अतीत उसके वर्तमान जीवन को असहज बनाता है । यह दिखाने के लिए उपन्यास में जगह-जगह पर चेतना प्रवाह शैली का सर्जनात्मक उपयोग सूर्यबाला ने किया है । 'सुबह के इंतजार तक' में बुलू कहता है -'बस कभी-कभी ही ऐसा होता है कि एक अजीब पहचानी सी कचोट मेरे अंदर तड़पने लगती है। मैं अपने को सँभाल नहीं पाता । अब भी 'दीदी' कहकर तकिए पर औंधा पड़ा सिसक उठता हूँ । आँखें जोर से भींचकर दीदी को अपने आसपास महसूसने की कोशिश करने लगता हूँ । लेकिन अपने अंदर का यह कोना कैसा ही उजाड़ साँय-साँय करता रहता है । अब और भी खाली लगने लगा है, जब

दूसरी जगहें भरी-पूरी खुशनुमा हो गई हैं । यह एक उजाड़ सन्नाटा.... कैसे एकदम देखते-देखते दीदी मेरे हाथों से छूट गई - कहीं मैंने अनजाने ही सही, उसे छूट तो नहीं जाने दिया। सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा था मेरी अपनी नजर से। जान ही नहीं पाया कि दीदी अंदर-अंदर थक रही है ...

उसने मुझे हमेशा अपनी पीड़ा, तकलीफों से दूर रखा । मेरे सामने हमेशा हँसती रहती थी।'(१५१)

सूर्यबाला ने अपनी कई कहानियों में भी इस शैली का उपयोग किया है । 'कतारबंद स्वीकृतियाँ' कहानी में इसका उदाहरण देखा जा सकता है - 'अचानक समाधी टूट जाती है, उँगलियों के पकड़ में आ गए स्टील की चेन से लटकते क्रॉस ने ही मुझे उस सम्मोहन जाल से मुक्त किया, यह सब तो कभी सच नहीं था प्रभु! सच इतना दुस्साहसी कैसे हो सकता है कि वह हठीला विश्वम् परिणय का मंगलसूत्र लिये मेरी समाधि के मंडप में आ जाता है । सच तो यह अतीत था, जब हठीला, उद्दाम विश्वम् एक विनयी, शिष्ट और विवेकी युवक बनकर लौटा था । उसका रहन-सहन, वेशभूषा बातचीत सबकुछ अपनी पहुँच के बाहर लग रहे थे । उसे देखने के बाद आले में रखे दर्पण के टुकड़े में दीखता अपना प्रतिबिंब कितना दयनीय लगा था । बड़े मुश्कील से मेरे कुछ कह पाने पर वह कितने सयानेपन से मुसकराया था, फिर बड़े शिष्ट स्वर में समझाते हुए कहा, 'वह सब भूल जाओ, उस उम्र में मुझको समझ ही कहाँ थी ! अब हमें अपने माँ-बाप की बात मानकर चलना चाहिए, मुझे तो अभी बहुत आगे बढ़ना है ।'[१२०] 'तोहफा' कहानी में इसका सुंदर उदाहरण मिलता है - "मम्मी!"

काँच के गिलासों में बर्फ ड़ालती शोभा ने आँखें उठाई तो बबलू फिर खड़ा था, "मम्मी, अज्जू भी जा रहा है।" थकान और निराशा से बोझिल उसकी आवाज रुँआसी हो आई थी।

"क्यों ? उससे कहो न, थोड़ी देर और रुक जाए ।"

"उसका नौकर उसे लिवाने आया है ।"

अज्जू बबलू का सबसे प्यारा दोस्त था । महीनों पहले से बबलू उसे अपनी बर्थ-डे की तारीख और तैयारियाँ बताता आ रहा था कि उसके पापा इस बार उसके बर्थ-डे पर कितने सारे लोगों को बुला रहे हैं । केक मम्मी का बनाया हुआ नहीं, बल्कि 'क्रीम-किंग' से आया हुआ होगा । सब तरह की ड्रिंक्स - लेमन, ऑरेंज, कैंपा जितनी चाहो उतनी लो.......खूब बड़े-बड़े गुब्बारे अपने दोस्तों में बाँट देगा - फिर पटाक -पटाक फोड़ेंगे गुब्बारे सब मिलकर ......बड़ा मजा आएगा.....पापा-मम्मी डाँटेंगे थोड़े ही और खुश होंगे .....पापा ने कहा है, तू जितने चाहे, उतने दोस्तों को बुला सकता है । केक काटते हुए सारे दोस्तों के साथ फोटो खिंचेंगी ।

लेकिन अब - "मम्मी ! अज्जू भी जा रहा है ।"

"तो?" शोभा विचलित हो उठी, "अच्छा चल, मैं अज्जू के नौकर से बात करती हूँ - क्या कहता है वह ।"

"नहीं, आंटी ने मुझसे भी कहा था कि अज्जू को सात बजे भेज देना और अब तो आठ बज रहे हैं ।"[121]

'कागज की नावें, चाँदी के बाल' कहानी में इस शैली का बहुत अच्छी तरह से उपयोग हुआ है । लेखिका लिखती है - 'वह मेरी 'बुढ़ी' की कल्पना के करीब फटके बिना वैसा ही मगन हँसता हुआ कहे जा रहा था। बेहद हँसोड़ था वह । नकलें भी बड़ी बढ़िया उतारता । स्कूल के टीचरों के डपटने, चपरासी के हड़काने और प्रार्थनावाले पंडितजी के नकनकाने की; हम जब भी इकट्ठे होते, वह एक के बाद एक नकलें उतारता जाता, मैं खिलखिलाती जाती ।

फिर आदत ऐसी पड़ गयी कि वह आसपास न भी होता तो भी में उसकी किसी नकल वाली मुद्रा को सोचकर ही खिलखिला पड़ती ।

तब आसपासवाले फिर हमें हैरत से देखने लगते ...। यह एक बहुत पुराना सिलसिला अभी तक, अधेड़ हो जाने तक चला आता है । जाने-अनजाने प्रसंगों के बीच अचानक उसकी कोई बात याद आ पड़ती है और मैं बरबस मुसकरा पड़ती हूँ । ध्यान तब आता है जब मेरे पति या बच्चे मुझे टोककर होश में आने के लिए कहते हैं । और क्षण भर के लिए मैं एक अनाम अपराध बोध से ग्रस्त हो जाती हूँ । लेकिन चूँकि ऐसा बहुत कम ही होता है जबकि मैं पति-बच्चों से घिरी रहती होती होऊँ, इसलिए मौका पाते ही 'वह' खिड़की से अंदर फलाँग लेता है और हमारी बेबात की हँसी-ठिठोली शुरू हो जाती है । कभी-कभी गंभीर वार्तालाप भी - जैसे एक-दूसरे के डिब्बे का टिफिन खाते हुए । मैं कहती हूँ - ' तुम्हारे डब्बे की रोटियाँ खूब नरम होती हैं न !

'हाँ, मेरी माँ उनमें घर का ताजा मक्खन चुपड़ती है । बहुत थोड़ी-सी शक्कर भी - तुम भी अपनी माँ से मक्खन चुपड़ने को कह दो'[१२२]

सूर्यबाला की 'क्या मालूम', जैसी अनेक कहानियों में इस शैली का प्रयोग हुआ है ।

५.२.६ छायाचित्रात्मक शैली

सूर्यबाला ने सूक्ष्म भावों के रेखांकन के लिए अपने कथा-साहित्य में इस शैली का उपयोग किया है । अपने 'यामिनी कथा' में लेखिका विश्वास के भावों को स्पष्ट करती हुई लिखती है - 'विश्वास ने हैरान आँखों से मुझे देखा था । मुझे सिर्फ इतनी राहत हुई कि दंश का दर्द नहीं था उन आँखों में, बल्कि एक हैरान, छुपी-छुपी आत्मग्लानि-सी थी और थोड़ी बेचैन भटकन-सी...महसूस होगी उन्हें एक तड़फड़ाती धारा भी, ठंड़क भी! सिर्फ उत्तेजना की लपटों से सर्वथा अलग !'(३६) 'यामिनी कथा' में यामिनी को निखिल से चुनचुन पैदा होने के बाद

निखिल और पुतुल की प्रतिक्रिया का चित्रण करते हुए यामिनी कहती है – 'ओह ! तब निखिल की आँखें कैसी जगमगा उठी थीं और पुतुल का पूरा चेहरा जैसे धीमे-धीमे राख से ढँपता चला जा रहा था । निखिल की दृष्टि की वह दिपती लौ और पुतुल के चेहरे को ढाँपती राख- दोनों ही मेरे अंदर हमेशा के लिए फ्रीज हो गए ।'(८७)

'दीक्षांत' उपन्यास में जब कुंती, शर्मा सर को अपना बेटा ड्रामे में नौकर बना हुआ है और बरुआ का बेटा राजा बना हुआ है यह बात बताती है तब शर्मा सर के भावों को स्पष्ट करने के लिए सूर्यबाला ने प्रस्तुत शैली का उपयोग किया है । वह लिखती है – '...जैसे अदृश्य हुई लपट भक से जल उठी हो और उनका तन, मन सब कुछ दहककर झुलस गया हो, खिंची नसों, भिंचे होठों से वे इस लपट की आँच बरदाश्त करने लगे।'(३६)

शर्मासर के मन में आशावाद पैदा होने पर कुंती से आँखें मिलाने पर लेखिका लिखती है – 'उन आँखों की चमक ने कुंती की आँखों में भी चमक भरी.....जैसे एक दीये से दूसरे दीये जलते जायें...(४७)

'गैस' कहानी में इस शैली का उदाहरण मिलता है –'किचेन से सुन । इस्तीफे के नाम पर उसकी नस-नस थरथरा उठी, बदन में आतंक की सुरसुरी-सी दौड़ गयी ।...पिंकी को बुला, चाय दो प्यालों में छान दी । एक प्याला उसके हाथ ही महेश के पास भेज दिया । दूसरा चुपचाप शांत होने की कोशिश में होंठों से लगा लिया। लेकिन घूँट भर गुटकने के साथ ही अनायास दो बड़े आँसू प्याले में लुढ़क आये ।

और झलझलाई आँखों में हेड मिस्ट्रेस की बिल्ली-सी घूरती चौकन्नी आँखें और तीखी तुर्श आवाज उभरने लगी...

'यह आपने कैजुअल बचाने का अच्छा तरीका निकाल लिया है ! हर दूसरे, तीसरे हाफ-डे...सारी दुनिया आप ही क्यों घहाती फिरती हैं ? आपके पति भी तो हाफ-डे ले सकते हैं अपने ऑफिस से ? आगे से पूरे दिन की बकायदा छुट्टी लिया कीजिए और हां, एप्लीकेशन

मेरे पास एक दिन पहले ही पहुँच जानी चाहिए जिससे उस क्लास के लिए दूसरी टीचर का इंतजाम किया जा सके...'

कानों में कांच के टुकड़े पिघलने लगे तो उसने एक सांस में एक ठंड़ा-सा घूंट गुटककर आँखें पोंछ लीं ।'[१२३]

'साँझवाती' कहानी में इस शैली का प्रयोग हुआ है – 'उजली भौंहों के ऊपर की आसमानी पगड़ी अकड़ी, चुहल से । अस्सी साल की सफेदपोश रौनक वापस खिल उठी...'[१२४] 'घटनाहीन' कहानी में लेखिका ने नायक का चित्रण कितनी बारीकी से किया है यह देखा जा सकता है –'चौंधियाता हुआ वह उठ खड़ा हुआ । मैल भरे, पसीने से लथपथ कॉलर में गरदन और झिल्लर नायलॉन की कमीज से चिपका पसीना उसे एकदम लस्त सा कर गया । झूलते पैंट के पाँयचों के नीचे भी घुटनों से पसीने की धारें नीचे जुतों तक बह आई थीं । उसने एक जूते के टायर के सोल से दूसरे जूते पर जमी मिट्टी झाड़ी । उठकर कुछ देर यूँ ही खड़ा रहा, जिस पर धूप के तीखेपन के बीच छाँह का एक कटा हुआ त्रिभुज खिंच गया था ।'[१२५] रमन की चाची का यह चित्रण रहा-'यह कहते हुए उन्होंने जैसे मेरी आँखों के सामने से अपने को पूरी तरह समेट लेना चाहा था । वह समेटती जा रही थीं एक-एक करके और मैं देखता जा रहा था । वे दुबली-दुबली सी, पीली-सी बाँहें, वह पका हुआ एड़ी का घाव और उसके गिर्द लिपटी गंदी मटमैली पट्टियाँ, पसीने से हमेशा फैली-फैली हलकी सी बिंदी और उलझे बालों में खो गई फीकी-फीकी सी सिंदूरी माँग और सहमी-सहमी भयभीत फड़फड़ाती सी आँखें ।'[१२६]

'क्रॉसिंग' की नायिका का वर्णन इसी शैली में किया है – 'पतली-सी चेन वाली घुमावदार गर्दन पर टिका, मेरी दृष्टि से पूरी तरह बेखबर चेहरा । (यह बेखबरी मुझे ज्यादा इत्मीनान से भर गई) भौंहों के बीच करीने से लगी मखमली बिंदी । और समेटे हुए बालों वाले जूड़े

के किनारे खुसाँ मोगरे का एक फूल'[१२७] इस तरह के वर्णन में लेखिका की सूक्ष्म दृष्टि की पहचान होती है ।

'मटियाला तीतर' कहानी में देवा का वर्णन बहुत ही सूक्ष्मता से किया है – 'साक्षात् काकभुशुंडि ! खासकर कानों और गले में खूब कसकर लपेटे सलेटी गुलूबंद की वजह से । उसके बाद नजर एकदम सरक गई पाँवों की तरफ – इंच-इंच भर फटी बिवाई ? हिक्क ! एड़ी ही क्या, पूरे-के-पूरे पाँव दरक गई मिट्टी-से खुरदुरे। बाकी की काया को गाढ़ी-भूरी जरसी जैसा कुछ ऊपर, और पैंट-पाजामेनुमा कुछ नीचे, पूरे पैरों में । बीचोबीच एकदम गुबरैल-सा चेहरा । लेकिन वह अपनी काया, अपने हुलिए से पूरी तरह बेखबर, वहाँ रहकर भी वहाँ नहीं था । पाँव फर्श पर मिट्टी के चुल्हे-से जमे हुए थे । सिर्फ आँखें चारों ओर लटरुओं-सी घूमती हुई । दयार तलाशते, पंख फड़फड़ाते पाखी-सी । और हाँ, इस हुलिए के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ा लाल-पीली-भूरी-गुलाबी चिंदियों की कलियोंवाला एक थैला, जिसे वह कसकर भींचे हुए, कंधे से लटकाए खड़ा था, वैसा ही बुत सरीखा ।'[१२८]

सूर्यबाला इस शैली के माध्यम से अपने पात्रों एवं उनके जीवन में आयी स्थितियों का सूक्ष्म चित्रण करने में सफल हुई है ।

५.२.१० संवाद शैली

'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में संवाद शैली का बहुत बार उपयोग किया गया है । उपन्यास में स्थित सभी पात्र एक दूसरे से संवाद करते हुए मिलते हैं । इसमें रिंकी और शिवा के संवाद तथा रत्नेश तथा शिवा के संवाद प्रभावी महसूस होते हैं जिससे शिवा की असलियत लेखिका उघाड़कर रखती है । उदा.-

"मम्मी, आप बाल डाय किया कीजिए ।"

"ओहो, शुक्रिया ! एक फ्रॉक भी सिलवा लूं ?"

"मजाक नहीं ! आप नहीं जानतीं, बाहरवालों को देखने में कितना ऑड लगता होगा ।"

"बाहर वालों की फिक्र करने के लिए तू अकेली ही बहुत है ।"

" यूं ही बेचारे सोचते होंगे, पहले हसबैंड बूढ़ा था, वाइफ यंग थी; अब हसबैंड यंग है, वाइफ बूढ़ी !"(४६)

सूर्यबाला के संवादों की यह विशेषता रही है कि छोटे-छोटे संवादों के माध्यम से वह बहुत कुछ कह जाती है। 'यामिनी कथा' में चुनचुन के जन्म के बाद पुतुल और यामिनी के बीच उभरी हुई असहजता इन संवादों से स्पष्ट होती है -

'टिफिन ले गये थे, बेटे ?'

'न,...लेकिन कॉलेज कैंटीन में खा लिया था न ।'

'एग्जाम्स की डेट आ गई ?'

'न..... शायद इस महीने के आखिर में ..'

'तुझे पढ़ाई में खलल तो नहीं पड़ता न ?'

'नहीं तो ।'(६२)

सूर्यबाला के लगभग संपूर्ण साहित्य में इस शैली का उपयोग मिलता है । कुछ एक कहानियों को अपवाद स्वरूप छोड़कर सभी उपन्यासों एवं कहानियों में संवाद मिलते हैं । सभी कहानियों एवं उपन्यासों से उदाहरण देना अनिवार्य महसूस नहीं होता इसलिए कुछ उदाहरण ही यहाँ दिए हैं ।

५.२.११ वर्णनात्मक शैली

'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में जहाँ तहाँ वर्णनात्मक शैली का उपयोग मिलता है । एक उदाहरण इस तरह से देखा जा सकता है - "पापा को छोड़कर बाकी सब चुप थे । पापा हमेशा की तरह बाहर वाले कमरे में अपने कारोबार की गुत्थियाँ सुलझा रहे थे । रोज की तरह लोग आ जा रहे थे । पूरे माहौल के साथ चिपके हुए एक सन्नाटे अहसास को मम्मी अकेली जी जान से चीरती थक रही थीं । लेकिन हार नहीं मान रही थी कि कुछ ऐसा था कि घर भर सुनसान कर गया है"(३७), 'सुबह के इंतजार तक' उपन्यास में मानू एक दायी के घर का वर्णन करते हुए कहती है - 'जाने किन-किन रास्तों से चौड़ी-सँकरी गलियाँ पार करने के बाद काकी ने एक दो मंजिले मकान की निचली कोठरी का कुंड़ा खटखटाया था । दस-बारह साल के एक दुबले साँवले लड़के ने दरवाजा खोला । बिना कुछ पूछे हमें कोठरी में एक तरफ रखी चौकी पर बिठाकर जल्दी से अंदर चला गया । डिटॉल और अस्पताली दवाइयों का भभका सा एकबारगी कोठरी में फैल गया । उस गंध के अहसास मात्र से मेरे अंदर दहशत भरी झुरझुरी फैल गई । भय से काँपती मैं अनजाने काकी का हाथ कसकर थामे उनसे सटी बैठी थी । सामने टूटी चूलोंवाले एक-दो स्टूल और रंग-बिरंगे प्लास्टिक से बनी एक लोहे की कुरसी थी, जिन पर एक मोटा गाढ़ा लाल गुलाब और हरी पत्तियों का कढ़ा कुशन रखा हुआ था । सामने अंदर जानेवाले दरवाजे के दोनों ओर एक तरफ कृष्ण-राधा और दूसरी तरफ हेमा मालिनी का कैलेंडर टँगा था । बीच के दरवाजे पर पुरानी चादर का फूलदार परदा पड़ा हुआ था ।'(१३०)

सूर्यबाला ने 'दीक्षांत' उपन्यास में वर्णनात्मक शैली का बहुत सुंदर उपयोग किया है । कॉलेज में चलने वाले कामकाज का वर्णन करते हुए वह लिखती है- 'रामभरोसे ने रिसेस की घंटी घनघना दी थी । कोने के तरफ वाली चौकोर मेज पर गायतोंडे, यादव और बंसल अपने-

अपने टिफिन खोले बैठे थे । डिब्बे के ढ़क्कन उतने ही खुले थे जितने में से उँगलियाँ जाकर पराठे या चपातियों के निवाले, आचार, आलू की भाजी के साथ तोड़ सके । बीच-बीच में राशन के दुकान वालों की आरामतलबी, महीने में पड़ने वाली छुट्टियों और रेलवे ब्रिज के पास गिरी इमारत में मरने वालों की संख्या पर बात हो जाती थी ।'(५४)

सूर्यबाला ने अपनी कहानियों में भी इस शैली का उपयोग किया है । 'गौरा गुनवंती' कहानी में इस प्रकार से वर्णन आया है - वह आखिरी कुँवारी रात थी । कोहबर से उठा कर अभी-अभी नाइन कोठरी में बिठा गयी थी । हल्दी-रंगी पीली साड़ी, कलाई में सुपारी की गाँठ और दूब के कंगन बाँधे, हाथ-पैरों में हल्दी के उबटन लगाये लौटी, तो भागी-भागी सी ताई का दूध गरम करने लगी, दूध लेकर पहुँची, तो ताई की दाहिनी कोहनी उनकी आँखों पर थी । कोठरी की तरह ही निस्तब्ध, शान्त ताई...शीशियों की खत्म होती खुराकें...सिलवटों पड़ा बिस्तर...धुन्ध-सी हलकी बत्ती जल रही थी और झरोखों से छन-छन कर आती फागुनी

हवा और चाँदनी के रेशे बिखर रहे थे ।'[१२६]

'नीली थैली वाला पैराशूट' में नए खिलौने का वर्णन करती हुई लेखिका लिखती है – 'यह खिलौना एकदम अजूबा था । इसकी हरी बटन दबाओ तो एक के अंदर से एक, चार रेल के डिब्बे निकल आते थे और ट्रेन की शक्ल में सरपट भागने लगते थे । लाल बटन दबाओ तो डिब्बे वापस सिमट जाते थे और उनकी जगह हवाई जहाज के दो पंख निकल जाते थे । यह हवाई जहाज गोलाकार चक्कर काटकर, जेट प्लेन की तरह आवाज करता हुआ 'टेक-ऑफ' भी करता और डेढ़-दो फिट उड़ने के बाद बाकायदे 'लैंडिंग भी । तीसरी याने नीली बटन दबाओ तो यही खिलौना स्टीमर की तरह बाथरूम के टब या छोटे स्वीमिंग पूल में चलाया जा सकता था ।'[१३०] 'अनाम लमहों के नाम' कहानी में इसका सुंदर उदाहरण मिलता है । शुरुआत में ही थकी हुई नायिका का वर्णन करते हुए लेखिका लिखती है – 'उसने

जिंस-मसालों और सब्जियों से भरा थैला दीवार से टिकाया, आँचल के छोर से चाबी का गुच्छा निकाला, दरवाजा खोला और अंदर जाकर धप्प से पसर गयी । फिर आहिस्ते-आहिस्ते पसीना पेंछते-पोंछते नजर घुमायी और चारों ओर का जायजा लिया ।

सबकुछ अस्त व्यस्त - ऐला-फैला...बच्चों की निकरें, बनियानें, पति की लुंगी, साबुन के झाग से बोथा हुआ शेविंग ब्रुश और यहाँ-वहाँ फेंकी हुई अधटूटी, लतरी चप्पलें ।

अंदर की तरफ खुलने वाले दरवाजे के पास दाल, सब्जी के खाली हुए सुखे कड़कड़ाये-से पतीले, राख से अंटी अंगीठी पड़ी थी और बरामदे में ऊपर अधसूखे-अधगीले कपड़े लटक रहे थे । इस सबके अलावा बाहर सूखी-सूखी गर्माती, अंधड़ जैसी हवा और अंदर उमस-भरी बेकली....'[७१]

५.२.१२ स्वप्न शैली

सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य में स्वप्न शैली का बड़ी सुंदरता से प्रयोग किया है । कथा में प्रसंग को मार्मिक बनाने के लिए अधिक मात्रा में इस शैली का उपयोग हुआ है । 'अग्निपंखी' उपन्यास में जयशंकर अपनी पत्नी और बच्ची को लेकर सपने बुनने लगता । वह सोचता है कि वह अपनी पत्नी की माफी माँगेगा तभी उसे चैन आएगा तब 'कि जैसे वह बीचोबीच, थाम लेती है । सिनेमा में देखे प्यार-मोहब्बत के सीन सच्चे लगने लगते हैं । सचमुच जैसे गेंदे-गुलाब बिखेरती सामने से चली आ रही हो । और वह उसे भर हाथों फूलों की डलिया सी ही थाम लेता है । औरत आँखों में मुसकराती है । फिर मायके से लाई सौगातों का पिटारा खोल देती है । मेवे-मिठाई की टोकरियाँ । उसके लिए पैंट-बुशर्ट का कपड़ा । बच्ची के लिए चाँदी के कड़े, करधनी, पैजनियाँ ।'(७१)

'यामिनी कथा' में यामिनी की मनःस्थिति का चित्रण करते हुए सूर्यबाला ने स्वप्न शैली का सुंदर प्रयोग किया है । चारों पुरुषों के बीच बँटी यामिनी दुःस्वप्न देखती है कि - 'विश्वास ... नन्हे से पुतुल को हाथों में उठा-उठाकर उछाल रहे हैं, ठीक जैसे निखिल चुनचुन को उछालते हैं । (जैसे पुतुल के अचेतन ने जिद की हो क्या !) नन्हा पुतुल किलकारी मारकर हँस रहा है, ठीक जैसे चुनचुन निखिल के उछालने पर हँसता है । पर हैं वे विश्वास और पुतुल ही । तभी निखिल आ जाते हैं और विश्वास से पुतुल को माँगने लगते हैं; जैसे कह रहे हों - लाओ, अब मुझे दो....विश्वास कुछ नहीं बोलते, गुमसुम उछालते रहते हैं । निखिल माँगते जाते हैं । विश्वास जैसे कोई खतरा जैसा महसूस कर मुझे इशारा सा करते हैं उनके साथ फौरन चल देने के लिए।'(६५)

'दीक्षांत' उपन्यास में जहाँ-तहाँ स्वप्न शैली का उपयोग हुआ है । शर्मा सर अपने बेटे विमल के बारे में स्वप्न देखते हैं - 'लेकिन तभी जैसे भरपूर दूधिया प्रकाश के बीच स्टेज पर 'विमलभूषण शर्मा, हिंदी में सर्वोत्तम अंक पाने पर प्रथम पुरस्कार...' पुकारे जाने पर उन्होंने देखा - सावला, दुबला उन्हीं की कद-काठी पर गया विमलभूषण, शरमाता, लजाता-सा नौकर बना, झिल्ले कपड़े पहने स्टेज पर आया है और चीफ गेस्ट से लालायित आँखों से पुरस्कार ले रहा है । सारा हाल हँस रहा है ताली बजाकर और चीफ गेस्ट ओंठों के कोने में मुस्करा रहे हैं, उसकी हुलिया पर और विमलभूषण शर्मा निहाल हो रहे हैं, अपने आप पर।

और फिर नाटक के दरम्यान भी राजा की पोशाक में सजा-धजा गोरा-चिट्टा, काश्मीरी सेब-सा बरुआ का छोटा भाई विपिन बरुआ भारी-भारी-सी आवाज में नौकर बने गिड़गिड़ाते, घिघियाते विमलभूषण शर्मा पर दहाड़ता फिरेगा... सारा हाल रीं-रीं करते खिसियाते, हिंहिंयाते नौकर की कॉमेडी पर हँस-हँसकर लोट-पोट हो जाएगा ।'(३८) इसी तरह सूर्यबाला कुंती व्दारा देखे जाने वाले सुनहले स्वप्न के बारे में लिखती है-'कुंती कहीं बहुत पास, बहुत

सजीला, बहुत सुनहला सपना देख रही थी । बहुत धीमे-धीमे तितलियों-से रेशमी रंग-बिरंगे पंख तिर रहे थे, इधर-उधर अछोर विस्तार तक, जहाँ तक मन का साम्राज्य फैला था... और एक दीये की जोत से दूसरा, दूसरे से तीसरा, इस तरह अनगिनत दीये जलते जा रहे थे उम्मीदों की देहली पर....'(४६)

'कागज की नावें, चाँदी के बाल' कहानी में नायिका स्वप्न देखती है -'बरसती बरसात का यह हलकोरता पानी ढलानों से बहता हुआ एक कोठरी के दरवाजे से जा लगा है । वहाँ एक छोटा-सा लड़का चहककर एक नाव उठा लेता है और कुतूहल से देखता है - उसमें रखा एक रुपहला चाँदी के रेशे-सा बाल...'[१३२]

'मानसी' एक निस्वार्थ प्रेम की कहानी है । इसमें भावनाओं की गहराई होने के कारण स्वप्न शैली का सुंदर प्रयेग हुआ है । नायक स्वप्न देखता है और कहता है - 'स्वप्न में भी मुझे इतना याद है कि वे ही रास्ते हैं जिनपर मैं पहले भी ऐसे ही भूल-भटक चुका हूँ । और यह भी कि इन्हीं रास्तों में किसी एक में है, किसी एक में वह पहचानी जगह जिसकी मुझे तलाश है । पर वह ठीक-ठीक क्या है, मैं समझ नहीं रहा ।

अचानक पाता हूँ, रास्ता एक पतली गली में तब्दील हो गया है और गली चौड़ी होते-होते एक उफनती, बहती नदी के चौड़े पाट पर...एक तरफ चिकनी संगमरमरी शिलाओं पर एक छोटा मंदिर है और मंदिर की सीढ़ी पर तुम हो, मंदिर के कलश पर लगी रंग-बिरंगी ध्वजाएँ देखती हुई ।'[१३३]

५.२.१३ फैंटसी

मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं का लेखन फैंटसी के जरिये किया है । धीरे-धीरे इस शैली का उपयोग गद्य-साहित्य लेखन में भी होने लगा सूर्यबाला ने अपने 'दीक्षांत' उपन्यास में शर्मा सर

के जीवन का मार्मिक अंत करने के लिए इस शैली का उपयोग किया है । विक्षिप्तावस्था में शर्मा सर अपने अतीत में विचरण करते-करते फैंटसी में चले जाते हैं और उसी समय उनकी मृत्यु हो जाती है । 'आओ कुंती, चलें । थामकर बैठना नहीं है । अरे विनय और बिल्लू को तो मैं भूल ही गया था । लाओ, एक को मुझे दो । नहीं, थका नहीं हूँ मैं! अरे ये तो श्रमबिंदु है जंगल के आतप घाम झेलते । हारो नहीं, सोचो युग-कल्प, पहले राम ने भी तो वनवास भोगा था, सीता के साथ । एक-दो नहीं, पूरे चौदह वर्षों का । ऐसे ही तो अति दुर्गम बीहड़ों, भयानक जंगलों के बीच से भूख, प्यास, घाम-बतास झेलते रास्ता बनाना पड़ा होगा उन्हें, एक-दो नहीं चौदह वर्ष ! अच्छा कितने होते हैं, चौदह वर्ष कुंती, क्या मेरे वनवास से बहुत ज्यादा; मेरी अवधि कब तक पूरी होगी...कभी-न-कभी तो होगी न !

सचमुच देखो, घना जंगल, भयावने बीहड़, कांटे स ऽ ऽ ब पार । बस्ती ही है लेकिन क्या है ये जगह ? बाजार सरीखी, भीड़-भाड़ बाजार ही तो ।

लेकिन यहाँ पर क्यों सबसे सस्ती, सबसे सड़ी-गली चीजें डंडी मार-मार कर बेची जा रही हैं ! बिक्री की मंडी के बीचोबीच संस्कृति और संहिताओं के नाम पर यह कैसा अंध-व्यापार चल रहा है । रुको भाई, रुको, ऐसा क्यों बेचते हो ? ऐसा क्यों खरीदते हो ?

सारे श्लोकों के उपहासास्पद अर्थ और सारी नीति, संहिताओं की मसखरी । रोको इसे । सच और सही तो यह है; इसे क्यों नहीं लेते ? इसे क्यों नहीं अपनाते ? यह मेरे पूज्य पिता ने कहा है । यह मेरे परम आचार्य ने - सत्यं वद-धर्मं चर... और यह देखो, खुले मंच पर विदूषकों, भाटों ने एक जमावड़ा, मेला-सा लगा रखा है । उनमें से कई चेहरे देखकर लगता है, इन्हें कहीं देखा है । देखो, वे सब हमारी ओर संकेत कर आपस में एक-दूसरे के कानों में कुछ-कुछ फुसफुसा रहे हैं और ठट्ठे मार-मारकर लहालोट हो रहे हैं।

उफ, वहाँ तो बरुआ भी है उन्हीं भाटों के बीच और वह, उसका साथी भी...वह भी...वह भी और वह भी.....'(११०)

सूर्यबाला की कहानियों में भी यह शैली मिलती है 'घटनाहीन' कहानी में उसके उदाहरण को देखा जा सकता है -'अब वह देख रहा है - पिंटू ठीक उसकी आँखों के सामने बिस्तर पर आखिरी साँस लेते हुए धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है । वह तटस्थ, पाषाण सा खड़ा है। पिंटू डूबता जा रहा है, वह ठूँठवत् जड़ है - तभी जाने किधर से गुड्डी सारी स्थिति से अनजान 'पिंतू भइया' - 'पिंतू भइया' करती नन्ही बाँहें फैलाए उसकी ओर ढुंढती-सी आ रही है । उसने घबराकर दृष्टि हटा ली है । दूसरे कोने में दीपू निःशब्द भरभराई आँखों से पिंटू को देख रहा है - अपलक । उसकी दृष्टि फिर पिंटू पर टिक गई है । फिर उसे लगा है जैसे डूबते-डूबते पिंटू के सूखे, मुरझाए होंठ उसे देखकर धीमे मुसकराए हैं और उसकी अशक्त दुबली बाँहें किसी आशा से भरी उसकी ओर उठी हैं और साथ ही डूबती हुई अंतिम मासूम दृष्टि - नहीं ! उसने चौंककर सिर उठाया'[१३४]

५.२.१४ लोकगीत शैली

हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में अधिकतर लोकगीतों का उपयोग किया जाता है लेकिन आज हम देखते हैं कि साहित्य में जहाँ-तहाँ लोकगीतों का संदर्भ मिलता है । सूर्यबाला ने इस शैली का अधिकतर उपयोग अपनी कहानियों में किया है । शादी के अवसर पर, उत्सवों के समय गाये जानेवाले लोकगीतों का संदर्भ सूर्यबाला की कहानियों में आया है । उदाहरण के लिए -

'मुँडेर पर' कहानी में राधा मौसी की शादी में ढोल-मजीरे पीट-पीटकर औरतें यह गीत गा रही थीं-

'किसने गूँथी रे सुहाग भरी चोटी -

बाबा जो लाये हजार भरी मुहरें -

दादी ने गूँथी रे, सुहाग भरी चोटी -

अम्मा ने गूँथी रे, सुहाग भरी चोटी ।'[१३५]

इसी कहानी में रुक्की इस गाने पर लहरा-लहराकर नाच रही थी-

'तुम किसके रसिया हो, तुम किसके रसिया हो -

हमारी दवा करना -

बागों में आया करना, हमको बुलाया करना !

कलियों पर लिटा करके -

पत्तों से हवा करना - तुम किसके रसिया हो

हमारी दवा करना'[१३६]

इसी कहानी में रुक्की नायक की शादी में यह गाना गाती है-

'किसने मंडप छवाये हरियाली बन्नी के -

किसने बिंदिया संवारी हरियाली बन्नी की

बाबा मंडप छवाये हरियाली बन्नी के -

अम्मा बिंदिया संवारें हरियाली बन्नी की ....'[१३७]

'गौरा गुनवंती' कहानी में गौरी की शादी के समय औरतें ये सुहाग भरे गीत गाती हैं -

'गौरा लेके उडबौं अरे गौरा लेके पडबौं

गौरा लेके चढबौं अकाऽऽऽस...

अइसने तपसिया के नाहीं गौरा बिआहब

बरु गौरा रहिहँ कुआँऽऽर...'[१३८]

'अमवाँ बउर जस बउरौ, इमिलि जस झपसौ,

बेटी पुरइन जस दहलेउ कँवल अस बिगसौ'[१३९]

'दादी और रिमोट' कहानी में दादी टी.वी. पर लगा सावन का गीत सुनती है और गुनगुनाती है-

'सावन रितु आऽऽई, धीरे-धीरे....सावन रितु....

खोलो मोरे सजना, चंदन केवडिया....

(क्योंकि)

चुनर मोरी, भीऽऽजे, धीरे-धीरे ....

सावन रितु आऽऽई धीरे-धीरे...'[१४०]

खुशी के माहौल में गाए जानेवाले ये लोकगीत माहौल या वातावरण को स्पष्ट करने और भावों की अभिव्यक्ति में सहायक हुए हैं ।

५.२.१५ टेलीफोन संवाद शैली

संचार माध्यमों के विकास के परिणाम स्वरूप टेलीफोन एवं मोबाइल अस्तित्व में आया और इसी के परिणामस्वरूप साहित्य में भी इसका प्रभाव रहा । सूर्यबाला ने इस शैली का उपयोग भी अपने कथा साहित्य में किया है । 'मटियाला तीतर' कहानी में इस शैली का बहुत जगहों पर प्रयोग हुआ है । ठेकेदारनी फोन पर अकेली ही बोलती जाती है - 'हल्लो जी, वो लड़का - देवा - पौंचा क्या ? हाँ-हाँ, वही; सुब्बे ड्राइवर को मैंने ही रुकने को मने बोला था । गुप्ताजी को साइट पर पोंचाने की जल्दी रैती है न ! इन ड्राइवरों को तो कोई बहाना चाहिए मटरगश्ती के लिए । दूसरे आज काम भी हजार । तड़के सुब्बे ही तो पौंचे भरतपूर से । आपने इतना कै रखा था तो मैंने सोचा, चाहे जैसे भी हो बिना लिये जाऊँगी नहीं । बड़ी मुश्किल से पटाया इसकी माँ को। अभी नया-नया इत्ते बड़े शहर में आया है न तो थोड़े दिन तो लगेंगे ही आदमी बनने में । और अभी काम भी कुछ नई जानता; लेकिन जरा

बहला फुसलाकर रखेंगी तो थोड़े दिनों में बहुत सहारा हो जाएगा । है भी अक्ल का दुरुस्त - सिर्फ जरा उद्दंड और बतूना - पिक्चरबाज भी हो रहा था संग-साथ के लड़कों में। सच पूछिए तो इसी से इसकी माँ ने और भेज दिया कि वहाँ से हटकर शायद सुधर जाए ।'[१४१]

'दीक्षांत' उपन्यास में इसी शैली के माध्यम से कॉलेज के प्रिंसिपल और चेयरमैन के बीच फोन पर ही बात होती है - 'कौन राजदान सा' ब ? मैं चेयरमैन बोल रहा हूँ - देखो, ऐसा करो...वह एक शर्मा या ऐसा ही कुछ करके है न...हिंदी विभाग में....उससे आज इस्तीफा ले लो...न हो तो अगले टर्म तक के लिए मुहलत दे दो...क्या ? नहीं-नहीं, इस मामले में टालटूल या परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं...क्या पूछा ?....किस बेस पर ?....कमाल है...प्रिंसिपल आप है और बेस मुझसे पूछ रहे हैं अरे, एक नहीं, हजार 'बेस' आपकी उंगली पर होने चाहिए...खैर....मैं ही बताता हूँ...कितने तो आरोप, आपत्तियाँ उठ रही हैं उसके बारे में, आप मुझसे ज्यादा ही जानते होंगे...सबसे पहले तो विद्यार्थी ही असंतुष्ट हैं...पढ़ाये जाने वाले लेसन की तैयारी न होने पर, अपनी अयोग्यता छिपाने के लिए, पूरी-की-पूरी क्लास बाहर कर दी जाती है........'(६१,६२)

५.२.१६ कथात्मक शैली

कहानी के भीतर कहानी जहाँ हो वहाँ यह शैली पायी जाती है । सूर्यबाला की एक कहानी में यह शैली मिलती है । बचपन में पढ़ी हुई कहानी को याद करते हुए कहानी के भीतर कहानी लिखी है । 'कागज की नावें, चाँदी के बाल' कहानी में प्रस्तुत शैली के दर्शन होते हैं - 'एक थी राजकुमारी । वह बहुत सुंदर थी । उसके बाल सुनहले थे । जब वह हँसती थी

तो केतकी के फूल झरते थे और जब रोती थी तो ढुर-ढुर मोती । एक दिन राजकुमारी नदी में नहा रही थी । उसका एक सुनहला बाल टूट गया । राजकुमारी ने उस बाल को पत्तों के एक दोने में रखा और नदी की धारा में बहा दिया । धार में बहते-बहते दोना बहुत दूर निकल गया; जहाँ एक राजकुमार शिकार खेलने आया था । थके माँदे राजकुमार को प्यास लगी तो वह नदी के किनारे आया । राजकुमार अंजुलि में भरकर पानी पीने जा ही रहा था कि उसे बहते हुए दोने में सुनहला बाल दिखा। राजकुमार ने बाल निकाल लिया और अपने महल में लौटकर हठ कर बैठा राजा से कि पिताजी ! मुझे तो सुनहले बालोंवाली राजकुमारी चाहिए ।'[१४२]

मनोविश्लेषणात्मक शैली

प्रस्तुत शैली के माध्यम से सूर्यबाला ने अपने पात्रों के अंतर्व्दंव्द, क्रमबद्ध भावों का विकास, मानसिक ऊहापोह का वर्णन अपने सभी उपन्यासों एवं कई कहानियों में किया है । 'यामिनी कथा', 'मेरे संधिपत्र' 'दीक्षांत' इन उपन्यासों में तो इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं । 'योद्धा', 'विजेता', 'मानसी', 'मटियाला तीतर' जैसी अनेक काहानियों में इस शैली का उपयोग किया गया है ।

निष्कर्ष

सूर्यबाला बहुमुखी प्रतिभा की धनी है । कथ्य के अनुसार भाषा का प्रयोग करने में वह सिद्धहस्त हैं । उनकी संवेदनशील, मार्मिक भाषा के प्रभाव से पाठक को बाँधकर रखती है । सूर्यबाला का साहित्य पाठक को स्थितियों पर सोचने के लिए मजबूर करता है । कहीं भावों की गहराई से परिपूर्ण भाषा तो कहीं संवेदनशीलता से सराबोर, कहीं हँसी ठिठौली कर हँसाने वाली तो कहीं व्यंग्य की तीखी धार से तराशी गयी भाषा जो पाठक को आकर्षित करती है और स्थितियों एवं पात्रों का पर्दाफाश करती है । सूर्यबाला के कथा साहित्य में अनेक

मार्मिक, त्रासद स्थितियों का सर्जन हुआ है । इनका सर्जन करते हुए लेखिका ने जिस तरह की भाषा का उपयोग किया है वह अनूठा है । चाहे वह शर्मा सर के निधन का प्रसंग हो या यामिनी की असहज स्थितियों का उनकी भाषा भावात्मक हो उठी है ।

सूर्यबाला का अधिकांश कथा साहित्य प्रतीकात्मक है जिसके कुछ उदाहरण दिए जा चुके हैं । उनकी भाषा में सम्प्रेषणीयता का गुण अनिवार्य रूप से मिलता है । सूर्यबाला ने अपने साहित्य में लगभग सभी शैलियों का उपयोग किया है । कुछ नवीन शैलियों का प्रयोग भी पाया जाता है जैसे टेलिफोन शैली आदि । सरल, सहज, बोधगम्य भाषा, देशज, विदेशी शब्दों से परिपूर्ण संस्कृत के साथ-साथ अन्य भाषाओं के मेलजोल से बनी भाषा की वजह से ही कई स्थानों पर उनका साहित्य विश्वासनीय लगने लगता है । कथ्य के अनुसार भाषा एवं शैली के उपयोग के कारण उनका साहित्य बेजोड़ बन गया है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१.	डॉ. श्यामसुंदरदास	साहित्यालोचन	पृ.सं. - २५६
२.	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - ६१
३.	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवंती	पृ.सं. - ५२
४.	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - १८
५.	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - १२५
६.	डॉ. सूर्यबाला	एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम	पृ.सं. - १००
७.	डॉ. सूर्यबाला	एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम	पृ.सं. - १०१
८.	डॉ. सूर्यबाला	एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम	पृ.सं. - १०३
९.	डॉ. सूर्यबाला	मेरे संधिपत्र	पृ.सं. - ०७
१०.	डॉ. सूर्यबाला	एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम	पृ.सं. - ९९
११	डॉ. सूर्यबाला	मेरे संधिपत्र	पृ.सं. - ०७
११	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. -१२५
१२	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - १७
१३	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - १८
१४	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - २२
१५	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - २३
१६	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं - २३
१७	डॉ. सूर्यबाला	थालीभर चाँद	पृ.सं. - १२५
१८	डॉ. सूर्यबाला	एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम	पृ.सं. - ११०
१९	डॉ. सूर्यबाला	एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम	पृ.सं. - ११०
२०	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवंती	पृ.सं. - ३८
२१	डॉ. सूर्यबाला	गृहप्रवेश	पृ.सं. - ८६
२२	त्रिभुवन सिंह	हिंदी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग	पृ.सं.- ३०९
२३	डॉ. गोपाल जोशी	हिंदी उपन्यास में प्रतीकात्मक शिल्प	पृ.सं. - १९

२४	डॉ. परमानंद श्रीवास्तव	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी का विकास	पृ.सं. - ३७
२५	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - ०७
२६	डॉ. सूर्यबाला	एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम	पृ.सं. - ५४
२७	डॉ. सूर्यबाला	एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम	पृ.सं. - ५७
२८	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - १००
२९	डॉ. सूर्यबाला	थालीभर चाँद	पृ.सं. -१५४,१५५
३०	डॉ. सूर्यबाला	थालीभर चाँद	पृ.सं. - २८
३१	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - १०३
३२	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - १०६
३३	डॉ. सूर्यबाला	साँझवाती	पृ.सं. - ६२
३४	डॉ. सूर्यबाला	साँझवाती	पृ.सं. - ६५
३५	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवंती	पृ.सं. - ४१
३६	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - १३५
३७	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - १३६
३८	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - १३८
३९	डॉ. सूर्यबाला	साँझवाती	पृ.सं. - ८२
४०	डॉ. सूर्यबाला	साँझवाती	पृ.सं. - ८३
४१	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - ०३
४२	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवंती	पृ.सं. - ४६
४३	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवंती	पृ.सं. - ५४
४४	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - ७१
४५	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - ८२
४६	डॉ. सूर्यबाला	थालीभर चाँद	पृ.सं. - ६०
४७	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - १२८
४८	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - १३७
४९	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - १३७

५०	डॉ. सूर्यबाला	साँझवाती	पृ.सं. - २२
५१	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवंती	पृ.सं. - २६
५२	डॉ. सूर्यबाला	एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम	पृ.सं. - २७
५३	डॉ. सूर्यबाला	कात्यायनी संवाद	पृ.सं. - १३७
५४	डॉ. सूर्यबाला	पाँच लंबी कहानियाँ	पृ.सं. - ६०,६१
५५	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - ७०
५६	डॉ. सूर्यबाला	थालीभर चाँद	पृ.सं . - १८
५७	डॉ. सूर्यबाला	कात्यायनी संवाद	पृ.सं. - ६५,६६
५८	डॉ. सूर्यबाला	साँझवाती	पृ.सं. - ६६
५९	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - १७
६०	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - २३
६१	डॉ. सूर्यबाला	थालीभर चाँद	पृ.सं. - १६
६२	डॉ. सूर्यबाला	एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम	पृ.सं. - ३४
६३	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - ६५
६४	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - ३२
६५	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.स. - ११४
६६	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवंती	पृ.सं. - २२
६७	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - ०५
६८	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - १०
६९	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं. - ७५
७०	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - १०१
७१	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - ५८
७२	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - ५८
७३	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - ५९
७४	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - ६०
७५	डॉ. सूर्यबाला	साँझवाती	पृ.सं. - ६६

७६	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवंती	पृ.सं. - १४
७७	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - १५
७८	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - १२६
७९	डॉ. सूर्यबाला	थालीभर चाँद	पृ.सं. - ४४
८०	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - ५२
८१	डॉ. सूर्यबाला	पाँच लंबी कहानियाँ	पृ.सं. - ५८
८२	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवंती	पृ.सं. - ३७
८३	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - २४
८४	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - ३०
८५	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - ३९
८६	डॉ. सूर्यबाला	एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम	पृ.सं. - ५०
८७	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवंती	पृ.सं. - ५६
८८	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - ८३
८९	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - १०१
९०	डॉ. सूर्यबाला	एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम	पृ.सं. - ५१
९१	डॉ. सूर्यबाला	एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम	पृ.सं. - ५१
९२	डॉ. सूर्यबाला	एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम	पृ.सं. - ६१
	जे. डब्लू. बीच	उपन्यास में कथा शिल्प का विकास	पृ.सं. - ४००
९३	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - १३
९४	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं. - ३९
९५	डॉ. सूर्यबाला	कात्यायनी संवाद	पृ.सं. - ४६
९६	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - ८७
९७	डॉ. सूर्यबाला	साँझवाती	पृ.सं. - १५
९८	डॉ. सूर्यबाला	कात्यायनी संवाद	पृ.सं. - २८
९९	डॉ. सूर्यबाला	कात्यायनी संवाद	पृ.सं. - ९८
१००	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवंती	पृ.सं. - ०९

१०१	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - १००
१०२	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवंती	पृ.सं. - १६
१०३	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवंती	पृ.सं. - ३५
१०४	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं. - ११८
१०५	डॉ. सूर्यबाला	एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम	पृ.सं. - ४८
१०६	डॉ. सूर्यबाला	एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम	पृ.सं. - ५६
१०७	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं. - ७४
१०८	डॉ. सूर्यबाला	गृहप्रवेश	पृ.सं. - ६३
१०९	डॉ. सूर्यबाला	गृहप्रवेश	पृ.सं. - ६८
११०	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवंती	पृ.सं. - ५०
१११	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवंती	पृ.सं. - ५१
११२	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवंती	पृ.सं. - ५७
११३	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं. - २१,२२
११४	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं. - ११०
११५	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - १२
११६	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - १३३
११७	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं. - ४७
११८	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - २५
११९	डॉ. सूर्यबाला	थाली भर चाँद	पृ.सं. - ३७
१२०	डॉ. सूर्यबाला	कात्यायनी संवाद	पृ.सं. - ३८
१२१	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - ६६
१२२	डॉ. सूर्यबाला	साँझवाती	पृ.सं. - ८१
१२३	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - ६०
१२४	डॉ. सूर्यबाला	थाली भर चाँद	पृ.सं. - ५६
१२५	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं. - ५६
१२६	डॉ. सूर्यबाला	पाँच लंबी कहानियाँ	पृ.सं - ८०

१२७	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवंती	पृ.सं. - १७
१२८	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवंती	पृ.सं. - ४१
१२९	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - २२
१३०	डॉ. सूर्यबाला	कात्यायनी संवाद	पृ.सं. - ४५
१३१	डॉ. सूर्यबाला	पाँच लंबी कहानियाँ	पृ.सं. - ६४
१३२	डॉ. सूर्यबाला	दिशाहीन	पृ.सं. - ६५
१३३	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - ४३
१३४	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - ४५
१३५	डॉ. सूर्यबाला	मुंडेर पर	पृ.सं. - ५०
१३६	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवंती	पृ.सं. - १७
१३७	डॉ. सूर्यबाला	गौरा गुनवंती	पृ.सं. - १८
१३८	डॉ. सूर्यबाला	मानुष-गंध	पृ.सं. - ४६
१३९	डॉ. सूर्यबाला	पाँच लंबी कहानियाँ	पृ.सं. - ८४
१४०	डॉ. सूर्यबाला	कात्यायनी संवाद	पृ.सं. - ३५

उपसंहार

कहानी कहना या सुनना मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति रही है । आदिमानव जब जंगलों में घुमता था तो सृष्टि के कई सारे आश्चर्यों के संपर्क में आता था और इन्हीं अनुभवों को वह अन्य जनों के साथ बाँटता था । आदिकाल में मनुष्य के इसी अनुभव कथन में कहानी के तत्व ढूँढे जा सकते हैं । धीरे-धीरे चित्र लिपी का और कालांतर में लिखने की लिपी का अविष्कार हुआ और मनुष्य अपने अनुभवों को चित्रों एवं लिखित रूप में दूसरों तक संप्रेषित करने का प्रयास करने लगा । अपने अनुभवों को संप्रेषित करने की अनेक विधियों को मनुष्य विकसित करता गया और इसी से साहित्य का निर्माण होता गया । आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल में पद्य का विकास हुआ और आधुनिक काल में पद्य के साथ-साथ गद्य की अनेक विधाओं का विकास हुआ । आदिकाल के रासो साहित्य, लौकिक साहित्य एवं धार्मिक साहित्य में कथा के तत्व पाए जा सकते हैं, भक्तिकाल के संपूर्ण साहित्य में भी कथा के तत्व विद्यमान हैं, रीति काल के साहित्य में भी कथा के तत्व पाए जाते हैं । आधुनिक काल में कहानी का रूप विकसित हुआ । पद्य से वह गद्य में लिखी जाने लगी । सम्राट प्रेमचंद ने कहानी को सामाजिक समस्याओं के साथ जोड़ा । कहानी को समाज का आइना बनाया । धीरे-धीरे कहानी की अभिव्यक्ति के लिए सुंदर भाषा एवं शैली का प्रयोग किया जाने लगा और इस क्षेत्र में कहानी के विकास की दृष्टि से नए-नए प्रयोग आज भी जारी हैं । आधुनिक काल में 'कथा' शब्द को व्यापकता प्राप्त हुई । आधुनिक काल में कथा में कहानी के साथ-साथ उपन्यास का भी समावेश हो चुका है । 'उपन्यास' आधुनिक काल की देन है जो पाश्चात्य साहित्य के प्रभावस्वरूप हिंदी साहित्य में आया है । अंग्रेजी साहित्य के प्रभावस्वरूप बांग्ला साहित्य में उपन्यास का विकास हुआ और बांग्ला से होता हुआ वह हिंदी साहित्य में आया । उपन्यास में भी कथा तत्व विद्यमान होने के कारण वह कथा-साहित्य का भाग बन गया ।

आज कथा साहित्य अपने विकास की चरम सीमा पर है । कथा मनुष्य के जीवन की गाथा अपने में समाती है । कथा-साहित्य के माध्यम से रचनाकार अपने जीवन के अनुभूत सत्य को अभिव्यक्त करता है । रचनाकार का यही अनुभूत सत्य पाठक के अनुभवों को उन्नत बनाता है । हर एक पाठक अपने समाज में जीता है । उसके अनुभव उसके आस-पास के समाज से, वातावरण से संबंधित होते हैं । उसके अनुभवों का दायरा सीमित होता है । साहित्य के माध्यम से वह अपने अनुभवों को व्यापक बनाता है । साहित्य के माध्यम से वह दूसरी जगहों पर घटित होने वाली घटनाओं, परिस्थितियों में आनेवाले बदलावों, लोगों की मानसिकता में आनेवाले बदलाव, लोगों की जीवन शैली में आनेवाले बदलाव जैसी अनेक बातों से परिचित होता है और इससे संबंधित अपनी जिज्ञासा को मिटाता है । वह साहित्य के माध्यम से बहुत सारा ज्ञान भी प्राप्त करता है । साहित्य पठन से उसके अनभवों में व्यापकता आती है । सभी साहित्यिक-विधाओं के माध्यम से रचनाकर अपने विचारों, अनुभवों, भावनाओं को अभिव्यक्त करता है और उसे पाठक तक पहुँचाता है । कथा साहित्य के माध्यम से इसकी अभिव्यक्ति प्रभावी होती है ।

साहित्यकार जिस समाज में रहता है, वहाँ की संस्कृति भी उसे प्रभावित किए बिना नहीं रहती इसलिए जब वह रचना करता है तब उसकी रचना में समाज के साथ-साथ उसकी संस्कृति भी उसकी रचना में उतरती है । व्यक्ति, परिवार, समूह, समिति, समुदाय, संस्था आदि समाज को कार्यरत रखने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । भारतीय संस्कृति प्राचीन संस्कृति में से एक है । समन्वयवाद, आध्यात्मिकता, वर्ण-व्यवस्था, योजनाबद्ध जीवन पद्धति, लोकमंगल की भावना, पुरुष प्रधान संस्कृति, प्रकृति प्रेम आदि इसकी विशेषताएँ हैं जो उसे अन्य संस्कृतियों से अलग बनाती हैं। अपनी निरंतरता की वजह से भारतीय संस्कृति में अनेक संस्कृतियों का संमिश्रण प्राप्त होता है । भारतीय संस्कृति की समन्वयवादी प्रवृत्ति की वजह से भारत में आए हुए अनेक धर्मों के लोगों की संस्कृतियों को भी सम्मान का स्थान

प्राप्त हुआ है । इसी में भारतीय संस्कृति की महानता को समझा जा सकता है । भारतीय समाज में रहनेवाले लोगों के जीवन पर इस महान संस्कृति का प्रभाव हुए बिना नहीं रहा जा सकता ।

'समाज' वह इकाई है जिसमें अनेक लोग एक समूह में में मिलजुलकर रहते हैं । ये सारे लोग अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं । समाज की इकाइयाँ - व्यक्ति, परिवार, समूह, समिति, समुदाय, संस्था आदि समाज को कार्यरत रखने में सहायक होती हैं । भारतीय समाज को देखा जाए, तो प्राचीन काल में समाज की व्यवस्था को ध्यान में रखकर उसे वर्णों में विभाजित किया था, कालांतर में यही वर्ण व्यवस्था जाति-प्रथा में तब्दिल हो गयी और आज देखा जाए तो समाज में जाति-प्रथा के अलावा आर्थिक दृष्टि से वर्गों में भेद आने लगा है । समाज में उच्च्च वर्ग, मध्य वर्ग और निम्न वर्ग तथा इसमें भी बढ़नेवाले उपवर्गों में समाज आज बँट रहा है । आज परिस्थितियों में बदलावस्वरूप समाज में भारी परिवर्तन आने लगा है ।

'संस्कृति' वह इकाई है, जो समाज में लोगों को साथ-साथ रहने के लिए मदद करती है । भारतीय संस्कृति प्राचीन संस्कृतियों में से एक है । भारतीय संस्कृति की समन्वयवादिता और निरंतरता की वजह से आज भी उसकी महानता कम नहीं हुई है । समाज में परिवर्तन के कारण संस्कृति में भी परिवर्तन आ रहा है । आज भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति हावी होने लगी है और संस्कृति में भारी परिवर्तन आने लगा है ।

समाज और संस्कृति में गहरा संबंध होता है । एक में परिवर्तन से दूसरा भी प्रभावित होता है । इस तरह से कहा जा सकता है कि समाज और संस्कृति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। रचनाकार पर इन दोनों का प्रभाव होता है इसीलिए जब वह साहित्य का सर्जन करता है, तब उसके साहित्य में समाज एवं संस्कृति का प्रभाव भी पड़ता है ।

सूर्यबाला इसी समाज और संस्कृति में पली-बड़ी हुई है । साठोत्तरी हिंदी साहित्य के महिला कथाकारों में सूर्यबाला का विशेष स्थान है । उनके जीवन परिचय को प्राप्त करने के बाद ऐसा महसूस होता है कि उनके जीवन का प्रभाव उनके साहित्य पर रहा है । बचपन के अपने अलिशान मकान का चित्रण हो, पिता की मौत के बाद बदली हुई स्थितियाँ हो, अपनी गली का वर्णन हो, अपने जीवन में आया हुआ संघर्ष हो, निर्णायक क्षण हो, अपनी संवेदनशीलता हो, अपने सगे-संबंधियों के साथ रहे संबंध हो, ये सभी कहीं न कहीं सूर्यबाला के साहित्य पर हावी है । उनकी स्वभावगत विशेषताओं को देखा जाए तो वे संवेदनशील, मिलनसार, मददगार, हँसमुख, ईमानदार, भावुक, समझदार आदि बातें नजर आती हैं । वे नारी को पुरुषों के समान मानती हैं । उन्होंने समाज के हर वर्ग को अपनी कहानियों के पात्रों के रूप में लिया है । सूर्यबाला के कथा-साहित्य में उन्होंने राजनीति को छोड़कर बाकी सभी विषयों पर कहानियाँ लिखी हैं । सूर्यबाला कहानीकार के अलावा प्रसिद्ध व्यंग्यकार के रूप में भी पहचानी जाती है । व्यंग्य की तीखी धार से विभिन्न सामाजिक एवं पारिवारिक मुद्दों पर उन्होंने प्रहार किया है । अपने देशी-विदेशी प्रवासों के वर्णनों के साथ-साथ जीवन में आए हुए अनेक अनुभवों का लेखा-जोखा अपनी स्मृति-कथा 'अलविदा अन्ना' में प्रस्तुत किया है ।

सूर्यबाला की कहानियों में बदलते हुए भारतीय समाज के विविध पहलु उभरकर आए हैं । सूर्यबाला नारी को पुरुष के समान मानती है । वह पुरुष या नारी के विशेष प्रकार के व्यवहार के लिए परिस्थितियों को जिम्मेदार ठहराती है। उसके अनुसार परिस्थितियों के परिणामस्वरूप नारी एवं पुरुष के व्यवहार में बदलाव आता है । उनकी कहानियों के अनेक विषय रहे हैं । पुरुष, स्त्री, युवा, बच्चे, वृद्ध आदि लोगों की समस्याओं को उनकी कहानियों में देखा जा सकता है । आज के समाज में स्थित अनेक समस्याएँ जैसे - अकेलापन, भयग्रस्तता, संयुक्त परिवार की विडंबना, बेरोजगारी, बालमजदूरी, अशिक्षा, गरीबी, पति-पत्नी

का संघर्ष, नौकरी की जगह प्रमोशन के लिए संघर्ष, अनमेल विवाह, असफल प्रेम, बहुविवाह, दिशाहीन होते युवक, वृद्धों की अनेक समस्याएँ आदि उनकी कहानियों के केंद्र में रही हैं । भारतीय समाज में परिवर्तन के परिणामस्वरूप हिंदू संस्कृति में आनेवाले बदलाव जैसे मूल्यों का क्षरण, पारिवारिक संबंध, पर्व एवं उत्सव, रहन-सहन, बोल-चाल, मान्यताएँ, दहेज प्रथा, बाजारवाद, उपभोक्तावाद आदि को सूर्यबाला ने बड़ी मार्मिकता से कहानियों में अभिव्यक्त किया है। अन्य धर्मों से संबंधित उनकी केवल दो-तीन कहानियाँ ही मिलती हैं । उन्होंने केवल मनोरंजन के लिए ही कहानियाँ नहीं लिखी हैं । अपनी कहानियों के माध्यम से वे पाठक के मन को झकझोर देती है और कहानी के कथानक पर सोचने के लिए उकसाती है। समाज के लिए आवश्यक मानवीय एवं नैतिक मूल्यों को बचाने की कोशिश करना ही उनकी कहानियों का मुख्य उद्देश्य रहा है ।

सूर्यबाला के उपन्यासों में समाजिक समस्याएँ जैसे अनमेल विवाह, पुरुष प्रधान समाज में पुरुष का वर्चस्व, असहिष्णुता, बेरोजगारी, गरीबी, विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता, शहरीकरण के दुष्परिणाम, दिखावापन, रीति-रिवाज, सामाजिक मान्यताएँ, स्वार्थ केंद्रित समाज आदि की अभिव्यक्ति मिलती है । उनके उपन्यासों में हिंदू संस्कृति के दर्शन होते हैं । उनके तीन उपन्यास नारी केंद्रित रहे हैं । 'मेरे संधिपत्र', 'सुबह के इंतजार तक' और 'यामिनी कथा' इन तीनों उपन्यासों में पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था में नारी की स्थिति को रेखांकित किया है। इन उपन्यासों की नारियाँ आदर्शवादी हैं । 'मेरे संधिपत्र' की शिवा सभी गुणों से परिपूर्ण होने के बाद भी विधूर से शादी कर आदर्श गृहिणी बन जाती है, 'यामिनी कथा' में यामिनी विश्वास की मौत के बाद पूनर्विवाह तो करती है लेकिन खुद के लिए भावनाओं का जाल बुनती रहती है और उसी में फँसकर दुखी बन जाती है । 'सुबह के इंतजार तक' की मीनू बलात्कार होने के बाद बुलू के साथ भागकर जाने का बोल्ड निर्णय लेती है लेकिन अपना जीवन फिर एक बार सँवारने में असफल हो जाती है । अपने भाई के लिए त्याग कर

आदर्शवादी बन जाती है जबकि अपना जीवन सँवारते हुए भी वह अपने भाई को मदद कर सकती थी । संक्षेप में कहा जाए तो सूर्यबाला ने आदर्श नारियों का सृजन तो किया है लेकिन उसमें यथार्थ का अभाव नजर आता है इसलिए संवेदनशील कथानक होने के बाद भी विश्वासनीयता नजर नहीं आती। 'अग्निपंखी' उपन्यास में जयशंकर का अहंकार उसे सहज जीवन नहीं जीने देता । प्रस्तुत उपन्यास में शिक्षित बेरोजगार युवक की त्रासदी का रेखांकन हुआ है । 'दीक्षांत' में आज की शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार और उसके परिणामों का शिकार युवा वर्ग की विडंबना का वर्णन आया है । सर्यबाला के उपन्यासों के सांस्कृतिक पक्ष को देखा जाए तो उसमें पुरुष प्रधान समाज में नारी की स्थिति, बदलता हुआ रहन-सहन, रीति-रिवाज, अंधविश्वास, बदलते पारिवारिक संबंध, मानवीय मूल्यों का होता क्षरण, विद्यार्थियों की चरित्रहीनता आदि बातों को देखा जा सकता है ।

रचनाकार के लिए अपने विचार, भावनाएँ, अनुभव आदि को अभिव्यक्त करने के लिए भाषा एक महत्वपूर्ण साधन है। सूर्यबाला की भाषा अपने कथ्य को संप्रेषित करने में समर्थ है । उन्होंने आज के पाठक के लिए संप्रेषणीय भाषा का उपयोग किया है । उसमें अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत शब्दों की बहुलता पायी जाती है । आवश्यकता के अनुसार उन्होंने कई जगहों पर अंग्रेजी वाक्यों का उपयोग किया है । कई जगहों पर उन वाक्यों का हिंदी में अर्थ भी कोष्ठकों में दिया है । इसी तरह से अन्य भाषाओं में पंजाबी, बांग्ला भाषाओं का भी प्रयोग किया है जिनका अर्थ कोष्ठकों में दिया है। सूर्यबाला ने कई सारे देशज, ध्वन्यात्मक, युग्म शब्दों का, मुहावरों एवं कहावतों का आवश्यकता के अनुसार कलात्मक उपयोग किया है ।

सूर्यबाला ने आवश्यकतानुसार नारे, गालियाँ, हिंदी सिनेमा के डायलॉग, घोषणा, विज्ञापनी भाषा आदि का उपयोग कर अपनी भाषा को मजबूती प्रदान की है । प्रतीक योजना, बिंब

योजना आदि के माध्यम से कथाओं के दृश्य पाठक के समक्ष प्रस्तुत किए हैं । अनेक सूक्तियाँ, नीति वाक्य उनकी भाषा में सुचिता लाने का कार्य करते हैं ।

सूर्यबाला ने बोलियों का उपयोग भी किया है जिसकी वजह से पात्रों की विश्वासनीयता बढ़ जाती है । सूर्यबाला की भाषा की यह एक विशेषता रही है कि वाक्य लिखने के बाद उसमें निहित भाव को वह कोष्ठक में स्पष्ट करती है, साथ ही पात्र व्दारा व्यक्त भावनाओं को कोष्ठक के माध्यम से स्पष्ट करती है । सूर्यबाला ने पात्रानुकूल भाषा का उपयोग किया है । उनके शिक्षित पात्र अंग्रेजी, संस्कृतनिष्ठ हिंदी तथा शुध्द मानक हिंदी भाषा का प्रयोग करते हैं तो अशिक्षित पात्र बोलियों का, बंबईया हिंदी का तो कई बार अशुध्द अंग्रेजी शब्दों का उपयोग करते हुए नजर आते हैं।

संकेतात्मक एवं तर्कनिष्ठ भाषा के उपयोग से उनके कथा साहित्य की आभा बढ़ गयी है । रोमांटिक प्रसंगों के चित्रण में इसका प्रभावी उपयोग हुआ है । चित्रात्मक भाषा के प्रयोग के कारण सूर्यबाला की कथाएँ पाठक पर अपना गहरा प्रभाव छोड़ती हैं । अपनी भाषा को सुंदर बनाने के लिए उन्होंने प्रसंगानुसार अनेक श्लोक, प्रार्थना, गाने, कविताएँ, शेरो-शायरी, स्वर, आलाप, ध्वनियों, लोकगीतों आदि का प्रयोग किया है ।

सूर्यबाला ने अपने कथा साहित्य के संप्रेषण के लिए 'मैं' की शैली, निवेदन शैली, आत्मालाप शैली, पूर्वदिप्ती शैली, रेखाचित्र शैली, व्यंग्यात्मक शैली, पत्र शैली, चेतना प्रवाह शैली, छायाचित्रात्मक शैली, संवाद शैली, वर्णनात्मक शैली, स्वप्न शैली, टेलीफोन संवाद शैली, लोकगीत शैली, कथात्मक शैली जैसी विविध शैलियों का उपयोग किया है । सूर्यबाला की भाषा-शैली सहज, सरल और बोधगम्य बन गयी है ।

अंत में कहा जा सकता है कि सूर्यबाला एक जागृत लेखिका है, जो समकालीन समाज एवं संस्कृति में आनेवाले परिवर्तनों को कथा साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त कर रही है ।

परिशिष्ट

साक्षात्कार

१. आपकी सबसे पहली कहानी कौन सी है ?

सूर्यबाला- मेरी पहली कहानी 'जीजी' 'सारिका' में प्रकाशित हुई । उसमें जीजी का युवा पति विदेश जाकर खुद को चाहनेवाली अपनी पत्नी को भूल चुका है । उसके आनेवाले पत्रों के सिलसिले टूट जाते हैं । जीजी को ऐसे पति से न्याय माँगना स्वीकार नहीं और न ही दूसरों की नजर में दयनीय बनन स्वीकार है । उल्टे उसका मानना है, कि किसी का प्यार और सम्मान भी जबरदस्ती पाया जा सकता है ? यह कायरता, दब्बूपन या स्थितियों के सामने समर्पण नहीं, स्वाभिमान से जीने का उसका निर्णय है ।

२. आप कथा लेखन की ओर कैसे आकर्षित हुई ?

सूर्यबाला- बचपन में सुनी हुई और कई बार पढी हुई कहानियों की छवि मेरे मन में थी । मैंने बचपन में बहुत सारी कहानियाँ पढी थीं । बचपन में पुरानी किताबों की गन्ध मुझमें एक अजीब रोमांच भरती थी । आठ-नौ वर्ष की आयु तक मैं किसी स्कूल में नियमित रूप से नहीं जाती थी । जब मेरा नाम छठवीं में लिखाया गया तब तक पूरी तरह से अपनी मर्जी से मैं, घर में चारों तरफ बिखरी उन तमाम रंग-बिरंगी, नई नकोर पुस्तकों को पढ-पचा चुकी थी जो मेरे शिक्षा विभाग के अधिकारी पिता के पास पहली से आठवीं तक के पाठ्यक्रमों में स्वीकृत होने के लिए आया करती थीं । उन ककहानियों का कथ्य एवं शिल्प मुझे आकर्षित करता रहा है ।

३. नारी विमर्श के बारे में आप की क्या राय है ?

सूर्यबाला- मेरी दृष्टि में नारी विमर्श का अर्थ स्त्री का मन, उसकी सोच, दृष्टि, उसकी समस्याओं और स्थितियों का विवेचन है । स्त्री जीवन की परत दर परत विश्लेषण ही स्त्री-विमर्श है जबकि आज स्त्री-विमर्श स्त्री के विस्तृत संसार को नकार कर उसके शरीर शोषण, सैक्स और अर्थ के स्थूल धरातल पर केंद्रित करता है ।

४. आपके लेखन की प्रेरणा क्या है ?

सूर्यबाला- मेरे लेखन की प्रेरणा वह कोई भी स्थिति, घटना या पात्र है, जो मुझे लगातार बेचैन करता रहे । तब तक बेचैन करता और झकझोरता रहे जब तक कागज पर न उतर आए । मेरी बहुत सी कहानियों में परंपरा और आधुनिकता का व्दंव्द आपको मिलेगा । सभी तरह के पात्रों की भरी पूरी दुनिया बसी हुई है मेरी कहानियों में और सबसे बढकर मानवीय संबंधों के साथ जुडी अदृश्य विडंबनाएँ भी । मूल्यों का विघटन बहुत बेचैन करता है मुझे इसीलिए ऐसी स्थितियों में हमेशा व्यंग्य को सशक्त माध्यम के रूप में मेरी रचनाओं में मैं उपयोग में लाती रही हूँ ।

५. आपके जीवन पर किसका प्रभाव रहा है ?

सूर्यबाला- सबसे पहली तो मेरी माँ का मेरे जीवन पर बहुत प्रभाव रहा है मैंने उन जैसी समझदार, विनम्र और दूरदर्शी स्त्रियाँ बहुत कम देखीं हैं ।आज से पचास साल पहले परंपरावादी मध्यमवर्गीय समाज में अल्पआयु में विधवा हुई मेरी माँ ने सारी परंपराओं और मर्यादाओं को निभाते हुए बगैर किसी ठोस आर्थिक आधार के चार छोटी-बडी बेटियों और नन्हे पुत्र का जैसे भरण-पोषण और शिक्षा-दीक्षा के दायित्व को निभाया वह किसी चमत्कार से कम नहीं । मेरी माँ सारे समाज के लिए स्त्रीत्व की मशाल तो नहीं, दीपशिखा अवश्य थी । शायद यही कारण है कि मैं 'माँ' को कभी बुध्दिहीन, कर्कशा के रूप में नहीं देख सकती । मेरी मौसी मेरे लिए जिजीविषा और जीवंतता की मशाल थी । जीवन भर अपने ऐय्याश पति की परित्यक्ता रही मेरी मौसी । अपने सारे दुखों की किसी को भनक भी न लगने देनेवाली यह स्त्री हम सभी के लिए जिंदादिल साथी थी । मेरी माँ और मौसी ने भिन्न स्थितियों में दारूण विपरितताओं के बीच से रास्ता निकालने की दो भिना मिसालें पेश की ।

इसी तरह मेरे पिता की जुझारू प्रकृति, माँ के प्रति उनका सम्मान भाव, सौंदर्य भावना और ललित कलाओं में उनकी रुचि ने मुझ पर अतिशय प्रभाव डाला । अनुशासन और संतुलन के साक्षात प्रतीक थे मेरे माता-पिता। चाहे संबंधों के निर्वाह में, चाहे जीवन की विसंगतियों में या विपरितताओं में उनकी निर्णय क्षमता अचूक थी । इन सभी का और जीवन में मिलनेवाले अतिसामान्य लोगों का भी मेरे जीवन पर प्रभाव रहा है ।

६. क्या आपके परिवारवाले आपके लेखन कार्य में सहायता करते हैं ?

सूर्यबाला- पहले तो मैं लेखन कार्य करते समय बहुत परेशान रहती थी कि कहीं मैं अपने परिवारवालों के हिस्से का समय तो नहीं ले रही हूँ ? लगातार मन पर एक तरह की पहरेदारी, कहीं यह 'माँ' वाला समय तो नहीं ? कहीं अंदर वाली लेखिका 'पत्नी' वाले समय का मालिकाना हक तो नहीं हड़प रही ? लेकिन मेरे परिवारवालों ने मुझे भरपूर सहयोग प्रदान किया है । मेरे परिवारवालों द्वारा प्रदत्त सुविधाओं और सहयोग की वजह से मेरा लेखन कार्य चलता रह पाया वरना कितनी प्रतिभाएँ समय और सुविधा के अभाव में कुण्ठित रह जाती हैं, यह सभी को मालुम है ।

७. क्या आप यह मानती है कि सृजनात्मक लेखन के पीछे रचनाकार के अनुभव रहते हैं या केवल कल्पना से कहानी लिखी जा सकती है ?

सूर्यबाला- मात्र कोरी कल्पना रचना का बीज नहीं बन सकती । रचना के सृजन के पीछे अनुभव के बीज ही होते हैं जो रचनाकार के मन में चेतन या अचेतन रूपमें बसे हुए रहते हैं ।

८. आपकी कहानियों में राजनीति से संबंधित कहानियाँ नहीं मिलती । इसके पीछे क्या कारण है ?

सूर्यबाला- ऐसा नहीं है कि राजनीति से संबंधित बातें मेरी कहानियों में नहीं आयी हो । हाँ केवल राजनीतिक दाँव पेचों की कहानियाँ मैंने नहीं लिखी है, लेकिन उनका अनुपात अपेक्षाकृत कम अवश्य है । ये

कहानियाँ जितना परिश्रम चाहती थी, वह कर पाने की मेरी स्थिति नहीं थी ।

९. आपको क्या लगता है कि आज के संचार माध्यमों की दुनिया में साहित्य का अस्तित्व रह जाएगा?

सूर्यबाला- साहित्य तो निश्चित ही बना रहेगा । जब तक मनुष्य का अस्तित्व रहेगा तब तक साहित्य का भी अस्तित्व रहेगा । यह दूसरी बात है कि वह किस रूप में रहेगा ।

१०.आपने भविष्य में क्या लिखने की योजना बनायी है ?

सूर्यबाला- मेरी रचनाओं का समग्र संकलन प्रकाशित करवाना है इसकी तैयारी जारी है ताकि मेरे पाठकों को मेरी रचनाएँ एक साथ एक जगह पर उपलब्ध हो सकें । साथ ही कुछ अधूरी कहानियाँ भी है जो अति व्यस्तताओं के कारण पूरी नहीं हो पायी थीं उन्हें पूरा करना है ।

सहायक ग्रंथ सूची

१. डॉ. सरला शर्मा, सूर्यबाला की उपन्यास विधा का समग्र मूल्यांकन, यतीन्द्र साहित्य सदन, भीलवाड़ा, प्र-२०११.

२. डॉ. विमलशंकर नागर, हिंदी के आंचलिक उपन्यास : सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ, प्रेरणा प्रकाशन, मुरादाबाद, प्र-१९८५.

३. रविकुमार 'अनु', हजारीप्रसाद द्विवेदी के साहित्य की सांस्कृतिक चेतना, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्र-१९९०.

४. डॉ. कृष्णा अवस्थी, वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, पुस्तक संस्थान, नेहरू नगर कानपुर, प्र-१९७८.

५. सोती वीरेंद्र चंद्र, भारतीय संस्कृति के मूल तत्व, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, प्र-१९९८.

६. डॉ. अरूण कुलकर्णी, आ.हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में संस्कृति और इतिहास चिंतन प्रकाशन हंसपुरम - कानपुर २०८०२१, प्र-२००७.

७. डॉ. कल्पना किरण पाटोळे, महिला उपन्यासकार पारिवारिक जीवन के बदलते संदर्भ, विद्या प्रकाशन,

८. सी-४४९, गुजैनी, कानपुर-२०८ ०२२, प्र-२०१०.

९. डॉ. मंजुला गुप्ता, हिंदी उपन्यास : समाज और व्यक्ति का द्वंद्व, सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली- ६, प्र-१९८६.

१०. प्रो. राजेश भाई अ.पटेल, निराला के उपन्यासों में सामाजिक चेतना, ज्ञान प्रकाशन, कानपुर, प्र-२००६.

११. डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ(सं) शब्द-शब्द मानुषगंध, ज्ञान गंगा, दिल्ली. प्र-२०१२.

१२. डॉ. वसंतकुमार माली, सूर्यबाला के कथा साहित्य में युगबोध, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र-२०१३.

१३. डॉ. इशरत खान, महिला उपन्यासकार - एक मूल्यांकन, विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्र-२०१४.

१४. त्रिभुवन सिंह, हिंदी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग, हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, प्र-१९७३.

१५. डॉ. मंजु शर्मा, साठोत्तरी महिला कहानीकार (पारिवारिक विघटन के संदर्भ में), राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली प्र-१९९२.

१६. डॉ. सीताराम गुप्ता, उपन्यास का समाजशास्त्र, सीता प्रकाशन, मोती बाजार, हाथरस (उ. प्र.)प्र-

१९९५.

१७. डॉ. गोकुल प्रसाद वर्मा, भारतीय संस्कृति के मूल तत्व, रितु पब्लिकेशन्स जयपुर.

१८. डॉ. राजेश रानी, हिंदी उपन्यासों में सामाजिक चेतना के. के. पब्लिकेशन, दरियागंज, दिल्ली प्र-२००६.

१९. डॉ. एन. जयश्री, उपन्यासकार कृष्णा सोबती एवं नारी अस्मिता, रोली प्रकाशन, कानपुर प्र-२०१२.

२०. डॉ. रमा बूधमांडे, उत्तर आधुनिक समाज और विज्ञापन, विकास प्रकाशन कानपुर प्र-२०१२.

२१. संतोष कुमार चतुर्वेदी, भारतीय संस्कृति, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्र-२०११.

२२. अविनाश महाजन, उषा प्रियंवदा की कहानियों में टूटते जीवन मूल्यों का यथार्थ चित्रण, शैलजा प्रकाशन, कानपूर प्र-२००८.

२३. मिथिलेश्वर, साहित्य की सामाजिकता, शिल्पायन, दिल्ली प्र-२००५.

२४. सुधा बालकृष्णन, हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी के बदलते स्वरूप, संजय बुक सेंटर, वाराणसी प्र-१९९७.

२५. डॉ. पुष्पा गायकवाड, साठोत्तर हिन्दी कहानियों में नारी, विकास प्रकाशन, कानपुर. प्र-२०१३

२६. भारती शेळके, साठोत्तरी लेखिकाओं की कहानियों में परिवार, विद्या प्रकाशन कानपुर प्र-२००६.

२७. डॉ. उषा यादव, हिंदी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली. प्र-१९९९.

२८. डॉ. प्रेरणा तिवारी, समकालीन लेखिकाओं के उपन्यासों में कामकाजी स्त्री, विद्या प्रकाशन, कानपुर. प्र-२०१४.

२९. डॉ. रामचंद्र माली, अंतिम दशक की लेखिकाओं के उपन्यासों में नारी, विद्या प्रकाशन, कानपुर. प्र-२००६.

३०. डॉ. मेहर पाथरीकर, साठोत्तरी हिंदी महिला कथा लेखन में आधुनिकता बोध, शैलजा प्रकाशन, कानपुर प्र-२००७.

३१. डॉ. छाया देवी घोरपडे, साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में परिवर्तित नारी जीवन मूल्य, विद्या प्रकाशन कानपुर प्र-२००८.

३२. डॉ. अजय पटेल, नरेंद्र कोहली के उपन्यासों में युग चेतना, चिंतन प्रकाशन कानपुर प्र-२००७.

३३. डॉ. हरवंश कौर, महिला लेखिकाओं के उपन्यासों में नारी, विद्या प्रकाशन कानपुर. प्र-२०१०.

३४. डॉ. टेस्सी जॉर्ज, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में मूल्य परिवर्तन, जवाहर पुस्तकालय मथुरा (उ. प्र.)२००६.

३५. डॉ. चौधरी वेदवती उर्फ सौ. लाडके वी. पी., नवम् दशक की कहानियों में कामकाजी नारी की भूमिका, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर प्र-२००३.

३६. डॉ. राधा गिरधारी, समकालीन हिंदी कथा साहित्य सृजन के विविध आयाम, गरिमा प्रकाशन, कानपुर प्र- २०१३.

३७. डॉ. अर्जुन चव्हाण, समकालीन उपन्यासों का वैचारिक पक्ष, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र-२००८.

३८. रमेश उपाध्याय, कहानी की समाजशास्त्रीय समीक्षा, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली.प्र-१९९९.

३९. डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ, हिंदी कहानी का समकालीन परिदृश्य, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा. प्र-२०१२.

४०. डॉ. अशोक भाटिया, समकालीन हिंदी कहानी का इतिहास, भावना प्रकाशन, दिल्ली. प्र-२००३.

४१. अशोक शिंदे, साठोत्तर हिंदी कहानियों में अभिव्यक्त कस्बाई चेतना, साहित्य सागर, कानपुर. प्र-२००९.

४२. डॉ. सरिता कुमार, महिला कथाकारों की रचनाओं में प्रेम का स्वरूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली. प्र-१९८३.

४३. कमलेश्वर, नयी कहानी की भूमिका, शब्दकार, नई दिल्ली, प्र-१९७१.

४४. विजय द्विवेदी, साठोत्तर हिंदी कहानी, प्रभा प्रकाशन, इलाहाबाद प्र-१९८४.

४५. डॉ. धनंजय, समकालीन कहानी दिशा और दृष्टि, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद. प्र-१९७०.

४६. सुखबीर सिंह, हिंदी कहानी : समकालीन परिदृश्य, अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली.

४७. डॉ. दीपा मैलारे, साठोत्तरी हिंदी कहानियों में पुरुष चरित्र, विकास प्रकाशन, कानपुर,प्र-२००१.

४८. डॉ. ज्योति, महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारीवादी दृष्टि, अन्नपूर्णा प्रकाशन,कानपुर. प्र-१९९९.

४९. डॉ. उमेश प्रसाद सिंह, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष में, शिक्षा निकेतन, वाराणसी, प्र-१९८८.

५०. शीला प्रभा वर्मा, महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ, विद्या विहार, कानपुर, प्र-१९८७.

५१. डॉ. सरला महेश्वरी, नारी प्रश्न, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली. प्र-१९८८

५२. डॉ. विजय वारद, साठोत्तरी हिंदी कहानी और महिला लेखिकाएं, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र-१९९३.

पत्र-पत्रिकाएँ

१) अभिनव प्रसंगवश त्रैमासिक

२) समीक्षा त्रैमासिक, जनवरी-मार्च,२०१२

३) शोध -धारा सितंबर २२९

४) नया ज्ञानोदय अप्रैल,२००८

५) समावर्तन - अगस्त,२००९

६) साप्ताहिक हिंदुस्तान, १९८६

७) सारिका, १९८७

८) आजकल, १९९४

९) हंस, १९९४,१९९६

१०) प्रकर,१९९५

११) वागर्थ,१९९६

१२) वैचारिकी संकलन,१९९६

T- 817